

| | | |
|----|---|-----|
| २७ | ब्हेनोनी मीटींग— गुजराती (श्रीमती कंकुब्हेन—सोलापुर) | ९६ |
| २८ | विद्याभ्यास पछी शुं करवुं ?— ,, (हरजीवन रायचंद शाह.) | ९९ |
| २९ | मित्रसम्वाद—हिन्दी (मा. दीपचंदजी परवार.) | १०३ |
| ३० | वृद्धावस्थानो कागळ—गुजराती कविता (हाथीचंद माणकचंद—सोनासण.) | १११ |
| ३१ | जैनधर्मका महत्व—हिन्दी (बाबू दयाचंद्र गोयलीय बी. ए.) | ११३ |
| ३२ | थुइपंचअं—प्राकृत कविता (पं. श्रीलाल जैनशास्त्री—काशी.) | ११८ |
| ३३ | कायाके बारेमें गझल—हिन्दी कविता (पुनशी अर्जुन शाह—धुळीआ.) | ११८ |
| ३४ | दयामयी सुशिक्षा—हिन्दी (बाबू अमोलखचंद्र—इन्दौर.) | १२० |
| ३५ | जैनजीवन अथवा दैवीजीवन—गुजराती (श्री. वाडीलाल मोतीलाल शाह—मुंबाई.) | १२१ |
| ३६ | हमारा कर्तव्य—हिन्दी (जैनधर्मभूषण ब्र. शीतलप्रसादजी) | १२९ |
| ३७ | कर्मवीर—हिन्दी कविता (प्रेमी हज़ारीलाल—आगरा) | १३४ |
| ३८ | जैन बंधुओने संदेशो—गुजराती कविता(हाथीचंद माणकचंद—सोनासण) | १३५ |
| ३९ | भारतीय युद्ध अथवा कौरवपांडवांचा काळनिर्णय—मराठी (बी. पी. पाटील—होसूर) | १३७ |
| ४० | जैनदर्शनस्यानुवादः।—संस्कृत (गोवीन्दराय गुप्त—काशी) | १४० |
| ४१ | जैनानां वर्तमानप्रगतिः। ,, (मरुखनलाल जैन—मोरैना) | १४४ |
| ४२ | जिणधम्मस्स उच्चइए उवाया—प्राकृत (पं. श्रीलाल जैनशास्त्री) | १४५ |
| ४३ | ज्ञानतरंग—गुजराती (सरैया—सूरत) | १४६ |
| ४४ | जैन लोकांचे सांप्रतचे कर्तव्य—मराठी (एम. एम. खंडारे—अंजनगांव) | १५१ |
| 45 | Appeal for the Central Jain College—Edglish (K. Devendraprasad—Arrah | |
| ४६ | जीवनचरित्रोनी महत्वता—गुजराती (वाडीलाल मूळजीभाई संघवी—लींबडी) | १५४ |
| ४७ | कीर्ति माटे करोडनुं पाणी—गुजराती कविता (पुंजालाल प्रेमचंद श्वे. जैन उपदेशक) | १५७ |
| ४८ | भारतकी कुछ पूर्वदशा और चेतावनी—हिन्दी कविता (श्यामसुंदरलाल जैन—मेरठ) | १५७ |
| ४९ | अलौकिक जीवन— ,, ,, (दुर्लाचंद सीघई—बम्बई) | १५८ |
| ५० | अधेर जमाना— ,, ,, (सी. एम. पाटनी—इन्दौर) | १५८ |
| ५१ | पहलेके जैनों—उर्दू कविता (ज्यो. रत्न जैनी जियालालजी) | १५९ |
| ५२ | मनशिक्षा—गुजराती (आ. अ. शाह—सूरत) | १६० |
| ५३ | नूतन वर्षारंभे मुबारकवादी—गुजराती (मोतीलाल त्री. माळवी) टाईटल | |

चित्रिका अनुक्रम २

| नं. | नाम | पृष्ठ. |
|-------|---|--------|
| १ | कल्पतरुसिञ्चन | टाइटल. |
| २ | श्री. ऐलक चन्द्रसागरजी | १ |
| ३ | भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्तिजी | १ |
| ४ | स्व. भट्टारक श्री ललितकीर्तिजी | ८ |
| ५ | सिद्धक्षेत्र श्री मन्दारगिरि | ८ |
| ६ | लेखकोंका सम्मिलित चित्र | ८घ |
| ७ | स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्रजी | १६ |
| ८-१५ | युरपके ८ राजाओं | २४ |
| १६ | रा. ब. लाला इशरीप्रसादजी-देहली | ३२ |
| १७ | मालवा दि. जैन प्रां. सभाके संचालकों | ४० |
| १८ | मारत. दि. जैन महासभा-संचालकों | ४८ |
| १९ | जैन महिलारत्न श्री. मगनबाईजी | ५६ |
| २०-२१ | चन्द्रगिरि पर्वतका दृश्य | ६४ |
| २२-२४ | मुक्तागिरि-मन्दिरोंका दृश्य | ६५ |
| २५ | स्व. पं. चुन्नीलालजी-मुरादाबाद | ७२ |
| २६ | पं. लक्ष्मीचन्द्रजी-लश्कर | ७२ |
| २७ | स्व. सेठ घनश्यामसाजी-बड़वाह | ७३ |
| २८ | स्व. सेठ दयाचंदसाजी | ७३ |
| २९ | स्व. वीरचंद राघवजी बी. ए. | ८० |
| ३० | डॉ. एल. पी. टेसीटॉरी-ईटाली | ८८ |
| ३१ | मणीलाल एच. उदाणी एम. ए. | ८८ |
| ३२ | रा. ब. सेठ चम्पालालजी-ब्यावर | ९६ |
| ३३ | पं. बिहारीलालजी सी. टी. अमरोहा | ९६ |
| ३४ | मिथ्यातिमिरनाशनी सभा-देहली | १०४ |
| ३५ | हुकमचंदजी दि. बोर्डिंग-इन्दौर | ११२ |
| ३६ | ,, ,, मन्दिर नशीयांजी | ११३ |
| ३७ | ,, ,, धर्मशाला | ११३ |
| ३८ | प्रे. मो. दि. जैन बोर्डिंग-अमदावाद | १२० |
| ३९-४० | ए. पन्नालाल दि. जैन- पाठशाला-सोलापुर | १२८ |
| ४१-४२ | नाथारंगजी दि. जैन बोर्डिंग- सोलापुर | १३६ |
| ४३ | सेठ मा. पा. दि. जैन बोर्डिंग-रतलाम | १४४ |

| | | |
|----|---------------------------------|-----|
| ४४ | रथयात्रामहोत्सव-कुचामन | १४८ |
| ४५ | सुमेरचन्द दि. जैन बो. -ईलाहाबाद | १५२ |
| ४७ | दि. जैन बोर्डिंग-मेरठ | १५२ |
| ४७ | शान्तिविद्यालय-झालरापाटन | १५२ |
| ४८ | यज्ञोपवितसंस्कार-अमरोहा | १६० |
| ४९ | दि. जैन महोत्सव-मूलतान | १६० |

सुरतमां "दिगंबर जैन" पत्रे उघाडेलुं
सेठ माणिकचंद हीराचंद स्मारक फंड.

(ता. १०-११-१४सुधीमां आवेली रकमो)

खेरगाम. रु. ५-०-०

- २) शा. कपुरयंद हीरायंद
- २) शा. उदयंद हेमयंद
- १) शा. नाथायंद दीपयंद

मुंबाई. रु. १०-०-०

श्राविकाश्रम भाईत-

- २) श्रीमती भाई अशगट्टे
- १) ,, ललीता ंडेन
- १) ,, भाई डोडील
- १) ,, यशोदाभाई
- १) ,, कस्तुरीभाई
- १) ,, डरडोरभाई-छाणी.
- ३) परचुरखु-भाईभोना
- १) शा. मोतीदास डरडोरवनदास-वागरो.
- २) मगनदास लखुभाई दाणीया-सरत.
- ३) शा. शीवदास तणशीदास-भोरड.
- २) दयायंद मन्नादास जैन-भाडगठ
- २) धनराज दलीयंद जैन-भाडगठ.
- २) युनीदास भीसरीदास जैन-अंजड
- १) दोशी गलायंद युनीदास-परतापोर

झालरापाटन रु. १०-०-०

- १०) साहसोनाथ शिवदास सुन्दरदास जैनाडा

३८-०-०

- १३४२-५-० अगाई वसुध आवेला

- १३८०-५-० कुशले.

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

शेठ प्रेमचंद मोतीचंद दिगंबर जैन बोर्डिंग तरफथी प्रकट थतुं मासिक

दिगंबर जैन.

The Digambar Jain.

युतं सुलेखै विविधैश्चित्रै, दिगम्बरजैन मिदं सुपत्रम् ।
प्रभो ! महावीर ! ! तव प्रभावात्, समुत्तमामुन्नतिमातनोतु ॥

वर्ष ८ मुं.

वीर संवत् २४४१. कार्तिक. विक्रम सं. १९७१.

अंक १ लो.

महाकीरिष्टकम् ।

कथं स्तवीमि प्रभुमन्त्यतीर्थ, करं कराभ्यामभयप्रदं तम् ।
लैलोक्यजेता खलु मन्मथोपि, न जातुचिद्यस्यमनोममन्थ ॥ १ ॥
अनादितो वीर ! भवार्णवेस्मिन्, भ्रमामि सभ्रान्तमनाः समन्तात् ।
अतः समुद्धर्तुमनाथनाथ ! हस्तावलम्बं तनु साम्प्रतं मे ॥ २ ॥
यस्त्वां क्षणं ध्यायति पूतचित्तो, ध्येयो भवेदन्यजनैः स चित्रम् ।
यद्वाश्रयो वीर ! भव.दृशानां, भवादृशानेव जनान् विधत्ते ॥ ३ ॥
न सन्मुखेवीर ! जनेऽनुकूलः पराङ्मुखे नापि पराङ्मुखस्त्वम् ।
फले पुनर्विद्यत एव भेद, एकस्यमुक्तिर्जगतीतरस्य ॥ ४ ॥
समूलमुन्मूलितकर्मबन्ध ! भव्योपकारव्रतसत्यसंघ ! ! ।
कर्मात्मनोरैक्यमपास्यमंश्च, तदुत्थदुःखादव वीरनाथ ! ॥ ५ ॥
पक्षं निजात्मानमनाकुलो यः, साध्यञ्च स्तत्रयमाकलय्य ।
हेतुञ्चानातितवैव भक्तिं, स्वसाध्यसिद्धिं लभते स वीर ! ॥ ६ ॥
निर्मोह ! दुर्मोहवशप्रपन्ना ना लोकयन् भक्तिपरायणान् नः ।
मन्येऽनुकम्पां विदधासि वीर ! यतो दयालुर्जगति प्रसिद्धः ॥ ७ ॥
तां सन्मते ! सन्मतिमाशु कुर्या इत्येव वाञ्छा मनसो मदीया ।
यया जगन्नायक ! जन्तुरषो, वरोभवेन्मुक्तिवराङ्गनायाः ॥ ८ ॥

तुलसीराम काव्यतीर्थः काशीस्थ श्री स्याद्वादमहाविद्यालयस्थः

❁ વર્ષારંભે નમ્ર યાચના. ❁

(કવાલી.)

- અહા! હવે નવા વર્ષે, થઈ મશગુલ - મહાયુ હું;
સુખી સૌ કોમ આલમ હો, દુવા હું એજ માંગું છું. (૧)
- વીત્યું ગત વર્ષ બહુ કારી, ખુવારી જન અને જરની;
દેકે દુઃખ થાય આ વર્ષે, દુવા હું એજ માંગું છું. (૨)
- અહા! કુસંપ અને કળયા, પડયા છે ન્યાત જાતોમાં;
ફીટે ઝગડા અને રગડા, દુવા હું એજ માંગું છું. (૩)
- વળી મહાયુદ્ધ અવનિમાં, પરસ્પર રાજ્યમાં જામ્યું;
આક્રમણ આલ વિખરાએ, દુવા હું એજ માંગું છું. (૪)
- ગયા માણેક અને ચંપત, ગયા પરમેશ્વી ને ધનું,
નીપજળે વીર એવા બહુ, દુવા હું એજ માંગું છું. (૫)
- અરે ! અમ કોમ મિથ્યાત્વી, બનીને છેક તો ડુબી;
અહે સત્ધર્મની ખૂબી, દુવા હું એજ માંગું છું. (૬)
- વળી અમ કોમ માહે બહુ, સ્થપાયે બોડિંગો શાળા;
જીવન સુધરે અમે સૌનું, દુવા હું એજ માંગું છું. (૭)
- (જી. ક. કાપડીયા-સુરત.)

ચાલો ઓ બંધુ !

-આશીર્વાદ વચનો.-

ચાલો ઓ બંધુ ! આવો ઓ વીરા !

(નારાયણ હંદ.)

સંપ કરી સહુ વિદ્યાલય સ્થાપન કરીએ. ચાલો.

જન હિત કાળે, એક અવાળે,

તન-મન-ધન અર્પણ કરીએ...ચાલો.

ભારતિને ભૂપણ ધરવાને-

ઉજવલ હિતકાર્યો કરવાને-

જૈન સંઘ શક્તિ દર્શાવે,

જ્ઞાન દાન ઝુંડો ફરકાવે,

લ્હાવો શુભ લઈએ !...ચાલો.

નિશદિન પલક્ષણુ પરહિત કરતાં,

ત્રેમે પ્રાણાર્પણ કરીએ...ચાલો.

જગમાં જન્મ્યા જનહિત માટે,

હેતુ એ સાર્થક કરીએ...ચાલો.

(સરૈયા-સુરત,)

ઉદ્ધોત જૈન ધર્મનો, થવા વિનાશ કમનો,

ખતાવે ભેદ ભર્મનો, અભેદ ધર્મ મર્મનો;

સુબોધ દષ્ટ કુબોધ બહેમ વેચીને વીદારવા,

જયતુ જગત મધ્ય આ દિગંબર આધારવા.

અજ્ઞાનને નિવારવા સુજ્ઞાનને વધારવા,

હીત બોધ દે પવિત્ર, આત્મને સુધારવા;

ઉપકાર એ અપાર શી રીતે હવે વિસારવા,

જયતુ જગત મધ્ય આ દિગંબર આધારવા.

મમત્વ મોહને તજો, સુરાગ શાંતિનો સજો,

જીણુંદ ભાવથી લજો, દયામયી બધાં થજો;

દઈને જ્ઞાન દાન લાન ભાવિતું સુધારવા

જયતુ જગત મધ્ય આ દિગંબર આધારવા.

(રમુજી-બોરસદ.)

बूढ़ोंको सतानेवाला, बच्चोंको हँसानेवाला जवानोंको, उद्दीप्त
करनेवाला

बूढ़ेका ब्याहा

लोट-फोट कर देनेवाले सुन्दर पाँच चित्रोंसे
सुसज्जित, बढिया कागज़, सुन्दर छपाई,
मनोहर मूख पृष्ठ।
हिन्दीमें बिलकुल नई चीज़।
छफकर तैयार है !

पाठक महाशय,

यह हिन्दीके एक नामी कविका बनाया हुआ सुन्दर काव्य है। इसमें एक बालिकाके साथ एक साठ वर्षके बूढ़ेके ब्याहका चित्र खींचा गया है। कविता इतनी सरल है कि हरकोई मजेमें समझ सकता है। इसे पढ़कर हँसेगे, खीझेंगे और एक बालिकाकी दुर्दशा पर आँसू बहावेंगे। हिन्दीमें अपंगुणोंकी यह एक ही पुस्तक है। वृद्धविवाहके रोकनेमें यह पुस्तक बड़ा काम करेगी। शीघ्र मँगवाईए। मूल्य छह आना। एक साथ पाँच प्रतिथों मँगाने पाँचके मूल्यमें छह भेजी जाती हैं।

नोट—जैन धर्मकी सब प्रकारकी पुस्तकें हमारे यहाँसे बाजिव मूल्यमें भेजी जाती हैं। एक कार्ड लिखकर सूचीपत्र मँगा लीजिए।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय, हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

१५ उपर प्रकट थरो, छतां पण कार्तक सुद १ थी ते आ अंक प्रकट यतां सुधीमां अमारा पर खास अंकनी मांगणीनो जे गंजावर पत्र-व्यवहार आवी पडेलो छे, तेथी एटलुं तो स्पष्ट नणाय छे के खास अंक जोषानी अने वांच-कोनी आठुरता घणीज छे, पण आ अंक माटे एटलां बधां साहियो एकठां करवानां हतां के पुष्कळ पत्रव्यवहार, खटपट अने उतावळ करवा छतां पण आ अंक प्रकट करतां कार्तक बद्द ९ थई छे, अने जो बधाज ग्राहकोनी फी अंगाउथी वसूल आवी गई होत तो एज दीने बधाने रवाना थई जात, पण अमारे दिलगीरि साथे जणावहुं पडे छे के, मात्र ३००-३५० ग्राहकोनुंज लवाजम वसूल थएलु होवाथी तेटलानेज आ अंक तरत मोकलवामां आव्यो छे अने बाकीना मेम्बरो तथा जुना नवा आशरे १५००-१६०० ग्राहकोने घणीज वी. पी. थी मोकलाय छे, रजीस्टर्ड न्यु-प्रोपेरा ना दरथां एकज ऑफीसे वी. पी. आपी शकाय अने अत्रेनी सीटी ऑफीस रोजनां ५० थी बंधु वी. पी. स्वीकारी शकती नहोती, जेथी रण वी. पी. रवाना थतां महीनो दोढ हीनो घीती जाय, जेथी अमोए पोस्टल प्रिन्टेन्डंट मारफते पोस्टमास्तर पारलने अरजी करवाथी तेओ साहेबे आ पत्रना वी. पी. अत्रेनी त्रण ऑफिसोए-फरना १००-१०० लेवानी कायमनी खास गवळ Permanent Special Arrangement करी आपी छे, जेथी रोजना ३०० वी. पी. रवाना थाय छे, तेथी बधां ग्राहकोने चार पांच दिवसमांज खास अंक वी. पी. थी मळी जशेज. आ ओर्डर मळवाना कार्यामां अत्रेना श्वे. जैन बंधु अने अमारा पिता-

शीना बुजरोग मित्र शा. ठाकोरदास कस्तुरचंदे खास मदद करी छे, तेमनो आ स्थळे आ-भार मानीए छीए. वळी लडाईना हींगामने लीधे हाल कागळना भावो पुष्कळ बधी गया छे, छतां पण अमारा अनेक वांचकोनी आग्रहपूर्वक सूचनाने मान आपवा खातर भारे खर्च करीने पण आ अंकमांना लगभग बधां चित्रो कागळनी एक बाजुए आपेलां छे, जेथी आशा छे के वांचकोने संतोष थशेज. हवे मार्गशीर्ष मासनो अंक छूटो बहार पडशे नहि, पण मार्गशीर्ष अने पोषनो डबल अंक पोष सुद १ उपर बहार पडशे.

✽ ✽ ✽ ✽

प्रिय हिन्दी पाठकगण ! हमारी मातृभाषा गुजराती है और हिन्दी ग्राहकोंको हमने हिन्दी भाषाका निवेदन ।

षाका खास कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं किया है और सूरत जैसे शहरमें बम्बई आदि जैसी हिन्दी छपानेकी सुभीता नहीं है, तौभी हमारे मात्र परिचयद्वारा हमने हिन्दी भाषाके लेखों लिखने और ७ भाषाके लेखों प्रकट करनेका साहस किया, है जिसमें अनुमान है कि भाषाशुद्धि, व्याकरण शुद्धि व मुफ संशोधनमें अनेक त्रुटिएं रही होंगी, जिसकी ओर आप ध्यान न देकर इस अंकमेंसे 'हंसक्षीरकी नाई' सार ग्रहण करके हमारे उत्साहको बढ़ावेंगे ऐसी हमें पूर्ण उम्मेद हैं । गत् वर्षस इस अंकमें हिन्दी लेखोंकी विशेषता की गई है । और अब 'दिगंबर जैन' के आगामी अंकोंमें भी हिन्दी भाषाके लेखों विशेष रूपसे प्रकट होते रहेंगे और गुजराती लेखों भी बहुत करके देवनागरी लिपिमें प्रकट होंगे

क्योंकि दिनोंदिन हिन्दी ग्राहकोंकी संख्या बहुत बढ़ती जाती है और सारे हिन्दुस्थान भरमें “दिगांबर जैन” का प्रचार होता जाता है, जिससे देशकी सर्व सामान्य हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपिको प्राधान्यपद देना हमारा कर्तव्य है। गत् वर्षकी भांति इस वर्षके ग्राहकोंको भी रु. १) का यह खास अंकके अतिरिक्त; हिन्दी—गुजराती भाषाकी रु. २)—३) के मूल्यकी ८—१० पुस्तकें उपहारमें मिलेगी, जो तय्यार होनेपर क्रमशः भेज दी जाँयगी।



आपणी मुंबाई दि. जैन प्रा. कोन्फरसनी
बैठक पालीताणा उपर थई गयाने एक वर्ष
आवती कोन्फरस. थवा आब्युं छे,
पण हवे आ वर्षे

कये स्थळे कोन्फरस भराशे ते कई हजु नकी थयुं नथी. सांभळवा मुजब आ मासमां दर्हीगांव-मां मेळा प्रसंगे कोन्फरस भरवानुं आमंत्रण आवेलुं हतु, पण समय घणोज निकट होवाथी ते नाईलाजे स्वीकारी शकयुं नहोतुं. आ कोन्फरसना प्रमुख दानवीर शेठ माणेकचंदजी ना वियोगथी कोन्फरसने महाभारत आफत आवी पडी छे, पण तेथी निराश न थतां जे रस्तो शेठ माणेकचंदजी बतावी गएला छे ते रस्ते नियमित रीते चालवानी आपणी फरज छे, अने तेमां आळस करवानी जरूर नथी, माटे आ वर्षे कोन्फरस ऑफिसे खटपट करी कोईपण तीर्थ उपर के पछी कोई पण शहरमां कोन्फरस भरवानी कोशीष ताकीदे करवानी जरूर छे. आ वर्ष खाली तो नज जवुं जोईए, केमके नवा प्रमुख नीमवाना तथा बीजां अनेक उपयोगी कार्यों ताकीदे थवानी

जरूर छे. जो बनी शके तो सिद्धक्षेत्र भी कुंथलगरीरी उपर कोन्फरस थवानी खास अग-त्यता छे, जे तरफ दक्षिणना भाईओतुं अमो खास लक्ष खेंचीए छीए.



अमारा स्नेही संबंधीओ तथा वांचको तर-
फथी नवीन वर्षनी
नम्र निवेदन. खुशालीना अनेक
पत्रो आ मासमां

अमारा उपर आवेला हता, पण गत् वर्षे अमारा कुटुंबमांथी; माता, ब्हेन वगेरे ४ आद-मीओनो वियोग थई जवानी गमगीनीने लीधे आ वखते अमो खुशालीना काडों लखी शक्या नहोता, जेथी आ स्थळे अमारा तरफ प्रेमाळ दृष्टि दर्शवनारा ते सर्वे स्नेही संबंधीओनो आभार मानीए छीए.

त्यागीजीनो केशलोचः—श्रीमन् ग्यागी ऐलक पन्नालालजीए अजमेरमां चातुर्मास निर्विघ्ने पूर्ण करी कार्तक सुद १३ नी प्रभाते कईपण उत्सव वगर एकान्तमां केशलोच कर्यों हतो. अतेना लोकनो भाव आ समये उत्सव करवानो न होवाथीअ आम ओचींतो केशलोच थयो हतो.

“जैन तत्व प्रकाशक” का प्रादुर्भावः—
इस नामका मासिक पत्र जो प्रकट होना बंद हुआ था वह जैनतत्वप्रकाशीनि सभा—इटावासे चंद्रसेन जैन वैद्यद्वारा प्रकट होना शुरु होकर प्रथम अंक प्राप्त हुआ है, जिसकी समालोचना आगामी अंकमें की जायगी। वार्षिक मूल्य रु. १) है।

નૂતન સમાચાર ।

અંતરીક્ષત્રી કેસ અને જરૂરી કર્તવ્ય:—

આ તરિધને લગતો જે કેસ અકોલાની કોર્ટમાં લાંબા સમયથી ચાલે છે, તેનો ઠરાવ તા. ૫-૧૦-૧૪ ના દિને હતો, જે વચ્ચે બંને પક્ષના લેખિત પુરાવાઓ દાખલ કરવા ન કરવાની તકરારો ચાલી હતી. હાલ સુધી શ્રે. ના ૧૦ શાક્ષી લેવાયા છે અને તા. ૧૧-૧-૧૯૧૫ થી ૧૭-૧-૧૫ સુધી ૭ દિવસમાં ૪૦ શ્રે. શાક્ષીઓની જુબાની લેવાનો હુકમ કોર્ટે કર્યો છે, તથા બીજો હુકમ એ થયો છે કે દિગંબરીઓ પોતાનો શાક્ષીઓનું લિસ્ટ તા. ૫-૧૨-૧૪ સુધીમાં દાખલ કરવું. આથી સર્વે સ્થાનોના દિગંબરી માઈઓને મી. ચવરે વર્કાલ સૂચના કરે છે કે જેઓ અંતરીક્ષત્રીની યાત્રા જઈ આવેલા હોય અથવા મૂર્તિ સંબંધી પુરાવાની હકીકત જાણતા હોય, તેમણે શાક્ષી તરીકે પોતાના નામો તાકીદે મોકલી આપવા. વહાડ પ્રાંત સિવાય બીજા પ્રાંતના શાક્ષીઓની જુબાની કમીશનથી પળ લઈ શકાશે. વઢી જેમની પાસે કંઈ આગલા લેખિત પુરાવાઓ હોય તે પળ સત્તર મોકલી આપવા. પત્ત-વ્યવહારનું સરનામું:—જયકુમાર દેવીદાસ ચવરે બી. એ. બી. એલ. વર્કાલ—આકોલા.

ઓરાણુમાં જન્યુતિ:—અત્રે છ માસ અ્યાં પાઠશાળા સ્થપાયા પછી ઘણો સુધારો થતો જાય છે. પાઠશાળાની પરીક્ષા શીમતી

લક્ષીતાબહેને લીધી હતી. ફલ ૮૦ ટકા છે. પાક્ષિક સભા નિયમિત થાય છે, શ્રુત પંચમી, અળવ વગેરે પર્વતિથિ ઉજવાય છે, તેમજ મહાવીર નિર્વાણાસવ પણ થયો હતો, જે પ્રસંગે ઉપદેશક મી. પૂંજલાલને બોલાવી ૩ જાહેર સભાઓ કરવામાં આવી હતી, જેમાં રોજ અધી કોમોની ૫૦૦-૬૦૦ની સંખ્યા થતી હતી. વળી લક્ષીતાબહેને એક જાહેર ભાષણ 'જ્ઞાનથીજ કુરીતિઓ દૂર થઈ શકે છે.' એ વિષય ઉપર આપ્યું હતું, જેથી કેટલાક નિયમો લેવાયા હતા. તેમ ૩.૨૬૫ શ્રાવિ કાશ્રમને મદદ મળી હતી અને પ્રમુખ શા. નેમચંદ કંકુચંદ તરફથી પતાસાની પ્રભાવના વેંચાય હતી.

ઈરની પાઠશાળાનો મેળાવડો:—માણેકબાઈ દિ. જૈન પાઠશાળાની પરીક્ષા ગઈ તા. ૨૩-૨૫ મીએ લેવાઈ હતી, અને કાર્તિક વદ ૧ ને દીને ખાનપુરવાળા શા. માણેકચંદ જગનલાલના પ્રમુખપણા નીચે ધનામનો મેળાવડો થયો હતો જેમાં ૩૦૦ની સંખ્યા જાજર હતી અને ગાંધી મણીલાલે રિપોર્ટ વાંચ્યા પછી માસ્તર નાથાલાલે 'જ્ઞાન' ઉપર ભાષણ આપવા પછી જડાવબાઈ ધનામ કુડની ઉપજમાંથી ૩૦ છોકરા-છોકરીઓને ફેટા, સાડી, ઓઢણી, મીઠાઈ વગેરે ધનામ રૂ. ૫૦)તું વેંચાયું હતું. બાદ પ્રમુખે રૂ. ૫), મયાચંદ કંકુચંદ રૂ. ૨), અધ્યાપિકા મેનાબાઈ રૂ. ૫), તથા વડીલ વીરચંદ રૂ. ૨) મળી રૂ. ૧૪) ધનામના ફૂડમાં ભરાયા હતા.

મહાસબાની બેઠક:—જનાવત્રા મુજબ મારત. દિ. જૈન મહાસબાની વાર્ષિક. બેઠક મથુરાજીમાં ગત માસમાં શેઠ દામોદરદાસજી (મથુરા)ના પ્રમુખપણા નીચે થઈ હતી, જેમાં કેટલા મામૂલી ઠરાવો થવા સિવાય કંઈ મહત્વનાં કાર્યો થઈ જાતાં નથી. હવે પ્રમુખ તરીકે દાનવીર શેઠ હુકમચંદજી અને મહામંત્રી શ્રીમંતસેઠ મોહનલાલજી નીમાયા છે.

अजैन विद्यार्थियोंको रु. ६००)की मासिकवृत्ति ।

दानवीर सेठ हुकुमचन्दजीकी दानवीरता ।

विदित हो कि इस साल कलकत्ता संस्कृत यूनिवर्सिटीके पठनक्रममें सन् १९५० परीक्षाके लिये दिगम्बर जैनाचार्यकृत न्याय व्याकरणके नीचे लिखे ग्रंथ भरती हो गये । इन ग्रंथोंमें परीक्षा देकर उत्तीर्ण होनेवाले अजैन विद्यार्थियोंको नीचे लिखे नियमानुसार मासिकवृत्ति इन्दौर निवासी श्रीयुत् दानवीर सेठ हुकुमचन्दजीकी तरफसे डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए० पीएच. डी. की मारफत दी जायगी । इसके सिवाय जो विद्यार्थी लिखी परीक्षाये देना चाहेंगे उनके फारम सहित प्रार्थनापत्र हमारे पास आनेपर अजैन ग्रंथ छोड़कर समस्त जैनग्रन्थ डांक खर्चका व्यय मात्र वी. पी. में लगाकर तत्काल ही बिना भेज दिये जायगे । जिनको अगली साल परीक्षा देना हो, तत्काल ही फारम हमारे पाससे भेज भरकर भेज दें क्योंकि परीक्षाका समय बहुत थोड़ा रह गया है । ता० १८ फरवरी सन् १९५० से परीक्षा प्रारंभ होगी । परीक्षा देवरिया, पटना या कलकत्ता जहां जी चाहें दे सकते हैं ।

परीक्षाके ग्रंथ ।

- | | | |
|---|---|-----------------------------|
| १ । व्याकरण प्रथमा परीक्षा । | } | मासिकवृत्ति १ वर्ष पर्यंत । |
| प्रथमपत्र जैनैद्र प्रक्रिया पूर्वार्द्ध । | | प्रथम छात्रको ४) रुपये । |
| अथवा-शाकटायन प्रक्रिया पूर्वार्द्ध । | | द्वितीय छात्रको २) रुपये । |
| द्वितीयपत्र-हितोपदेश मित्रलाभ । | | |
| २ । व्याकरण मध्यमा परीक्षा । | } | |
| प्रथमपत्र-शब्दार्णवचंद्रिका (जैनैद्रलघुवृत्ति) | | प्रथम छात्रको ५) रुपये । |
| अथवा-चिंतामणि (शाकटायनलघुवृत्ति) | | |
| द्वितीयपत्र-पिंगलसूत्र-भट्टिकाव्य नवमसर्ग पर्यंत तथा अनुवाद मातृभाषासे संस्कृतमें और संस्कृत भाषासे मातृभाषामें । | | द्वितीय छात्रको ३) रुपये । |
| ३ । न्याय प्रथमा परीक्षा । | } | |
| प्रथमपत्र-जैनन्यायदीपिका, परीक्षामुखसूत्रार्थ | | प्रथम छात्रको ४) रुपये । |
| द्वितीयपत्र-अनुवाद पाद्यविषयिणी रचना । | | द्वितीय छात्रको २) रुपये । |
| ४ । न्याय मध्यमा । | } | |
| प्रथमपत्र-आप्तपरीक्षा सटीक (विद्यानंदिकृत) | | प्रथम छात्रको ६) रुपये । |
| तथा-प्रमेयरत्नमाला । (अनंतवीर्यकृत) | | द्वितीय छात्रको ३) रुपये । |
| द्वितीयपत्र-अनुवाद रचना उक्त प्रकारसे- | | |
| ५ । व्याकरणतीर्थमें-प्रथमोत्तीर्ण विद्यार्थीको १००) न्यायतीर्थमें १५०) रु० एकमुष्टि जांयगे । | | |

नोट-तीर्थ परीक्षा मध्यमाके बिना नहीं होती इसलिये इसके ग्रन्थ नहीं लिखे ।

निवेदक- पन्नालाल जैन, सेक्रेटरी, भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्था, बनारस

छपकर तैयार है ।

जैन संसारके लिए अपूर्व भेंट

जो अभी तक नहीं छपाथा और जिसके लिए जैनीभाई बहुत उत्कंठित थे वही
जैनियोंका परमप्रिय और मंत्रशास्त्रका अपूर्व भण्डार

भक्तमरकथा ग्रन्थ ।

मंत्र, यंत्र और साधन विधि सहित अभीही छपकर तैयार हुआ है ।

जल्दी भीजिए, नहीं तो पछताइएगा, कीमत पक्की जिल्द १।)

सादी जिल्द १)

मैनेजर—हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, चन्दावाडी, गिरगांव—वम्बई।

विश्वतत्त्व चार्ट ।

(The Sacred Books of the Jains
का चार्ट नं १)

सारे विश्वसंसारके तत्त्व, जैन सिद्धान्तके अनुसार (“ जीवाजीवाश्रवबन्ध सम्बरनिर्जरा मोक्षास्तत्त्वम् ”) इस चार्ट डा भारी नकशा)में लिखे गये हैं। जो बाते डों बड़े बड़े आर्ष शास्त्रोंके पढ़नेसे छूम होती हैं वे इसी एक चार्टके द्वारा छूम हो जायंगी । मानों सागरको गाग-में भर दिया गया है । आजतक ऐसा चार्ट कहीं नहीं निकला—यही पहली चिज़ है। अभी इसके अतिरिक्त सार्वधर्म, लोकालोक, सिद्धान्तसार, तथा गुणस्थानादिकके उत्तमोत्तम चार्ट भी छपेंगे । इनका जानना हरएक मनुष्यके लिये आवश्यक है और घड़ीर शास्त्र उलट कर देखना भी आजकल कठिन है अतएव जिसमें प्रत्येक जनसाधारणको उपयोगी

और जाननेयोग्य विषयोंका सरल रीतिसंज्ञान हो जाय, इसीलिये ये चार्ट छपाये गये हैं । मन्दिर, पुस्तकालय, पाठशाला, कन्याशाला आदि सार्वजनिक संस्थाओंमें रखने योग्य है । पं. दीपचंदजी द्वारा संपादन होकर सुन्दर चिकने कागज़ पर, रंगीन स्याहीमें, ३४×२४ के बहुत बड़े आकारमें छपाकर आरानिवासी कुमार देवेन्द्रप्रसादजी (मंत्री, ऐतिहासिक विभाग, भारतजैनमहामंडल) ने प्रकाशित कराया है । मूल्य लागत मात्र केवल २) रखा गया है जिसमें सर्वसाधारणको इसका संग्रह करनेमें सुभीता हो । शीघ्रता करें, क्योंकि ऐसा बड़ा भारी नकशा और मूल्य कम होनेसे (बिक जाने पर) पीछेसे मिलना कठिन है ।

मिलनेका पता—

मैनेजर, दिगम्बर जैन पुस्तकालय
सूरत । SURAT.

आठमा वर्षमां भारे उत्साहथी प्रवेश करे छे, ए ओछा आनंदनी बात नथी. गत् वर्षे जे सुशोभित अने सचित्र गंजावर खास अंक प्रकट कर्यो हतो तेवो अंक फरी प्रकट थवानी कोईने आशा नहोती, पण अमारा वांचको जाणीने अजब थशे के आ वर्षे पण तेथी वधु सुधारा वधारा सहित आ खास अंक प्रकट करी शकयो छे, तेनां खास कारणो जो जोईए तो एना ग्राहकोनी वधती जती सख्या अने प्रेमाळ दृष्टीज छे.

गत् वर्ष हिंदनी प्रजाने असुखाकारीभरेलुं नीवडयुं छे, तेमां गत वर्षनुं अवलोकन. जैनोमांथी दान-वीर शेट माणे-कचंदजी, बाबू धन्नूलालजी, शेट परमेष्टीदासजी डेप्युटी चम्पतरायजी, स्था. अग्रेसर राय शेट चांदमलजी, जाणीता “ जैन ” पत्रकार मी. मगुभाई वगरेना ओचींता वियोगथी जैनोंने जे भारे खोट पडी छे, ते कदी पुराय तेम नथी. तेमज गत् वर्षमां घणी बेकोना देवाळांथी प्रजाने असह्य संकटमां उतरखुं पढवा उपरांत चार मास थयां कदीपण न थयेलुं एवं गंजावर रणसंग्राम युरोपमां सळगेलुं छे, तेनी असर आखी दुनियाना व्यापार उपर एटली बधी थती जाय छे के जो आ भयंकर लडाई वधु लबाय, तो अणधारी अने असह्य आफतो आववानो संभव छे. आ युद्धमां युरोपना घणां राज्यो जेवां के इंग्लांड, फ्रान्च, रूसीआ, बेल-जीबम, जर्मनी, ऑस्त्रीया, सर्वीया, तुर्कस्थान, होलंड उपरांत चीन, जापान वगरे बहार पडेलं छे, जेनुं भविष्य शुं आवशे ते कई कळी शकालुं नथी, पण एटलुं तो नक्कीज छे के ‘सत्य-

नोज जय्र थाय छे ’ ते मुजब मोडे वहेले पण न्यायी ब्रीटीश राज्यना पक्षनो जयं थकानी अनेक आशाओ बांधी शकाय छे. जे शांति, सुख अने छुटापणुं आपणे भोगवीए छिए ते न्यायी ब्रीटीश राज्यनाज प्रताप छे अने एज राज्य हिंद उपर चिरकाळ सुधी तपलुं रहो एज अमारी आंतरिक भावना छे.

आ खास अंकमां गत् वर्षना अंको करतां अमारा वां-

वीरनिर्वाण अंक. चकोने विशेषता

ए जोवामां आवशे के ज्यारे गत् वर्षे पांच भाषाना लेखो अने घणां चित्रो हतां, त्यारे आ अंकमां हिंदी, गुजराती, इंग्लीश, मराठी, संस्कृत, पाकृत, अने उर्दू एम ७ भाषाना ५१ लेखो अने कविताओना संग्रह उपरांत त्यागीओ, तीर्थो, श्रीमानो, विद्वानो, जाहेर संस्थाओ, जाहेर उत्सवोना देखावो वगरेना ४९ रंगबेरंगी चित्रो रजु थाय छे, जेमां ‘कल्पसप्तसिंचन’ नुं टाईटल पृष्ठनुं चित्र एटलुं तो बोधक अने आकर्षणीय छे के, जे जोईने मनन कस्वाथी अमारा वांचको उत्तम ज्ञाननो अनुभव प्राप्त करी शकशे. वळी आ वखते केटलीक बोर्डिंगो अने सभाओना मुप चित्रो परीचय सहित प्रकट कर्यां छे, जेथी जैन कोमने आपणी संस्थाओ शुं कार्य करी रहेली छे, ते जाणवानुं उत्तम साधन मळी शकशे. ज्यारे सार्वजनिक घणा खास अंकोमां बनावटी अने मोहक चित्तोने समावेश थाय छे, त्यारे आ अंकमां एवु एक पण चित्र नथी के जे मात्र मनने मोह पमाडनारुं होय, पण आ अंकना चित्रोथी वांचकोने घणुंज जाणवानुं, जोवानुं अने मनन करवानुं

मळी शकशे. वळी आ अंकमां एक नवीनता-
ए जणाशे के जे जे लेखकोए आ अंकने उत्तम
लेखोथी सुशोभित कर्यो छे, तेमांना बनी शक्या
तेटला लेखकोनुं सम्मिलित चित्र तैयार
करी प्रकट करवामां आव्युं छे, के जे प्रथा
नवीनज छे; अने ए प्रथाथी जैन लेखकोनां
उत्साहमां अजब वधारो थवा अनेक संभव छे.
वळी एक वधु ध्यान खेंचनारो जो कोई फोटो
आ अंकमां होय, तो ते इटालीअन विद्वान
डॉ. एल. पी. टेसीटॉरीनो छे के जे विद्वान
नरे जैनधर्मनुं अच्छुं ज्ञान प्राप्त कर्युं छे अने
मांसाहार छोडी वनस्पत्याहारी बनेला छे, तेमज
बे चार नहिं पण जूदी जूदी १०-१२ भाषा-
ओना अच्छा जाणकार अने प्राचीन साहि-
त्यना अगाढ प्रेमी छे. आ विद्वान नरनी विशेष
माहिती चित्रपरिचयमांथी मळी शकशेज.

‘एक हाथे कई ताळी पडती नथी’ ए

उक्ति मुजब आवो

आभार.

अंक प्रकट करवा

माटे जूदी जूदी

मददनी जरूर पडे छे, ते मुजब आ अंक प्रकट
करवामां ब्र. शीतलप्रसादजी, बाबू ज्योतिप्रसा-
दजी, पं. नाथूरामजी प्रेमी, कुमार देवेंद्रप्रसा-
दजी, पं. पन्नालालजी बाकलीवाल, मा. दीपचंदजी,
मी. मणीलाल एच. उदाणी, मी. बी. पी.
पाटील वगेरेए योग्य सलाहो पुरी पाडी आ
कार्यने उत्तेजित कर्युं छे, ते माटे तेमनो तथा
जे जे लेखकोए आ अंकने ७ भाषाना उत्तम
लेखोथी शणगार्यो छे, तेमज जे जे संस्थाओए,
तीर्थना कार्यवाहकोए, श्रीमानोए तथा विद्वानोए
आ अंक माटे अमारी सूचना मुजब चित्रो
मोकली आप्या छे, तेमनो तथा त्वराथी अने

काळजीपूर्वक रीते आ अंक तैयार करी आ
नार “सुरत जैन” प्रेसनो आ स्थळे धन्य
पूर्वक आभार मानीए छीए. पुष्कळ पत्र
वहार अने कोशांश करवा छतां आ अंक
अनो कलकत्ताना बे जाणीता पुरुषो स्वर्ग
श्रीमान् शेट परमेष्ठीदासजी अने बा
धन्नुलालजी सोलीसीटर, के जे बे नरो आ
दिगंबर जैन कोम तरफथी, श्री समेदशिरज
संबंधीनो केस वर्षो थयां चलावी रहेला हए
अने जेमनो जैन कोम उपरनो उपकार अगत
हतो तेमनां चित्रो अने परिचय अमो प्रकट
करी शक्या नथी, तेथी अमने खेद थाय
पण भविष्यमां आ परोपकारी नरोनो सचि
परिचय प्रकट करवा अमो बनतुं कर
ईच्छा राखीए छीए. छेवटमां एटलुंज जप
वीशुं, के आ बालकनुं आ आठमुं वर्ष निर्दि
पसार थाओ, तेम युरोपना महाभारत युद्ध
निवेडो जल्दी आवी, राजा प्रजा वच्चे शां
थई, प्रतापी अने न्यायी ब्रीटीश राज्य
विजय थाओ! जैन कोममां नवा दानवी
उत्पन्न थई जैन कोमनी उन्नतिनां कार्यो वधु
वधु थवा पामो, तेमज आ आठ वर्षतुं बाट
पण निर्विघ्ने दिनप्रतिदिन वधु अने वधु ला
आपवा शक्तिवान थई जैन जातिनी वधु से
बजाववा पगभर थतुं रहो एज झमारी आं
रिक भावना छे.

आ अंक जोतांनी साथे सुन्न वांचकोने
णाशे के ए तैयार करवा पाछळ केटली बधी जहेम
उठाववी पडी हं
ब्राह्मकोनी आतुरता. जो के अमोए आ
नना अंकमां खु
रीते प्रकट कर्युं हतु के आ अंक कार्तिक सु



मीठो मीठो सबरस !

सबरस ! सबरस !! बेसते वरसे सबरस !!!
 महावीर निर्वाणोत्सवनो सबरस ! वांचको !
 जोजो, आ सबरस खारो उस जेवो नथी हों !
 ए तो मीठो साकर जेवो छे ! समज्या के ? एमां
 तो तमाम गळ्या गळ्या धर्मना रहस्यवाळा
 अने विद्वान लेखकोना पेटना उभराना तत्वो
 सबरसरूपे भरेलां छे ! सबरस जो जरा वधारे
 खवाय, तो लागलीज उलटी के झाडा गमे ते
 थई जाय अने आकळविकळ करी नांखे,
 पण आ तमारा सेवकनो सबरस तो गमे तेटला
 फाकेफाका मारी खाओ, तोपण कशो वांको
 वाळ के उलटी, अरुचि कशुंए थवानुंज नहिं !
 जेम खाओ, तेम वधारे खावानुं मनज थया
 करशेने ! एवो मारा सर्वोत्तम सबरसनो गुण
 छे हों ! पण जोजो ! बहु लोभना मार्या, सामडुं
 खाई मारुं बहु मूल्यनो सबरस खुटाडी न देता !
 नहिं तो पछी हुं बीजुं लावीश कयांथी ? केमके
 पेला पेटाराओमां पडेल्ला कीडाओ अने उधा-
 ईओ पछी खाशे शुं ? ते फिकर छे !!!

* * * * *
 ठें डगुं, पण में ना डगुं !

जुओनी ! पेले नागोरनो मोटो शास्त्रभं-
 डार के जेमां हझारो पुस्तको छे, अने ते
 खासो सडया करतो हशे ! पण कोईने जोवो
 होय के वांचवा जोईए तो तेना मालिक बनेला
 भट्टारक बावा पाडे छे चोरखी ना, केमके
 बळी कोई शीखे के छपावी दे तो तेमनुं मान

दोढ खांडी ओछुं थई जाय केनी ? अने
 पेला छापाना विरोधीओनुं पाकी आवी
 उलळकूद करी मुके ते जुहुं ! कोण जाणे
 शा मोटा पहाड जेवां ! कारणथी ना

पाडता हशे ? हमणाज थोडा दिवस उपर
 पं. पन्नालालजी बाकलीवाले दोढ महिना
 सुधी धामा नांखी परमेश्वर जेटला कालावाला
 कर्या, पण बडा बावा डगोज शाना ? ना ते
 नाज. हा थाय त्यारे तो कागडा काळा मंसज
 थई जाय केनी ? एतो "ठें डगुं पण में
 ना डगुं" !!!

* * * * *
 जल्दी ते कयांथी मळी जाय ?

अधिपतिराज ! तमे पण बडा जघरा तो
 खरा ! लोकोनी अने तमारा बळापाखोर मि-
 त्रोनी आंखमां खूंचे एवुं काम करी बताववा
 मंडी पडया छे ! खास अंक माटेना आमंत्रण-
 ना आकर्षणीय नोतरां ! ज्यां जोईए त्यां
 तैयार ! ज वांचे ते ललचाया विना रहेज नहिं.
 क्यारे मंगावुं ने क्यारे वांचुं ? क्यारे चित्रो
 जोडं ने क्यारे मित्रोना लेख वांचुं ? क्यारे
 नीकळशे ने क्यारे हाथमां आवी उभो रहशे ?
 एवा अनेक विचारो दरेकना हृदयतरंगमां उभा
 थया विना रहेज नहिं, पण जल्दी ते कयांथी
 मळी जाय ? कांई लाडवा खावाना छे ? एटला
 एटला लेखो अने एटला एटला चित्रो मेळववा,
 तेना ब्लोक बनाववा, छपाववा, मुधारवा,
 मगजनुं राइतुं करवुं विगरे कांइ थोडी खटपट
 अने जेहेमत छे ? एतो बा तमेज भांगफोडीया !
 थई रह्या ते मफतमां एटली मेहेनत कर्या करो,
 बाकी बंदो कांई एवी मफतीया मजुरी करो
 नहिं ! तेम कोई पण करे नहिं ! पेहेला पेट
 पछी वेठ, पण तमे तो अवधिज करो छे !

* * * * *

हजारो रुप्याનો भोग !!

४०-५० चित्रो अने छ सात भाषाना विद्वतापूर्ण लेखोथी भरेलो अंक कादीने हझारो रुपीयानो प्रथम तबक्रेज भोग ! आपवानी हिम्मत तमेज करो बा ! मारी तो जीकर न चाले ! पण वाणीयो लेटे ते कारणेज ! एक खरची चार लेवानी फिकर राखेज, तेम तमो पण अंक कादी ग्राहकोने गांडाघेला बनावी, ललचावी, दोडादोड करावी मुको छो ! जेवुं जादुज तो ! तमारा आटला बधा ग्राहक वधी जवानुं कारण, पण मने तो एज लागे छे अने तमारा जुना पुराणां वडील बंधु बळजा करे छे, तेनुं पण एज कारण हशे ! नानुं थई भागळ वधे ते केम खमाय !

हपलेक जोवाथी लाभ शो ?

वार ! पण बांचको ! एमोटो थोथो अने पोथो तमारा हाथमां तो आव्यो, पण एने पुरेपुरो बांचशो के राम राम ! फक्त चित्रो जोइनेज पाणीचुं ! अरे एवी नादानी कोई नहिं करता हों ! बंदो तो शब्देशब्द बांच्या वगर नहिं छोडवानो ! तमोने फुरसद नहिं होय तो रोज थोडुं थोडुं स्वाध्याय तरिके बांची पुरो बांचजो, पण बांचजो जरूर ! वंचावजो पण जरूर !! अने मगजमां भरीने

बुधरजो पण जरूर !!! त्यारेज संपादकजीनी बहोळी मेहेनतनुं सार्थक ! नहिं तो वर्षादनुं पाणी पग धोवामां जाय तेमां लाभ शुं ?

गजब करे छे बा गजब !!

संपादकजी, आप वचनना साचा तो खरा ! गया वर्षमां भेटो पण पुरी आपीने लेख पण

काई रंगबेरंगीज ! जे वांचे तेनुं मन ललचाय अने तरत ग्राहकज थई जाय ! भेटो पण थोडी हिंदी ने थोडी गुजराती भाषानी एटले बसे भाषाना ग्राहकोनुं मन संतोष थाय. लबाजमना पोणाबे रुपीया तेतो मात्र नामनाज छे. आखा बरसना अंको अने भेटोना पुस्तकोनो दगलो एकठो करीए तो खासुं चार पांच रुपीयाना पुस्तक करतां पण वधारे साहित्य एकटुं थाय. गजब करे छे बा गजब !! अने आ नवा वरसमां पण पाछी एवीज भेटो अने एथी पण सारं बांचन पुं करवानी हिम्मत भीडे छे, ए पण अजबज केनी ? दर वर्षे भेट आपवावाळा पण क्यांथी मळे छे ? ने एटला लेख लखवावाळा पण नवरा ! क्यांथी नीकळे छे !!

हुं पण सचित्र !

ओहो ! पण अधिपतिसाहेब मारा 'उपर पण फिदा थई गया ते तमे जोयुं के ? हुं रोज कह्या करतो के तमे चित्रोवाळो अंक कहाडो ने आम भपको करो ने तेम फेशान करो त्यारे मारा लेख शुं तमने पसंद नथी के हुं भपका वगर रही जाउं ? मारा आवा टाणा तेमने सचोट लाग्या अने जुओनी लेखने मथाळे खासुं रमकडा जेवुं बाणवालुं चित्र गोठवी दीधुं. बंदा हवे खुश खुश थई गया ! केमके मारं गरीबनुं पण आटळुं बंधु मान ! हवे तो बस ! हुं पण तमारी हजुरमां दर महिने आव्याज करवानो अने तमने दिलगीर हशो तो पण हसाव्या करवानो ! बस ! परमात्मा साजो ताजो राखे एटलुंज काम !!

ઠંડુંગાર કેમ ?

અરે ! પળ પેલા દાનના ઠુંગાર માણેક-
ચંદ્રજી શેઠને તો હવે મુલીજ ગયા કે ?
સ્મારક ફંડ ખોલ્યું હતું તેમાં તો માત્ર નહિ
જેવાંજ નાણાં ભરાયાં અને હવે તો ઠંડુંગાર
થઈ ગયું ! શું આપણા લોકો ઇટલા વધા
નગુણાજ હશે ? નહિં નહિં ! એતો બોલવેજ
ચતુર ! બાકી પૈસા કાઢવા હોય તો “ પાછલા
બારણાં ” ઇવુજ આતો થયું. જેણે લાખો સરસ્વી
જૈન કોમને હુવતી વચાવી તેને માટે લાખોનું
ફંડ પળ ઓછું ગણાય તો આતો ફકત પાંચ દશ
હજારના પળ ફાંફા ! ઇશું આપણું નગુણાપણું
નહિં ગણાય ? હશે ! તમોને જે રુચે તે સ્વં ! જોર
જુલમના કાંઈ જુહાર થાય છે ? પળ હવે જે
ફડ ઇકત્ર થયું છે, તેમાં હજુ પળ જેનાથી વને
તે કંઈ ને કંઈ જરૂર મોકલાવો અને પછી
તેમાંથી યોગ્ય વ્યવસ્થા થઈ શેઠજીની યાદગીરી રહે
ઇટલે થયું “ સાપ ગયા અને લીસોટે રાજી
રહેવાનું છે ” !!!

વિનોદી.

નવીન હિન્દી ગ્રંથો તૈયાર હૈ ।

સમયસાર નાટક (સટીક) ૨॥

આરાધના કથાકોશ (૨૪કથાઓ) ૧।

મક્તમર કથાસંગ્રહ (મંત્ર યંત્ર સહ) ૧।

મુશીલા ઉપન્યાસ દ્વિ. આવૃત્તિ

(સ્યા. પં. ગોપાલદાસજી વરૈય્યા કૃત

પૃ. ૩૧૨) ૧)

બુદેકા બ્યાહ (હાસ્યરસ પૂર્ણ) ૦।=

મિલનેકા પતા-

વૈનેજર, દિ. જૈન પુસ્તકાલય-સુરત ।

ઉપદેશકના ધ્રમણનો રિપોર્ટ.

તા. ૧૧-૮-૧૪મીએ કુરમસદ પહોંચ્યો.

મંદિર એક, ધર સંખ્યા ૩૫ છે, ધ. હેમસાગ-
રજના પ્રમુખપણા નીચે એક સભા યદ, જેમાં
રાત્રિભોજન ત્યાગ અને સ્વાધ્યાયપ્રચાર
વિષે વ્યાખ્યાન આપ્યું. છ ભાઈઓએ ચાર
માસ સુધી અને આઠ સ્ત્રીઓએ અમુક માસ
માટે રાત્રિભોજન ત્યાગ અને છ ભાઈઓએ
સ્વાધ્યાય કરવાના નિયમ લીધા. ૩. ૨) ઉપ-
દેશક કુંડમાં અને ૩. ૧)ની રસીદ જૈન સિ-
દ્ધાંત પાઠશાળા મોરેનાની વેચી; અને પ્રહુ-
દાસ જયસિંહભાઈ સભાના મેમ્બર થયા.

તા. ૧૩ મીએ પેટલાદ આવ્યો. મં-
દિર એક, ધર સંખ્યા ૮ છે. રાત્રે સભા
કરી મિથ્યાત્વત્યાગ, અને જીનપૂજન વિષય
પર વ્યાખ્યાન કર્યું, જેથી સાત ભાઈઓએ
એક વર્ષ માટે નિયમિત વારે અષ્ટદ્રવ્યથી
પૂજા કરવા અને ચાર ભાઈઓએ કમવાર
ચાર ચાર મહિને રાત્રે અન્નના પદાર્થ નહીં
ખાવાના નિયમ લીધા. અહીંના ભાઈઓ ધ-
ર્મથી વિમુખ થતા જાય છે. મંદિરની પણ
વ્યવસ્થા ખરાબર નથી. પ્રમાદ છોડી કામ
કરવું જોઈએ. ત્રણ ભાઈઓ તરફથી ૩. ૩)
ઉપદેશક કુંડમાં અને શેઠ બંસીલાલજી જૈન-
વાલ, ૩. ૩) ભરી મેમ્બર થયા. ખીજ
શાસ્ત્રસભા યદ.

તા. ૧૫ મીએ નાર આવ્યો. દિ. જૈન
મંદિર કે ચૈત્યાલય કાંઈપણ નથી, પરંતુ એ
ધર જૈનોનાં છે. રાત્રે શ્વેતાબરીની ધર્મશા-
ળામાં એક જાહેરસભા કરી ‘પાંચ
પાપનો ત્યાગ એજ સાચો ધર્મ છે’ એ
વિષય ઉપર વ્યાખ્યાન આપ્યું, જેથી ડાકટર

ભાઇલાલે તથા બીજા ભાઇએ શીલવ્રત ગ્રહણ કર્યું તેમજ કેટલાક વિધર્મીઓએ સંકલ્પી હિંસાનો ત્યાગ કર્યો. ડૉક્ટર પ્રાં. સહાના મેમ્બર થયા. ચૈત્યાલય બનાવવા લલામણ કરવામાં આવી.

તા. ૧૭ મીએ સાયમા પહોંચ્યો. ચૈત્યાલય એક, ધર સંખ્યા ૮ છે. રાત્રે શાસ્ત્ર-સલા કરી અને તા. ૧૮ મીએ રાત્રે જનપૂજન અને સ્વાધ્યાય પ્રચાર વિષયપર એક વ્યાખ્યાન આપ્યું, જેથી છ ભાઇઓએ શાસ્ત્રશ્રવણ અને ભાઇ ત્રીભોવનદાસે શાસ્ત્ર વાંચવા કબુલ્યું. પંચ તરફથી ૩. ૨) ઉપદેશક ફંડમાં આવ્યા. ૩. ૧) આગલી ઉધરાણી આવી.

તા. ૧૯ મીએ કાણીસા આવ્યો. ચૈત્યાલય એક, ધર સંખ્યા ૧૬ છે, રાત્રે 'કુ-રીતિ ત્યાગ અને સ્વાધ્યાય પ્રચાર' પર વ્યાખ્યાન આપ્યું, જેથી ૧૭ ભાઇઓએ રાત્રે અજના પદાર્થ નહીં ખાવાના અને આઠે સ્વાધ્યાયના નિયમ લીધા. એકે તમાકુ, ખીડીનો ત્યાગ કર્યો, ૭ ભાઇઓ તરફથી ૩. ૬ા ઉપદેશક ફંડમાં આવ્યા. અહીં પહેલાં જૈન પાઠશાળા હતી પરંતુ શિક્ષક તેમજ પગાર બરાબર ન હોવાથી ટુટી ગઈ છે. શીખનાર છોકરા છોકરીઓ ૧૦-૧૫ છે.

તા. ૨૧ મીએ ખંભાત પહોંચ્યો. અહીં એક પણ દિ. જૈનનું ધર નથી પરંતુ એક વિશાળ દિ. જૈન મંદિર છે. મૂર્તિઓ વધારે સંખ્યામાં છે પરંતુ અવ્યવસ્થિત છે. પુજારીનું નામ મગનલાલ કેળાભાઇ છે જે ૩. ૩)ના માસિક પગારથી પ્રક્ષાલ કરે છે. આ ભાઇ ખોરસદનિવાસી શ્વેતાંબરી છે. મંદિરની વ્યવસ્થા પણ કાંકારલાલ છોટાલાલ ધીઆ, જે એક શ્વેતાંબરી ભાઇ છે એમના હાથમાં છે. દિગંબર જૈન સમાજ અને સા-યમા, કાણીસાના ભાઇઓએ આ મંદિરમાં

એક પુજારી રાખી સર્વ પ્રબન્ધ પોતાના હાથમાં લેવા જોઈએ. ઉત્તમ રીતે દેખરેખની ધણીજ જરૂર છે.

તા. ૨૨ મીએ તારાપુર આવ્યો. મંદિર કે ચૈત્યાલય કાંઈપણ નથી, પણ ધર-સંખ્યા ૪ છે. રાત્રે ચૈત્યાલય સ્થાપન કરવા અને કુરીતિ ત્યાગ, સ્વાધ્યાય આદિ વિષયપર કહ્યું; જેથી ચારે સ્વાધ્યાય કરવાનું અને એક માસ માટે એક ભાઇએ શાસ્ત્ર વાંચવા તથા ચારે સાંભળવાનું સ્વીકાર્યું. શેઠ પ્રેમચંદ દીપચંદ ૩. ૭) ભરી પ્રાં. સહાના મેમ્બર થયા. ૩. ૨) ઉપદેશક ફંડમાં અને ૩. ૨)ની રસીદ જૈન સિં. પાઠશાળા-મોરેનાની વેચાઇ.

તા. ૨૩ મીએ સોજીત્રા પહોંચ્યો. મંદિર સંખ્યા ૪, ધર સંખ્યા ૬૦, અને મનુષ્ય સંખ્યા ૩૦૦ છે. પર્યુષણપર્વ હોવાથી રોકાયો અને દરરોજ ભટ્ટારક સુરેન્દ્ર-કીર્તિજીની શાસ્ત્રસલા પછી દશલક્ષણધર્મના એક એક ધર્મપર વ્યાખ્યાન કરતો રહ્યો. રહવારે ૧૦ થી ૧૨ વાગ્યા સુધી તત્વાર્થ સૂત્રનો એક એક અધ્યાય પ્રતિદિન વ્યાખ્યાન રૂપથી વાંચતો રહ્યો. પાઠશાળા બંધ પડી હતી તે શેઠ નરસીદાસ ગંગાદાસની મદદથી શરૂ થઇ. પંચ તરફથી ૩. ૭) ઉપદેશક ફંડમાં અને ૩. ૩)ની રસીદ સિ. પાઠશાળા-મોરેનાની વેચાઇ. તા. ૨૮ મીએ બહુજ તાવ આવવાથી સોજીત્રા છોડવું પડ્યું.

તા. ૩૦ મીએ પાદરા આવ્યો. મંદિર એક, ધર સંખ્યા ૩૫, મનુષ્ય સંખ્યા ૧૨૫ છે. તા. ૧-૯-૧૪ ની રાત્રે 'મિથ્યા-ત્વ ત્યાગ એજ પર્યુષણ પર્વનું ચિન્હ છે' એ વિષય પર વ્યાખ્યાન આપ્યું, જેથી ૧૫ સ્ત્રીઓએ કુદેવ-પૂજનો ત્યાગ અને ૭ ભાઇઓએ શાસ્ત્ર સ્વાધ્યાય કરવાનું સ્વીકાર્યું. તાવનું જોર ઘણુંજ વધી ગયું, જેથી બાજી

सला थध शकी नहीं. पंच तरङ्गी ३. ५) उपदेशक इंडमां आव्या तथा उपदेशक इंडनी आगली उधराणी ३. १२) आवी तेमज्ज नैन सिद्धांत पाठशाणा-मोरेनानी रसीद ६ वेयाध.

ता. ४ थीये तभीअत धएणी नरम थध जवाथी दालोड तरङ्ग आव्यो परंतु सला आदि करी शक्यो नहीं. ता. ५ भीये शरीर अहुज्ज नरम पडी जवाथी धर तरङ्गो रस्तो वीधो.

ता. ६हीये रस्तामां आशरे २५ भाध-ओनी मुलाकात थध. ओमणे अहुज्ज आग्रह करी इडियाध जलयात्रोत्सवमां धमेपदेश कराववा उतार्यो. उत्सवमां लगलग १५० भाध ओकडा थया हता. 'ग्रहस्थीओये षट्कर्म' करवानी जइर छे' ओ विषय पर ओक कलाक सुधी व्याખ्यान आयुं. स्वाध्याय करनार ८ भाध छे. अहीं भीथीवाडा दि. नैन सला छे, जे आ तरङ्गना नैन समाजने अहुज्ज उप-कार करी रही छे. ओना आश्रय नीये लगलग २० पाठशाणा छे. सेक्रेटरी भाध डीरालाखण नवयुवक सदायरणी तथा प्रतिष्ठित ग्रहस्थ छे. ओमना आग्रह आभ्रतमां माइं भ्रमणु कराववानो छे. तेओ कहेता हताके, शुं आप अहीं लूलथी आवी गया छे? केमके अहीं केध उपदेशक कहीपणु आवता नथी,

पीताभरदास उपदेशक

गुजरातना प्रिय नैन अंधुओ! नैनी मात्रना वणु जिन्ह छे, ते ओके (१)“ नैनना ८ वर्षना डांकराओ पणु अनइश न कर्था सिंवाय भोजन करवुं नहीं; (२) रात्रिभोजन (अभना पदार्थ) भ्राजुजतां पणु जावा नहीं अतो (३) पाणी गाणवानुं करावेहुं कपडुं मोडुं अने उपध सुतरवाणुं के जेथी श्रवनी रक्षा

थध शके तेवा कपडाथी पाणी गाणी उपयोगमां वेवुं, परंतु गुजरातना भाधओमां आ क्रिया-ओना धखोज्ज अभाव जणुय छे. नानी नानी आयतमां के रात्रिभोजन जेवी कुप्रथा माटेज्ज उपदेशकने इववा ओ केवुं शरमावा जेवुं छे? ते छतां नैनोना यतुथांश पणु हमेश माटे रात्रिभोजन त्यागना नियमो वेता नथी. दरेक गामना पंचे दमाणु करी, उपदेशकना कार्य-पर अभव कराववा अने आ दुष्ट राक्षसणी ने हमेशना माटे जलदीथी त्याग कराववा प्रयत्न करवो जेधओ.

डाकोरदास लगवानदास जेवेरी

भंभी, उपदेशक विभाग-मुंआध

जीर्णोद्धारकी आवश्यकता:—सर्व दि. जैन पंच पाटनकी सूचनासे मंगलप्रसादजी सूचित करते हैं कि इधरसे तीन मील पर कोनी नामक छोटा ग्राम है, जिसमें १० प्राचीन मंदिर हैं और नंदीश्वरद्विप व सहस्रकूट चैत्यालयकी रचना है। इस समय मंदिर बहुत जीर्ण हो रहे हैं, उन पर झाड पेड उंगे हुए हैं, चमगुदड़ वगैरहके निवास करनेसे दुर्गंध आती है। सिर्फ वहां पर एक पुजारी रहा करता है, वस्ती उजड़ है। उन मंदिरोंका जीर्णोद्धार करना अत्यंत जरूरी है और हम पाटन निवासी ऐसे धनवान नहीं जो ८-१० हजार रुपया लगाकर उनका जीर्णोद्धार करा सकें। अगर इनका प्रबंध शीघ्र न होगा तो २ या ४ सालमें कोनीक्षेत्रका नाम ही न रह जायगा इसलिये सर्व भारतनिवासी उदार धर्मात्मा भाईओसे इसका इंतजाम करनेके लिये प्रार्थना की जाती है।



दिपमालिका और महावीरोत्सव:—दिपमालिकाके दिन काशी नागरी प्रचारणीके संभावनमें महावीरोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया गया। महोत्सवका यह तीसरा वर्ष है। इसकी नीव जैनधर्मप्रचारिणी सभा काशीने डाली थी और गत दो वर्षके उत्सवका कार्य उक्त सभा द्वारा ही होता रहा। इस वर्ष जैनधर्मप्रचारिणी सभाके स्थानमें भारतीय जैनसिद्धांतप्रचारिणी संस्था नाम बदल दिया गया है और उसका कार्य केवल ग्रंथप्रकाशन निश्चित हो गया है इसलिये उक्त संस्थाकी ओर से इस वर्ष महोत्सव न कर केवल महावीर चरित्र २००० छपाकर बांटा गया और महोत्सव जैन स्पोर्ट्स क्लब-काशी (जो कि चंद्रोजसे शुरु है) तथा स्याद्वादप्रचारिणी सभाके ओरसे किया गया। महोत्सव में सभापतिका आसन जी. एन. प्रोफेसर उनवाला साहबने सुशोभित किया। और मंगलाचरण अभयचन्द्र विद्यार्थीने पढ़ा। तत्पश्चात् गोविन्दराय विद्यार्थी स्याद्वाद महाविद्यालयने 'महावीर कौन थे? दिपमालिकाका उनके साथ क्या सम्बन्ध है?' इस विषय पर व्याख्यान दिया। अनंतर पं.

गजाधरलालजी न्यायाचार्यने महावीरस्वामिके परमात्मत्वका विवरण करते हुए और उनका दिपमालिकाके साथ संबंध दिखाते हुये व्याख्यान दिया। बादमें ब्रह्मचारी

शीतलप्रसादजीका एक प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। आपने अपने व्याख्यानमें अनेक प्रमाणोंसे दिगंबर जैन धर्मकी प्राचीनता सिद्ध की, अहिंसा धर्मका युक्तिपूर्वक दृढ़ प्रमाणोंसे वर्णन किया, जिससे उपस्थित सभ्योंके चित्तपर अधिक प्रभाव पड़ा। उनके बाद सभापति साहबने जैन धर्मके उद्देश्योंकी श्लाघा करते हुए शांतिजनक वक्तृता दी। प्रश्नात् पं. पार्श्वदास काव्यतीर्थ और पं. श्रीलालजी शास्त्रीने धन्यवाद दिया और सभा समाप्त की गई।

भांगीतुंगीने भेजे।—कार्तिकी पुनेभ
उपर भांगीतुंगी तर्थ उपर राभेता मुन्नेने
भेजे अराये हतो तेमां व्यापडा (पानदेश) नी
डीरापार्थ त इथा व्यापीश अनपूजन तथा
उत्सव थये हते.

शास्त्रदान:—पं. नाना रामचंद्र नागद्वारा नवीन प्रकाशित 'समयसार नाटक' ग्रंथ (कि. रु. २॥) नी २० प्रतो बारा-मतीवाळा जमनाबाई हेमचंद्र तरफथी गामे-गाम गया मासमां वैचवामां आवी हती.

वार्षिक मेळो:—श्री रुभभ्रह्मचर्याश्रमनो वार्षिक मेळो कार्तिक सुद ८ थी १५ सुधी हस्तीनापुरमां भरायो हतो जेनो वी-गतवार रिपोर्ट आवता अंकमां प्रकट

करीशुं. हवे आ संस्थाना सेक्रेटरी साहु जुगमंदरदासजी नजीबाबाद (बीजनोर) नीमाया छे माटे कईपण मदद मोकलनारने हवे नजीबाबाद मोकलवानी सगवड थई छे.

सेक्रेटरी इलास ईश्वरनीयर:-भतीया-तश्रवाणा आशाबाल परसे तमदास ७ वर्ष अठ्यास करवा पछी हाल सेक्रेटरी इलास ईश्वरनीयरनी परीक्षाभां मुअधमां पास यथा छे. वीसाभेवाडा प्रतिभां आपी परीक्षा पसार करनार आ अंधु प्रथमोज छे.

स्त्रीयोंको पूजन करनेका अधिकार क्या नहीं है?:-बड़ौत (मेरठ)में कुछ भाईओंने विरोध किया है कि स्त्रीयां जिन भगवानका पूजन नहीं कर सकती। उनसे कहा गया कि-जैनशास्त्रोंमें तो बहोतसी जगह स्त्रीयोंके पूजन करनेका वर्णन है तो उत्तर दिया कि वह चोथे कालकी स्त्रीयोंके लिये है आदि। यह उत्तर मूर्खताका है। स्त्रीयोंको प्रतिमा पूजन करनेका आधिकार शास्त्रोक्त है और इसमें बड़ौतके भाईओंने विरोध नहीं करना चाहिए।

वार्षिक मेला:-झांसी लाईनमां तालवे-टथी ३ कोस पर अतिशय क्षेत्र पवाजीमां कार्तिक वद १ थी ५ सुधी राबेतानो मेळो भरायो हतो अने धर्मोपदेश अपायो हतो. तेमज रामटेक तीर्थ उपर पण कार्तिकी पुनेम पर मेळो भरायो हतो.

लखनउमें साहित्यसम्मेलन:-पंचम हिन्दीसाहित्यसम्मेलन लखनउमें ता. २५

२७-२८ नवम्बरको प्रयाग निवासी पंडित श्रीधर पाठकजीके सभापतित्वमें होनेवाला है, जिसमें हिन्दी साहित्य प्रेमी जैनीयोंने भी अवश्य योग देना चाहिए।

शोकजनक मृत्यु और रु. ५५०१)

का दान:-खुरईमें गत मासमें धर्मप्रेमी सिंघई काल्दामजीका ९० वर्षकी वयमें स्वर्गवास हो गया। आपने अंत समयमें ५५०१) रुपयाका निम्न प्रकार दान किया है-५०००) जैनधर्माभूतवर्द्धनी पाठशाला-खुरई, १०२) दोनों मंदिरजी-खुरई, ५१) भारत. दि. जैन महाविद्यालय-मथुरा, ११) जैन सिं. पाठशाला-मोरैना, ११) सर्तकसुधा-पाठशाला-सांगर, ११) ललीतपुर पाठशाला, ११) बीना पाठशाला, ११) जैनगजट, ११) श्राविकाश्रम बम्बई, १५०) खुरईमें पुराना मंदिरके लिये, ५) जैनमित्र, ५) दिगंबर जैन और शेष तीर्थों पर भेजे गये हैं। धनवानोंने इस माफिक ही मृत्युके स्मरणार्थ दान करते रहना चाहिए।

भावनगरमां पाठशाळा:-भावनगरमां स्वर्गवासी शा. मुलयंद गुलाबयंद वागडीयानी विधवा मण्डीमाध तरकथी पोतानी स्वर्गीय पुत्री संतोडना स्म. लुर्थे आशा सुद प ने हीने पाठशाळाणी स्थापना विधिपूर्वक थछ ५ अने तेनुं नाम 'संतोडण्डेन दि. जैन पाठशाळा, रभायुं छे. अनी व्यवस्था माटे इभीटी नीमरामां आपी छे अने हाल रप विद्यार्थीओ गिक्षण लक्ष रखा छे. हवे आ पाठशाळाणा स्थायी निभावमाटे डाढेवी रकमनी भाडी व्यवस्था थवानी जरूर छे. आ स्थापना

बोर्डिंगना २२ विद्यार्थीओ बेठा हता, जेनुं परीणाम घणुं संतोषकारक आवेलुं छे. आ वखते जूदा जूदा १९ ऑ. परीक्षको नीमाई २६ ग्रंथोनी परीक्षा लेवाई हती अने उंचे नंबरे पास थनार विद्यार्थीओने परीक्षालय खाता तथा जुदाजुदा ग्रहस्थोनी मददथी आशरे ४००) ईनाममां वेंचाया छे. एकंदरे आ वखतनुं परीक्षालायनुं कार्य संतोषजनक पार उतर्युं छे जे एना बाहोश मंली दोशी रावजीभाईसखाराम (सोलापुर) जेज आभारी छे. नाम मुंबाई परीक्षालय, पण काम तो भारतवर्षीय दि. जैन परीक्षालय जेवुंज थाय छे.

भेणावडा अंधः—रतनाम तथा अ. महावाह भेडिंगना वार्षिक भेणावडाओ गत मासमां थनार हता, ते लडाहना डिगामने पीधे सूचना प्रकट करी अंध रखा हता.

त्रलु हुमड पी. अे.—मु'आधनी पी. शु. जैन भेडिंगमांथी आ वर्षे सोलापुर, सोलापुर अने इलटलुना उ हुमड विद्यार्थीओ पी. अे.नी परीक्षामां पास थया छे.

कुंडलपुरमां महावीर उदासीनाश्रमनुं कार्य ठीक आगळ वधतुं जाय छे. एमां त मासमां न्यायदिवाकर पं. गणेशीलाल-गीए सातमी ब्रह्मचर्यप्रतिमा विधिपूर्वक पूरण करी हती, जे प्रसंगे भारे महोत्सव हो हतो.

इंदोरमां कंचनबाई श्राविकाश्रम माटे कान वगेरेनी तैयारी थई रही छे अने क समयमां आ श्राविकाश्रम खुल्लुं मुकानि वकी छे.

विद्यार्थीओनी आवश्यकताः—इंदोरनी शेठ हुकमचंदजी बोर्डिंगने आसो सुद ३ थी 'शेठ सरुपचंद हुकमचंदजी दि. जैन महाविद्यालय' ए नाम अपायुं छे अने ९० संस्कृतविभाग अने ५० अंग्रेजी विभागमां एम १०० विद्यार्थीओ राखवामां आवनार छे, जेमां ३० छे अने ७० नी जरूर छे. दाखल थनारने बधी सगवड मळे तेम छे. दाखल थनारे लाला हजारीलालजी, मंती (नसीयांजी, इंदोर) साथे पत्रव्यवहार करवो.

स्थानकवासी जैन अग्रेसर राय शेठ चांदमलजी साहेब अजमेरमां गत मासमां स्वर्गवासी थया छे, जेमनी अग्निदाहनी क्रिया भारे धामधूमथी थई हती ! आ शेठ पोताना तरफथी चालतां धार्मिक खातांओ निभाववाने रु. ६००००) नी रकम जुदी काढी गया छे.

भट्टारक माटे वांधोः—श्री विशालकी-र्तिजी भट्टारकनी गादीए एक १२ वर्षना अज्ञान छोकराने बेसाडवाने लातूरनी सेतवाल पंच अने पं. रामभाउ खटपट करी रहेला छे, जे ए गादीने माननारी पंचने पसंद न होवाथी तेमणे ते सभे वांधो दर्शावनारी जाहेर सूचना सर्वे सेतवाल समाजमां बहार पाडी छे, जेथी सोलापुरमां सेतवाल भाईओनी एक सभा आसो वद १४ ने दीने मळी हती तेमां ए बाबत वांधो दर्शावनारो पत्र लातूर

लखवानो ठराव थयो हतो तथा आ प्रसंगे “भट्टारकने बदले गृहस्थाचार्य स्थापन करवानी जरूर” ए विषयनो शेठ हीराचंद नेमचंद दोशीनो लेख वंचाई तेनी १००० प्रतो छपावीने गामेगामं मोकलवामां आवी हती.

इंग्लिश भाषामां जैन ग्रंथोः—लंडनमां स्थापन थयली जैन लीडरेचर सोसायटी तरफथी मी० जुगमंदरलाल जैनी एम. ए. बेरीस्टर “Outlines of Jainism” नामे लखेलं इंग्लिश पुस्तक प्रकट थनार छे तथा प्रवचनसार, स्याद्वादमंजरी अने सदृशनसमुच्चय आ ग्रंथोनां इंग्लीश भाषांतरो तैयार थवा आव्यां छे.

जैन पत्रकारनो विभाग :-अष्टीना “जैन” पत्रकार अने स्वे.जैन कामनी उन्नति माटे तन, मन, धननो भोग आपनार उत्साही अने निडरपणे स्वतंत्र लेखो लखनार मी० लालुलाल इतेलुखंड कारलारी जेओ डेटलाक भासथी विक्षायत गयेला हता तेओ गत मासमां फ्रांसमां मृत्यु पामवाथी स्वे. जैनका मने ओक उत्साही अने स्वतंत्र लेखकनी बारे पोटा पडी छे. १०-१२ वर्ष थया “जैन” नामे साप्ताहिक वर्तमानपत्र काढनार आ लालु स्वे. जैनोमां सौथी प्रथमज हता, जे हलु आलु छे.

स्थानवासी साप्ताहिकः—अजमेरथी प्रकट थतुं हिंदी-गुजराती पत्र ‘श्वे. स्था. जैन कॉन्फरन्स प्रकाश’ हवे साप्ताहिक थयुं छे अने लेखो पण ठीक आवे छे,

नवा एड्रेसो अने आवती अंकः—खास अंकमां बाकी रहेला लेखोने स्थान आपवा तथा केटलाक मेलावडाना रिपोर्टो वीगत-वार प्रकट करवाने तेमज वी. पी. वसुल थवानी तथा नवा एड्रेस छपाववानी गरबडने लीधे मार्गशीर्ष अने पोष मासनो ६४ पृष्ठनो संयुक्त डबल अंक हवे पोष सुदी १ उपर प्रकट थशे. नवा के जूनां बधां आशरे २००० ग्राहकोना सरनामां (एड्रेसो) फरीथी छपाय छे, माटे एड्रेसमां कोईने कईपण फेरफार करवो होय, तो ताकीदे जणाववुं.

जैनतिथिदर्पणः—खास अंकके साथमें सभी ग्राहकोंको वीर सं. २४४१ का सुशोभित और सचित्र “जैनतिथिदर्पण” भेजा गया है जिसको बोर्डके उपर चिपकाकर या कांचमें जड़ाकर अपने कमरेकी शोभा बढ़ानेके लिये सूचना की जाती है।

ग्राहकोने सूचनाः—वर्ष जेसतानी साथे अगाडिथीज लखनम लेनाय छे माटे जे ग्राहको अने मेम्बरानेनी शी अगाडिथी आवी गयेली हती तेतखानेज आ आस अंक प्रथम मोकलवामां आवेला छे अने जेमतुं लखनम आडी छे तेमां अमदावाद जोर्डिंगना मेम्बराने (३.३), रतलाम जोर्डिंगना मेम्बराने (३.२) अने लुना के नवा आडीना अधा ग्राहकोने ३ ११११ ना वी. पी. थी आ आस अंक ध-एलीज ताकीदे कभवार रवाना करवामां आवे छे, माटे हवे काष्ठपणु ग्राहके लखनमनो मनीओडर मोकलवोज नहि.



आराधना-कथाकोषः—अनुवादक पं. उदयलाल काशलीवाल और प्रकाशक—“जैन मित्र” कार्यालय—बम्बई. पृष्ठ ३३६ मूल्य रु. १। ब्र. श्रीमन्नेभिदत्त कृत संस्कृत ग्रंथ-का यह स्वतंत्र हिन्दी अनुवाद मूल संस्कृत श्लोकों सहित प्रकट करके “जैन मित्र” के ग्राहकोंको उपहारस्वरूप दिया गया है, जिसमें पात्रकेसरी, भट्टाकलंक-देव, सनत्कुमार चक्रवर्ति, समन्तभद्रा-चार्य, अंजनचोर, उदयान, रेवतीरानी, वारिषेण मुनि, विष्णुकुमारमुनि, शिव-भूति, श्रेणिकराजा, यमपाल चाण्डाल, नमस्कारमंत्रमाहात्म्य आदिकी २४ कथाएं हैं। संस्कृत कथाएं १२३ पृष्ठोंमें और हिंदी भाषानुवाद २०३ पृष्ठोंमें विभक्त है। यह ग्रंथ सभी-को पढ़ने योग्य है क्योंकि ऐसे कथाग्रंथ पढ़नेसे कथाके रूपमें धार्मिक ज्ञान प्राप्त होकर जैनधर्ममें अगाढ़ श्रद्धा हो जाती है। छपाई बहुत सुन्दर है और मूल्य भी बहुत कम है। प्रकाशकसे और हमारे पुस्तकालयसे भी मिल सकता है।

श्री महावीर चरितः—ब्र. शीतलप्रसा-दजी द्वारा संग्रहित और पं. पन्नालालजी बाकलीवाल (भारतीयजैनसिद्धांतप्रका-

शिनी संस्था—बनारस) द्वारा प्रकाशित यह छोटासा महावीर-चरित है, जिसमें संक्षिप्त महावीर चरित लिखकर महावीरस्वामीके

बारेमें कितनेक अजैन विद्वानोंके मत भी प्रकट किये गये हैं। मूल्य ०) ३) सैंकड़ा, परंतु अजैनोंको विनामूल्य। यह पुस्तक जैनअजैन सभीमें बांटने योग्य है।

(१) बालविवाह, (२) वृद्धविवाहः—यह दोनों छोटे-टूटे श्रीमती मालवा दि. जैन प्रांतिक सभा कार्यालय—बड़नगर द्वारा प्रकट किये गये हैं और सभाके स-भासदों और पंचायतियोंको विना मूल्य और सर्व साधारणको लागत खर्चसे भेजे जाते हैं।

(१) अनित्य भावना (२) जैनी कौन हो सकता है ?—लेखक—बाबू जुगलकिशोरं मुस्तार और बाबू ज्योतिप्रसादजी (देव-वन्द) द्वारा प्राप्त। मूल्य डेढ़ आना और १ पैसा। प्रथममें पद्मनंदाचार्यकृत अनित्य-भावनाका मूल सहित पद्यानुवाद है। जब दुसरेमें अनेक ग्रंथोंके प्रमाण देकर जैन धर्मकी श्रेष्ठता बतलाकर सब कोई जैन-धर्मी बन सकता है ऐसा सिद्ध किया गया है।

दयास्वीकार—मांसतिरस्कारः—संपादक—बुधमल पाटनी और प्रकाशक—बाबू दयाचंद्र गोयलीय जैन बी. ए. बैरुनीखंदक-

લેખનુ । ઇસ પુસ્તકમેં દાનવીર રાયબહા-
દૂર સેઠ કલ્યાણમલજીકા સચિત્ર જીવન-
ચરિત્ર પ્રથમ દેકર દયાધર્મકીમહિમાકા
વર્ણન ઓર સમી ધર્મગ્રંથોમેં માંસમક્ષણ
નિષેઘ હૈ એસે બહુતસે પ્રમાણોં પ્રકટ કિયે
હૈ ઓર માંસાહારસે વનસ્પત્યાહાર વિશેષ
પૌષ્ટિક પદાર્થ હૈ એસા મી સિદ્ધ કરકે
દયાધર્મીયોંકા કર્તવ્ય પ્રકટ કિયા હૈ ।
માંસાહારીયોંકો વિનામૂલ્ય ઓર ઓરોંસે
લાગતકે દામ પર મિલ સકતી હૈ ।

દેવપરીક્ષા પ્રથમ ભાગ:—પ્રકાશક આ-
ત્માનંદપુસ્તકપ્રચારમંડલ—દેહલી । યહ
છોટીસી ! પુસ્તકમેં કથારુપમેં સચ્ચે
દેવ—ગુરુકી પરીક્ષા બતલાઈ ગઈ હૈ । મૂલ્ય
૦)૦૧૧ ઓર જસવંતરાય જૈની લાહૌર
દ્વારા પ્રાપ્ત ।

વિશ્વતત્વ ચાર્ટ (નકશા):—સંપાદક મા.
દીપચન્દ્રજી ઓર પ્રકાશક કુમાર દેવેન્દ્રપ્ર-
સાદજી (દિગંબર જૈન બોર્ડિંગ, ઈલાહાબાદ)
મૂલ્ય સિર્ફ દો આના । યહ નક-
શામેં જીવાજીવાદિ સાત તત્ત્વોંકે સમી
ભેદોં સ્પષ્ટ રુપસે અલગર બતલાયે ગયે હૈ ।
તત્ત્વોંકા અનુભવ સુલભતાસે પ્રાપ્ત કરનેકે
લિયે યહ નકશા અતીવ ઉપયોગી હૈ ઓર
કાંચમેં જડાકર મંદિરજી, પાઠશાલા વ
ગૃહોંમેં સંગ્રહકરનેયોગ્ય હૈ । છપાઈ બહુત
સુન્દર હૈ । હમારે પુસ્તકાલયસે મી મિલ
સકતા હૈ ।

વિમલપ્રબંધ—સંશોધક અને પ્ર-
કાશક મણીલાલ બકોરભાઈ વ્યાસ—સુરત:
પાકુ પુકું. ૫૪ ૪૦૦ અને, કિં. માત્ર ૩. ૧૧
પ્રાચીન ગુજરાતી જૈન સાહિત્યના આ

ગ્રંથમાંથી અનેક બાબતો ધણીજ જાણવા,
યોગ્ય મળી આવે એમ છે જેથી એની વિ-
સ્તૃત સમાલોચના સ્થાનાભાવને ક્ષિધે હવે
પછી પ્રકટ કરીશું, પણ એટલું તો નક્કીજ
છે કે જૈન અને જૈન દરેકે આ ગ્રંથ અવશ્ય
ખરિદવા યોગ્ય છે.

લવણસ્વામીનું જીવનચરિત્ર:—
સ્થાનકવાસી સાધુ લવણસ્વામીના આ જીવન
ચરિત્રમાંથી ધણી જાણવા લાયક બાબતો
મળી આવે છે. પ્રકાશક—સંઘવી સવચંદ
હરજી—જનમ ખંભાળીયા. કિ. ૩. ૦૧૧ ૫૪ ૧૦૦.

સુલતાન બહાદુરની ચિત્રોડપર
અહાઈ:—પ્રકાશક પ્રભુશંકર ન., તંત્રી ચંદ્રપ્રકાશ
સુરત. આ ૨૫૦ પાનાની ઐતિહાસીક નવલ-
કથા છે જે ચંદ્રપ્રકાશ માસિકના ગ્રાહકોને
બેટ અપાયલી છે તથા “દિગંબર જૈન”ના
ગ્રાહકોને આઠ આને મળી શકે છે.

સંસારદર્પણ:—પ્રકાશક—પ્રભુશંકર નર-
ભેરામ વ્યાસ—સુરત. ૫૪ ૨૦૦ પાકું પુકું
અને કિ. ૩. ૧) આ પુસ્તક સ્વર્ગીય બાણી
રોમેશ્વર દત્તાના ‘સમાજ’ નામે ગ્રંથનો
ગુજરાતી અનુવાદ છે, જેમાં એક રસીલ
અને બોધક વાર્તારૂપે હિન્દુ સંસારનું એક
ચિત્ર રજુ કરવામાં આવેલું છે, જે સ્ત્રીપુરુષ
દરેકે વાંચવા લાયક છે કેમકે એમાંથી ગૃહ
સંસાર સુધરવાના અનેક ઉપાયો મળી આવે છે.

રસીલી વાર્તાઓ:—પ્રકાશક ‘સુન્દરી-
સુબોધ’ મન્દિર અમદાવાદ. કિ. ૦૧૧ અને એ
માસિકના ગ્રાહકોને બેટ. એમાં રામભેહન-
રાયકૃત ૧૨ જુદી જુદી વાર્તાઓનો સંગ્રહ છે.

છાલો પાલો મરી મસાલો:—પ્રકા-
શક ડી૦ પી૦ માદનની કંપની—સુરત. ૫.
૧૦૦ કિ. ૦૧૧ દરેક વનસ્પતિમાં શું શું
ગુણો છે અને તે ક્યા ક્યા રોગો ઉપર ચાલી
શકે છે તેને લગતા આ નામના બે ભાગો
બહાર પડી ચુકેલા છે અને આ ત્રીજો ભાગ
છે, જેમાં ૨ થી હુ સુધીના નામની દરેક
દેશી વનસ્પતિના ગુણો બતાવેલા છે. એમાં
વિશેષ ખુબી એ છે કે દરદોનું કક્કાવારી

सांकेतिकीयुं पणु आपेयुं छे जेथी गमे ते रोग उपर कछ वनस्पतिना उपयोग करवो ते तरत नाली शकाय छे. देशी वनस्पतिना गुणो विगतवार नालुवा माटे तथा दरेक रोग माटेनी देशी औषधि शोधी काढवा माटे आ पुस्तकना त्रणे लागो दरेके संग्रह करवा योग्य छे.

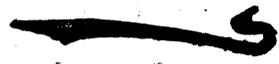
गुजराती पंच-भास अंकः—अमदावादी प्रकट यथा अठवाडिक “गुजराती पंच” नो मोटां ११६ पानानो आ दिवाणीनो भास सचित्र अंक छे, जेमां श्रीटीश शहेनशाह, युरोपना राज्ञो तथा जीन डेटलाक नालुवा लायक ग्रहस्थाना ३१ क्राटाओ तथा अत्रेण, गुजराती मणी ८० लेपो-कविताओनो संग्रह छे, जे दरेके जेवा अने वांयवालायक छे. आ पत्रकार होठ ३५ जेवा जुन लवाजममां मोटुं अठवाडिक नियमित पेपर उपरंत आवो भास अंक अने बेटनुं पुस्तक आपे छे, जेथी जेनी लोकप्रियता धरणी वधती जती नालुय छे. आ अंकनी छुटक किंमत आठ आना छे. मणवानुं स्थण-‘गुजराती पंच’ ओदिस—अमदावाद.

अभ्यारो सोदागर-भास अंक—मुंभाथी अेकाद वर्ष थयां हिंदु मालिकी नीये प्रकट थनुं रौण्डु जुनुं पत्र ‘अभ्यारो सोदागर’ छे, जेनो आ ८० पानानो दिवाणीनो भास सचित्र अंक छे, जेमां जुदा जुदा ६५ चित्रो अने गुजराती लेपो-कविताओनो संग्रह छे. प्रथम प्रयास होवाथी आ अंक जेधुअे तेवो सुशोभित अने दणदावाथी, पणु लविष्यमां आथी सारा भास अंका प्रकट करवानी अे पत्रकार उमेद राखे छे, जे नालु आनंद थाय छे.

दि. जैन प्रां. सलाडी रिपोर्टः—आपणी मुंभाथ दि. जैन प्रां. डान्दरसने आ वीर सं. २४३८नो १३मो रिपोर्ट छे जे जेतो नालुय छे क अे वर्षमां १८६ सलासहो हुता. आ सला तरक्षथी १० भातांओ थाकी रहेला छे, जेमां ‘जैनमित्र’ अने

‘परीक्षालय’ भातुं उत्तम कार्य करी रहेलुं छे. स्थायी इंड मात्र साडा सत्तर हुन्नरुं छे जेमां आर हुन्नर तो संस्कृत विद्यालयना छे तेम ३. यार हुन्नर स्पीशी अंकमां संडोवायला छे, पणु यालु भाते आशरे त्रणु हुन्नरनी आवक नालुय छे. “जैन मित्र” भातानो आगदो घटारो आशरे ३. जे हुन्नरनो छे, पणु हवे ग्राहक संप्या वधती जती होवाथी ते पुरातो नय छे. वणी आ सलाना प्रमुष दानवीर शैठ मालेक्यंदणना वियोगथी सलाने लारे संकट आपी पड्युं छे पणु जेना महामंत्री आषु मालेक्यंदण जेनाडा उत्साही होवाथी दरेक काम नियमित अजव्या नय छे अे नालु आनंद थाय छे.

‘जयाजी प्रताप’-खास अंकः—ग्याली-यरसे प्रकट होता हुआ इस हिन्दी-इंग्लीश अष्टानिक पत्रने श्रीमंत महाराजा माधवराव सेंधियाकी ३९ वीं वर्षगांठकी खुशीमें बड़ा भारी सचित्र खास अंक प्रकट किया है, जिसमें बड़े ६४ पृष्ठोंमें ११ इंग्लीश और २९ हिन्दी भाषाके उपयोगी लेखोंसे अतिरिक्त ८७ चित्रों हैं। इस अंकमें विशेषता यह है कि ग्यालियरमें जोर हुन्नर-उद्योगकी बड़ी २ संस्थाएं हैं उनका सचित्र वर्णन बहुत ही सरल भाषामें दिया गया है। चित्रोंमें ग्यालियर नरेशकी अलग २ अवस्थाके अनेक चित्रोंके अतिरिक्त, युरोपीय प्रचंड युद्धके चित्रों और अन्य कई चित्रों हैं। यह अंक सभीको अवश्य देखने और पढ़ने योग्य है। ‘जयाजी प्रताप’ ऑफिस ग्यालियरसे प्राप्त। अलग मूल्य रु. १)



चित्रपरिचय ।

इस सचित्र खास अंकमें जिन २ त्यागी, भट्टारक, तीर्थक्षेत्र, बोर्डिंग, महोत्सव, श्रीमान और विद्वानोंके चित्र प्रकाशित किये हैं, उन सबका परिचय देना अत्यावश्यक समझ कर हम यहांपर उनका संक्षिप्त परिचय प्रकट करते हैं जो हमारे पाठकोंको अतीव रुचिकर और उपयोगी होगा ।

(१) कल्पतरुसिञ्चन ।

सूखा हुआ कल्पवृक्ष फिर हराभरा होने लगा ।

श्री रुषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुररूपी गमलेसे ब्रह्मचर्यरूपी कल्पवृक्षके अङ्कुर फूट निकले हैं । ओंधाके झोंकोंसे और प्रचंड आतपसे रक्षा करके इन अङ्कुरोंकी वृद्धि करना आपका धर्म है। इसका निरीक्षण करना आपका प्रधान कर्म है। धनदानरूपी जलसे सिञ्चन करना मानो अपने धर्मकी रक्षा करना है । इसको सर्व प्रकारसे सुरक्षित रखना मानो अपनी जातिको सुरक्षित रखना है । देखिए, कहीं ऐसा न हो कि सिञ्चनके अभाव या न्यूनताके कारण यह लहलहाता अङ्कुर, यह हराभरा पौधा, मुरझा कर सूख जाय ।

सावधान ! जैन जाति सावधान ! जिस कल्पवृक्षके अमृतमय फलोंसे जातिका जीवन स्थिर रहता है, उसके अङ्कुरकी रक्षा, वृद्धि और निरीक्षण करना आपका मुख्य कर्तव्य है । आपको विश्वास

रहे कि इस महावृक्षकी सुविरतृत शाखायें यत्र तत्र फैल कर सर्वत्र धर्मका प्रचार, करनेमें समर्थ होगी ।

उंचा उदार पावन, सुख शान्ति पूर्ण प्यारा, यह कल्पवृक्ष सबका, निजका नहीं तुम्हारा। रोको न तुम किसीको, छायामें बैठने दो, कुल जाति कोईभी हो, संताप मेटने दो॥ इसलिये हम कहते हैं कि—

सिञ्चन करो! सिञ्चन करो !! सिञ्चन करो!

“देवेन्द्रपसाद”

यह ब्रह्मचर्यरूपी वृक्ष अतीव आकर्षणीय और बोधप्रद चित्त वृक्षके पूर्ण आकारमें शाखाएं, फूल, फल, पत्तों आदि सहित है, जिसको भव्य नर श्रद्धारूपी जलसे और भव्य नारी भक्तिरूपी जलसे सिञ्चन कर रही है ।

प्रथम अङ्कुर सम्यग्दर्शन बताया गया है और उनमेंसे उदासीन, साधु और गृहस्थ ऐसे तीन अण्कुरों निकले हैं ।

उदासीनमेंसे निकले हुए अङ्कुरों— क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम,

तप, त्याग, आकिञ्चन, सम्यक्ज्ञान, प्रथ-
मानुयोग, कर्णानुयोग, चर्णानुयोग, द्रव्या-
नुयोग, धर्मध्यान, धर्मोपदेश, परोपकार
और स्वर्गसुख ।

साधुमेंसे निकले हुए अङ्कुरों—ऋद्धि,
कल्पातित सुख, ज्ञान—मति, श्रुति, अवाधि,
मनःपर्यय; अङ्ग, पूर्व, प्रकीर्णक, सामिति,
महाव्रत, केवलज्ञान, गुप्ति, शुक्लध्यान,
समाधि और मोक्ष ।

गृहस्थमेंसे निकले हुए अङ्कुरों—विद्या—
ज्ञान, बुद्धि, विवेक, कलाकौशल्य, आवि-
ष्कार; धर्म—देशसेवा, देवपूजा, गुरुपूजा,
स्वाध्याय, संयम, तप, दान, देवगति,
भोगभूमि; सुख-संतान, बल, साहस, इंद्रिय-
सुख, धैर्य, दीर्घायु, राज्य और अर्थ ।

इस प्रकार ब्रह्मचर्यरूपी मूलसे ६३ अङ्कुरों
निकले हैं । सच्चे उदासीन, साधु
या गृहस्थ बननेके लिये हस्तानापुर
(मेरठ) में “ श्री रुषभब्रह्मचर्याश्रम ”
तीन सालसे स्थापित है और ९ वर्षसे
१४ वर्ष तकके अंदाजन ५० छात्रों सुभी-
तासे पढ रहे हैं जिसके संचालकों ब्र.
गेंदनलालजी, भगवानदीनजी, बाबा भगी-
रथजीवर्णी आदि हैं और व्यवस्थापकों बाबू
अजीतप्रसादजी एम.ए.एलएल.बी, साहू जुग-
मंदिरदासजी नजीबाबाद आदि हैं । मासिक
व्यय १०००) रुपया है जब ध्रुव फंड
बहुत कम है । हरएक जैनीका कर्तव्य है

कि इस आश्रमको समयानुसमय हर प्र-
कारसे सहायता करते रहना चाहिए ।

(२) ऐलक श्री चंद्रसागरजी महाराजः—
आपका जन्म सरगूर प्रांत न्हेसूरमें वीर
सं. २४०९में हुआ है । ग्रहस्थाश्रममें
आपका शिक्षण यथातथाच हुआ था
और आपने सं. २४३६में श्रवणबेलगुलके
महामस्तकाभिषेकोत्सवके समयपर दिक्षा
ली थी । दिक्षाकालके पीछे आपका
शिक्षण कनड़ी और संस्कृत अच्छा हुआ
है और आपने बहुत परिश्रमसे “ भक्ता-
मर वृत्तिसार समुच्चय ” नामक संस्कृत ग्रन्थ
(राममल्लविरचित कथा, मंत्र, यंत्र आदि
सहित) कनड़ी भाषांतर सहित हालहीमें
प्रकट कराया है । और कोई ग्रन्थ प्रका-
शनके कार्यमें ही आपका परिश्रम चल रहा
है । आपका आचरण और स्वभाव भी
बहुत ठीक है ।

(३) भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्तिजीः—
आ भट्टारकजीनो जन्म सं. १९१६ मां
थयेलो अने बाळपणमांज पंडितपणानी
दिक्षा लीधी हती अने दिक्षागुरु अमोलंख-
चंदजी हता. गुरुनी पासे न रहेता एमनो
विद्याभ्यास जयपुरमां थयो हतो, ज्यां २५
वर्षनी उमर सुधी पुराण, चरित्र, सिद्धांत
वगेरे अनेक ग्रंथोनुं पठन करी संस्कृतमां
सारं ज्ञान प्राप्त कर्तुं छे तेमज ज्योतिष
अने वैदकशास्त्रनुं ज्ञान पण प्राप्त करेळुं
छे तथा कोश ग्रंथो पण जोएला छे. ४१

वर्षनी वये एमनो पट्टाभिषेक थयो हतो, जे पछी कारंजानी गादीना न्याय, व्याकरण, पुराण, सिद्धांत, पूजापाठ वगेरेनां अनेक ग्रंथो जे गांसडीओ बांधीने पडी रहेला हता तेने छुटा पाडी तेनुं सूचीपत्र तैयार करी तेने सुव्यवस्थित रीते कवाटोमां गोठव्या छे जेथी जरूरी ग्रंथ तरत मळी आवे छे. गादीए बेठा पछी आ भट्टारकजी-ने हाथे अनेक स्थळोए प्रतिष्ठाओ थयेली छे, तेमां खामगामनी प्रतिष्ठा वखते तो भट्टारकजीए कईक अतिशयो करी बताव्या हता. हेरुं चोमासुं कारंजामां करेळुं हतुं, ज्यां रोज संस्कृत चंद्रप्रभुकाव्य बांची तेना अर्थ करी बतावता हता अने बवे कलाक सुधी शंकासमाधानो करता हता. न्याय, काव्य, अध्यात्म विषय उपरनी गमे ते शंकांनुं समाधान एओ शास्त्रोना प्रमाण सहित करी शके छे, जे वखते एओ लब्धिसार, क्षपणसार, प्रवचनसार, भावसार, त्रैलोक्यसार, आचारसार, गोमट्टसार, अष्टपाहुड, अष्टसहस्री, समयसार, आलाप-पद्धति वगेरे ग्रंथोनुं प्रमाण बतावी आपे छे जेथी एमणे पुष्कळ संस्कृत ग्रंथोनुं अध्ययन करेळुं स्पष्ट थाय छे. आवाज विद्वान भट्टारको होय, तोज तेथी जैन धर्मनी उन्नति थई शके छे. आ भट्टारकजी दीर्घायुषी थई जैन कोमर्नी उन्नति माटे प्रयासो करता रहो एज इच्छीए छीए.

(४) स्व. भट्टारक श्री ललितकीर्तिजी:— जिस गद्दीके भट्टारकोने आगे बादशाहोंको

भी चमत्कार दिखाया था वही अजमेरकी गद्दीके भट्टारक श्री ललितकीर्तिजीका गत अश्विन कृष्ण६को अजमेरमें ७० वर्षकी वयमें स्वर्गवास हो गया। आपका जन्म सं १९०१में जयपुरमें हुआ था और गुर भट्टारक श्री रत्नभूषणजी थे। आपका पट्टाभिषेक १९२२में हुआ था और संस्कृत मागधीके अच्छे जानकार थे। आपका चतुर्मास बहुत स्थानों पर होकर बहु धर्मोपदेश होता था। ऐसे सत्पुरुषों दर्शननिमित्त मृत्यु समय अजमेरके श्रावण श्राविकाए, अम्रवाल, ओसवाल महाका इत्यादि सर्व वैश्य कोमोंके स्त्रीपुरुषों आ थे और सबने कुछनकुछ नियम ग्रह किया था। ऐसे सत्पुरुषोंका दर्शन व स्वप्न मात्र रह गये।

(५) सिद्धक्षेत्र भी मन्दारगिरि—इ क्षेत्रसे बारहवे तीर्थकर श्री वासुपूज्यस्वामि मोक्ष पधारे हैं। भागलपुरकी पास मन्दार हील स्टेशनसे एक मील पर यह ती है। बहुत ग्रन्थोंमें वासुपूज्यकी मोक्षभू चंपापुरी लिखी है तब उत्तरपुराण मन्दारगिरि पर लिखा है। यही चम्पापुर भी मन्दारगिरिसे केवल ३२ मील है भगवानके जन्मसमय इसका विस्तार ४८ कोसका था इसलिये मन्दारगिरि चम्पापुरीमें ही गर्भित समझा जा सकता है। इस पर्वत पर दो बहुत प्राचीन मन्दिर १००० वर्षसे उपरके बने हुए हैं, जिसका जीण

द्वार बारामतीवाले श्रेष्ठ तलकचंद कस्तू-
चंदकी ओरसे हो रहा है और प्रबंध भी
सुधर गया है। इस पर्वत पर एक मन्दिर
वैश्व सम्प्रदायका भी है और रघुवीरदास
नामक एक वेषधारी साधु रहता था, उससे
और अपने प्रबंधकोंसे बहुत दिनोंतक
मुकद्दमा चला था और अन्तमें साधु और
उसके १ चेलोंको एक २ वर्षकी जेल हुई है।
शिखरजीकी यात्रासे लौटते समय इस
तार्थका दर्शन अवश्य करनेयोग्य है।
यह चित्र मंदिरकी जीर्ण अवस्थाका
है, जो प्रबंधक बाबू हरनारायण द्वारा
प्राप्त हुआ है।

(६) लेखकसम्मेलनः—इस अंकमें
गट हुए लेखों भेजनेवाले मुख्य २ लेख-
कोंका यह सम्मिलित ग्रुप तय्यार किया
गया है, जो हमारे पाठकोंको बहुत ही
रुचिकर होगा। लेखकोंके नाम चित्रमें
दिये गये हैं।

(७) स्वर्गीय दानधीर जैनकुलभूषण
सेठ भाणेशचंदजीः—आपका परीचय अब
करानेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि
आपको तो सारे हिन्दुस्थानके आबालवृद्ध,
अच्छी तरहसे पिछानते हैं और आपका
जीवनपरीचय भी बहुत दफे प्रकट हो
चुका है। यह वीरनर तन, मन और धन
तीनों द्वारा जैन समाजका ऐसा कल्याण
कर गये हैं कि आजतक किसी भी जैनने
आपके जैसा समाजका उपकार नहीं किया

था। आपका नाम चिरस्मरणीय रहनेके
लिये जो स्मारक फंड हमने खोल रक्खा
है उसमें हमारे सभी पाठकोंकी ओरसे
कुछनकुछ सहायता अवश्य मिलनी
चाहिए। आपका यह रंगीन चित्र बड़ा
भारी खर्चा लगाकर तय्यार कराया है
जिसको कांचमें जड़ाकर अवश्य संग्रह
करनेके लिये सभी पाठकोंको सूचना की
जाती है।

(८-१५) युरपके ८ राजाः—अभी कुछ
तीन मास हुए युरपमें महाभारत युद्ध
हो रहा है जिसमें जो ८ राजाएं युद्धमें
सामिल हुए हैं उनका यह अलग २ चित्र
है जिसमें हमारे न्यायप्रिय ब्रीटिश शहेन-
शाह पंचम ज्योर्ज भी हैं।

(१६) रायबहादुर लाला इशरीप्रसा-
दजी देहलीः—आपकी जीवनीका विस्तार
तो बहुत कुछ है, परंतु इधर तो संक्षेपमें
ही लिखते हैं। अपने शुभ नगर देहली
(इन्द्रप्रस्थ) जैसी राजधानी, जो हिन्दु
राजाएं, मुसलमान बादशाहों तथा इंग्रेज
बादशाहों तक सदैवसे ही राज्यधानी रहती
चली आई है वहां आपका जन्म आपके
वंशकी सातमी पंक्तिमें हुआ और अभी
आयु ७१ वर्षकी है। और अपने ही
समयमें अनेक सुयोग्य कार्य कर अपने
वंशको महान् उपमा दी, जो अकथनीय है।
आपके वंशका इतना ही परीचय देना
उचित है कि बादशाह अकबरके शासन-

समयमें पंडित सहारनसिंहजीने कार्यकुशलतासे अपने नामका सहारनपुर नामक नगर बसाया था। जिस प्रशंसनीय कार्य करनेसे ग्वालैरा नामक गाम आपको ईनाममें मिला (जो अभीतक आपके पास है।) पश्चात् आपके पुत्र लाला गुलाबरायजीने देहली नगरमें आकर साहुकारी कोठी शाहजहां बादशाहके समयमें खोली (जो आजतक उनके और उनके पुत्र लाला महेरचन्दजीके नामसे चली आती है) और इसी बादशाहके आप स्वजाञ्ची भी हो गये (और अभीतक आपकी संतति इसी पदपर नियत होती चली आई है ।)

श्री. लाला इशरीप्रसादके पिताजी बड़े प्रतापी हुए, जिन्होंने हजारों रुपया सेठ कुचेके मन्दिरमें लगाया और धर्मसेवन करते रहे। इसी अवसर सन् १८५७में जब ग़दर हुआ तब आपने गवर्नमेन्टकी तन-मन-धनसे बहुत सहायता की और आपके पुत्र लाला अयोध्याप्रसादजीने भी इस कार्यमें वीरता दिखाई। ग़दरकी शान्ति होने पर उर्दू बाज़ारका मन्दिर जो वरवादीमें आ चूका था जिसको जैसाका तैसा-ही सरकार इंग्रेजीसे स्थायी करा दिया, जो अभीतक बहुत शोभनीय हो रहा है। सं. १९१० में ५०० जैनीओंका संग लेकर यात्रा की उस समय रेलगाडी नहीं थी।

सन् १८७० में आपके पिता लाला शक्तिप्रामजीका परलोकवास हुआ और

सन् १८७७ में अपने दीर्घभ्राता लाला धर्मदासजीके परलोकगमनके पश्चात् कुटम्बका भार आप(लाला इशरीप्रसादजी)पर आ गया और इसी सन्में अपने ग्रामादि जो ग़दरकी वीरताके कारण प्राप्त हुये थे उनको सम्मालते हुए आप स्वजाञ्ची गवर्नमेन्ट पद पर नियत हुए। १८६७ से ८२ तक अपनेही खर्चसे एक असपताल चलाते रहे और अनाथालय और दानशालाओंमें द्रव्य प्रदान करनेमें अद्वितीय रहे। एक समय जो जिला रोहतकमें हिन्दुमुसलमानोंमें तकरार होनेपर गवर्नमेन्टकी आज्ञानुसार आप शान्तिस्थापन करनेमें फलीभूत हुए, जिससे आपका प्रभाव हिन्दुमुसलमानोंमें बहुत हुआ। सन् १९०३ में दरबार शहनशाहीमें आप सरकारके नियमानुसार वर्तावमें आये और एक पदकभी आपको मिला और गत देहली दरबारमेंभी आपको आमन्त्रण मिला था। आपने शिखरजी व गिरनारजीका संग बहुतसे जैनीयोंके संगमे चलाया और पिताके अनुसार राज्य जीदस्थानमें बहुत समयसे बन्द जैन मन्दिरको अपने यत्नसे खुलवाकर जारी किया। जिस समय आर्य्यसमाजेने जैनमतसमीक्षा पुस्तक द्वारा जिनमतको लाञ्छन लगाया, उसी समय अपने मित्र बाबू प्यारेलालजी वकीलकी रायसे उनके अपराधका बदला सरकारसे दिलवाया और अपने धर्मकी अवनतिको रोका। यही वीर थे जिन्होंने १४

लक्ष जैनियोंको मिथ्या लाञ्छनसे बचाया। और हरएक जाति व अन्य जाति सभाएं और पब्लिक सभाओंमें आप सभापतित्वके स्थान पर नियत होते रहे। न्यायमें आप इतने दूरदर्शी हैं कि गवर्नमेन्टने आपको आनररी मजीस्ट्रेटकी पदवी प्रदान की है। और गत वर्षमें ही आप रायबहादूरके महान पदसे सुशोभित हुए हैं। इसी वर्षमें आपके सुपुत्र लाला पारसदासजी (जो आपकी पास इस चित्रमें उपस्थित हैं) को कोषाध्यक्ष पदपर नियत करवाके आप संसारीक कामोंसे शांति ग्रहण करनेके लिये तत्पर हैं। आप लंडन बैंक व पेपर-करन्सी बैंकके भी खजाञ्ची नियत हैं। और आप ऐसे दूरदर्शी, दानी और धर्मात्मा हैं कि इस समय जैनजातिमें देहली नगरमें सर्वशिरोमणी अग्रसर हैं। हम यही चाहते हैं कि आप चिरायू होकर जैन समाजका ज्यादा कल्याण करें।

(१७) मालवा दि. जैन प्रान्तिक सभाके संचालकों:—कई वर्षसे श्रीमान् दानवीर शेठ हुक्मचन्दजीकी कोशिश और सहायतासे यह सभा बहुत उन्नति कर रही है, जिसके संचालकोंका यह ग्रुप फोटो है। पहले लाला हजारीलालजी मंत्री थे और अब एक सालसे बड़नगरवाले लाला भगवानदासजी मंत्री हैं। जो बड़ी योग्यता-पूर्वक कार्य चलाते हैं।

(१८) महासभाके कितनेक संचालकों— अपनी भारत दि. जैन महासभाके कितनेक

संचालकोंका यह कुछ पुराना ग्रुप फोटो है, जो बाबू ज्योतिप्रसादजी[देवबन्द] द्वारा प्राप्त हुआ है। पं. चुन्नीलालजीका स्वर्गवास हो गया है और बाबू शीतलप्रसादजी (लखनउ) अब तो ब्रह्मचारी हुए हैं और जैन समाजकी बड़ी भारी सेवा कर रहे हैं।

(१९) जैन महिळारत्न श्रीमती मगन-बाईजी-बम्बई:—जैसे हमारे दानवीर सेठ माणिकचंदजीको सब कोई जैनी पिछानते हैं इसी तरह आपकी यह विदूषी पुत्री मगनबाईजीसे भी सारा जैनसमाज परिचित है क्योंकि कई वर्षसे आपने अपना जीवन जैनस्त्रीसमाजकी सेवाके लिये अर्पण कर रक्खा है और अपने तन, मन, धनसे बम्बईमें 'श्राविकाश्रम' बड़ी योग्यता-पूर्वक चला रहे हैं। इस संस्थामें स्थायी फंड बहुत कम होनेसे हरएक जैनीका कर्तव्य है कि समयानुसमय मगनबाईजी द्वारा स्थापित यह आश्रमको येनकेनप्रकारेण सहायता देते रहना चाहिए। 'भारत जैनमहामंडल'ने आपको 'जैनमहिळारत्न'के पदसे विभूषित किये हैं सो उचित ही है। हम यही चाहते हैं आप चिरायू होकर जैनस्त्रीजातिकी उन्नतिमें इसी तरह दत्तचित्त रहें।

(२०-२१) श्री चन्द्रगिरि पर्वतका दृश्य:—इस चित्रका परीचय पृष्ठ ७२ पर दिया गया है।

(२२-२३-२४) सिद्धक्षेत्र श्री मुक्तागिरि:- हे वन्हाडांतील सुप्रसिद्ध ईलिचपुर शहरापासून ईशान्य दिशेला ७ कोसावर आहे. या तीर्थाला जाण्या करितां मुर्तिजापुर स्टेशना पासून ईलिचपुर शहरा पर्यंत एक नवीनच रेल्वेचा मार्ग सुरू झाला आहे. श्री मुक्तागिरि हे दिगंबरीय तिर्थ असून फार प्रेक्षणीय व वंदनिय आहे. येथील वनश्री फार रम्य आणि अनुपमेय असी आहे. श्रावण भाद्रपदांत येथील देखावा फार सुंदर भासतो. येथील वनश्री पहाण्या करितां मोठे मोठे ऑफिसर लोक थंड वस्तुत येथे नेहमी येतात. कार्तिक शुक्ल १५ ला जैन लोकांची मोठी यात्रा येथे भरते. या क्षेत्रावर यात्रेकरुंची व्यवस्था वगैरे फार दक्षतापूर्वक ठेविली जाते. पहाडावर एकंदर अष्टेचालीस सुंदर देवळे असून त्यातीलच कांही भागाचे फोटो वाचकदर्शनेच्छु करितां आम्ही दिलेले आहेत. येथे दैविक चमत्कार नेहमी घडतात. चंदनाची पहाडावर नेहमी वृष्टी होणे हा देखावातर कितीतरी दर्शनेच्छुनी पहालेला आहे. सारांश अनेक दृष्टींनी पाहिल्यास ही श्री मुक्तागिरि क्षेत्र शांतताप्रिय मुनिजनांना अत्यंत प्रिय, वनश्रीनी परिपूर्ण आणि कवीजनांना काव्याची मनोहर स्कूर्ती करविणारे आहे, ह्यांत संशय नाही, तेव्हां अश्या परमपावन तिर्थाचे दर्शन दिगंबर जैनाच्या प्रेमी भक्तांनी अवश्य घ्यावे असी सर्वनांना आग्रहपूर्वक विनंती आहे.

(२५) स्वर्गीय पं. चुन्नीलालजी:- आपका विस्तृत जीवनपरीचय हमको वैद्य शंकरलाल हरिशंकर (मुरादाबाद) द्वारा प्राप्त हुआ है, जो स्थानाभावसे नहीं प्रकट कर सकते, इसलिये अभी संक्षेपमें ही लिखना पडता है और आगामी किसी अंकमें विस्तृत परीचय अवश्य प्रकट किया जायगा ।

खंडेलवाल वैश्य जातिमें आपका जन्म सं. १८९०में मुरादाबाद जिलेके कुदरखी ग्राममें हुआ था । पितामहका नाँव लाला सर्वसुखदासजी और पिताका नाँव लाला मुन्नालालजी था । पंडितजी अपने पिताके दुसरे पुत्र थे । पं. किसनलालजीसे नागरीका और फिर रामपुरमें पं. दत्तरामजी द्वारा आपने ४-५ वर्षमें ही संस्कृतका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया । और पंडित हो गये । गणित और ज्योतिषका ज्ञान भी आपने प्राप्त किया था । उन दिनोंमें वहां पं. जिनेश्वरदासजी जैनधर्मके धुरंधर विद्वान थे, उन्हींसे जैनसिद्धांतके ग्रंथ पढ़ा करते थे । सं. १९१६से आपने किरानेका व्यापार रामपुरमें ही शुरू किया, जिसमें १९२४ तक अच्छी सफलता हुई । प्रतिदिन आपका बहूतसा समय धार्मिक कार्योंमें खर्च हो जाता था । और मन्दिरमें साधर्मी भाईओंके साथ धर्मचर्चा करते थे । आपके मित्र मुन्शी मुकुन्दरामजीके अनुरोधसे आप सं. १९२४

में मुरादाबाद चले गये । और वहां अना-
जकी आड़तैकी दुकान की, जो आजतक चल
रही है । आपने मुरादाबादमें अनेक धर्म व
जातिसंबंधी कार्य किये। मुन्शीजी और आप
दोनोंने मिलकर मुरादाबादमेंही नहीं वल्कि
संपूर्ण जैनसमाजमें उसी समय जागृति
उत्पन्न कर दी थी । आप दोनों मित्र बाहर
जगहूर फिर कर जैनधर्मका प्रचार कर-
ते थे, जैनसभाएं स्थापित करते और जैन
धर्मका उपदेश देते थे । और जैन पत्रोंमें
लेख भी लिखते थे । फिर सं. १९३८ में
उभय मित्रोंने “जैन पत्रिका” नामका मा-
सिक पत्र निकाला था, उससे जैन समाजका
बहुत कुछ उपकार हुआ था । भारतवर्षीय
दि. जैन महासभाके स्थापन होनेमें आपका
सबसे अधिक उद्योग और परिश्रम था, इस-
लिये आप महासभाके प्रधान स्थापक सम-
झे जाते थे। पार्श्वनाथ, आहिक्षेत्, रामनगर
के मन्दिर और मेलेका सारा प्रबंध आपको-
ही करना पड़ता था। और अनेक जैन मे-
लोंमें, उत्सवोंमें और बड़ीर सभाओंमें आप
जाते थे ।

आगराके प्रसिद्ध विद्वान पं. बलदेव-
दासजी, सुनपतके पं. मथुरादासजी, अली-
गढ़के पं. प्यारेलालजी, पं. उमराबसिंहजी,
लाला उम्रसेनजी, साहु सलेखचंदजी, जैन
समाजके पुराने नेता डिपटी चम्पतरायजी
आदिसे आपकी धार्मिक प्रीति विशेष थी ।
जैनोंके सिवा आर्यसमाजी, इसाई, सना-

तनधर्मी, मुसलमान आदि सभी जाति
और मतोंके लोग आपके मित्र थे । आप-
को संतान नहीं हुई इसलिये अपने बड़े
भाईके पुत्र वसंतरायको दत्तक पुत्र बना-
या है । वसंतरायजीका पुत्र नेमिचन्द्र इस
समय संस्कृत पढ़ता है । ७० वर्षकी
अवस्था तक पंडितजीके शरीरमें रोग या
बुढ़ापेका कोई लक्षण नहीं दिखता
था । इस अवस्थामें आप जितना परिश्रम
कर लेते थे उतना आजकलके ३० वर्षके
युवक भी नहीं कर सकते । सं. १९६१
से आपका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और
१९६५ में रोग बहुत बढ़ गया, तब
अंतिम समय निकट आया समझकर
संसारिक विषयोंसे चित्त हटा लिया और
सं. १९६६ में ७६ वर्षकी आयुमें आप-
का पवित्रात्मा अमरलोकमें चला गया ।
आपको इस लोकसे विदा हुए कई वर्ष
हो गये परंतु आपकी उज्जल कीर्ति अबभी
संसारमें प्रकाशित है। पंडितजी बड़ेही शांत,
गंभीर, धीर, सरल हृदय और प्रमाणिक थे ।
आप साधारण धनी थे परंतु आपके घर-
पर बहुत आदमियोंका भोजनादिसे प्रति-
दिन सन्मान होता था । भादोंमें किसी२
दिन १००-२०० लोगोंकी भीड़ आपके
घर हो जाती थी ! जैनविद्यार्थियोंकीभी
आपके मकानपर एक खासी पाठशाला
रहती थी । यद्यपि आपसे अनेक विद्यार्थी
जैनधर्म पढ़ते रहे परंतु—

पं. पन्नालालजी बाकलीवाल

आपके सब शिष्योंमें अधिक प्रसिद्ध हैं । और पं. पन्नालालजीके द्वारा जो कुछ जैन समाजकी सेवा हुई है वह पं. चुन्नीलालजीकी कृपाका विशेष फल है । पंडितजीकी अध्यक्षतामें मुरादाबादमें 'जैन विद्यावर्द्धिनी' सभा भी चलती थी, उस सभाकी तरफसे पं. पन्नालालजी बाकलीवालने "जैनहितैषी" नामक मासिकपत्र निकालाथा। अब वही "जैनहितैषी" पं. नाथूरामजी प्रेमीके संपादकत्वमें बम्बईसे निवृत्त है । पंडितजी जातिके पंच भी थे । मुरादाबाद जिलेके खंडेलवाल जैनिओंसे दुसरे जिलेके खंडेलवाल जैनिओंका संबंध नहीं होता था, इससे विवाह संबंधमें बड़ी दिक्कत रहती थी । आनंदका विषय है कि पंडितजी और दो तीन भाईओंके उद्योगसे मुरादाबाद जिलेके खंडेलवाल जैनिओंका सम्बन्ध आगरा, अलीगढ़, मथुरा, जयपुर, देहली आदि नगरोंके भाईओंमें होने लगा। हम यही चाहते हैं कि पंडितजीके अमर आत्माको शान्ति प्राप्त हो और आपका पौत्र नेमिचन्द्र भी आपके जैसी योग्यता प्राप्त करें ।

(२६) श्रीमान पं. लक्ष्मीचन्द्रजी-लक्ष्मणः—
आपका ज्यादे परीचय हमको नहीं मिला परंतु जितना प्राप्त हुआ है वह प्रकट करते हैं ।

आपका जन्म खंडेलवाल जातिमें हुआ है । बाल्यावस्थासेही आपको विद्याका प्रेम है ।

आप संस्कृत नहीं जानते, पर भाषाके अच्छे पंडित हैं । आपने अन्यमति सैकड़ों ग्रन्थोंको देखा है और यही वजह है कि जहां आप व्याख्यान देते हैं वहां अन्यमती ग्रन्थोंका बहुत आधार देते हैं । आपने "लक्ष्मिविलास" नामक एक ग्रन्थ भी बनाया है उसमें आपने सैकड़ों अन्यमती ग्रन्थोंका आधार देकर जैनधर्मको उत्कृष्ट बतलाया है । आप अच्छे कविभी हैं और आपको अपनेही बनाये हुए छन्द, सवैये, भजनों वगैरह बहुत याद है और स्थानों-स्थान पर जाकर बहुत अच्छा धर्मोपदेश देते हैं ।

(२७-२८) सेठ धनश्यामसा और सेठ दयाचंदजीसा—वडवाहः—आपका जन्म सं. १८८७ में हुआ था । तेरह वर्षकी अवस्थासे आपने व्यापार करना प्रारंभ किया था । आपने गल्ला, अफीम, कपास, तिली, सराफी, जगातका ठेका, नावका ठेका आदि कई व्यापार किये थे । जब आप बाजारमें खरीदीको निकलते तो दुनियाके प्रसिद्ध व्यापारी राणी ब्रधर्सकोभी खरीदीमें हाथ ठेका देना पडता था । आपका प्रचंड व्यापार देखकर डी. टी. एसने आज्ञा दे दी थी कि पहले सेठ धनश्यामसाजीका माल रवाना किया जावे पीछे दूसरोंका । आपका प्रभाव सर्व साधारण पर था और पंचायतिथियोंके झगड़े भी आप तोड़ डालते थे । आपका धर्मप्रेम अगाध था । सं. १९९१ में

सोलापुरवालोंने सिद्धवरकूट पर प्रतिष्ठा कराईथी तब १ दिन शेठजीकी प्रिय पुत्रीका देहान्त हो गया । इसी समय कुछ प्रबंधार्थ एक आदमी सिद्धवरकूटसे आया । आपने उस सबकी जराभी परवाह न करके आगत पुरुषको कार्य कर रवाना किया और फिर पुत्री की अन्तिम क्रियाके गये । यह आपहीके प्रयत्नका फल है कि श्री सिद्धवरकूट तीर्थक्षेत्र उन्नत दशाको पहुंचा है । यह ऐसा दि. जैन सिद्धक्षेत्र है कि जिसके पर्वतनी मालगुजारी दि. जैनियोंकी है और सरकार कुछभी लगान नहीं लेती । आपने सिद्धवरकूटपर पंचायत की ओरसे मन्दिर बंधवाया है और बड़वाहमें भी मन्दिर बनवाया है । आप बड़े परोपकारी हैं । सं. १९५३ में अकाल के समय आपने सस्ते भावसे अन्नको बेचा था । आपके दो पुत्रमेंसे एक पुत्र दयाचंद्रजी थे जिनका चित्र पाठक देख रहे हैं । दयाचंद्रजीमें भी पिताके समान पुरेरे गुण थे, परंतु आपभी छोटीसी अवस्थामें इस संसारको छोड़ गये । आपके स्वर्गवास के पश्चात् आपकी धर्मपत्नी श्रीमती बेसरबाईका चित्त संसारसे उदास हो गया है और आपने बड़वाहमें कन्यापाठशाला स्थापित की है और आपका चित्त विद्यादानकी ओर सदैव झुका रहता है । आप यही चाहती है कि-पूर्वजोंकी गाढी कमाईका द्रव्य ऐसे महत्कार्योंमें व्यय हो

जिससे समाजको लाभ पहुंचे । आपने ७०००) खर्च करके सिद्धवरकूटपर धर्मशाला बनवाई, ३०००) रूपभद्रहचर्याश्रमको, ११००) श्राविकाश्रम-बम्बईको, १०००) स्या. महाविद्यालय-काशीको दिया और ४०००) मालवा प्रां. सभाके अधिवेशनमें व्यय किया । यही आपकी उदारताका फल है कि श्री सिद्धवरकूटपर इसी मासमें मालवा दि. जैन प्रांतिक सभाका वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधामसे हुआ है । श्रीमती बेसरबाईजी इसी तरह धर्म कार्योंमें धनका व्यय करती रहेगी ऐसी हमें पूर्ण उम्मेद है ।

(२९) स्वर्गीय भी. वीरचंद राघवजी—महुवा (काठियावाड) निवासी आ (श्वे. जैन) वीरनरनुं नाम आखी दुनियामां प्रसिद्ध थई गयुं छे. एमनुं विस्तृत जीवनचरित्र हालमांज 'श्वे. जैन कोन्फरंस हेरल्ड'ना महावीर अंकमां प्रकट थयुं छे जे जोतां जणाय छे के आ महान पुरुषनो जन्म सन् १८६४मां थयो हतो. एओए १८८०मां मेट्रीक अने १८८४मां बी. ए. नी परीक्षा मुबाईमां रही पसार करी हती, ते वखते समग्र श्वे. जैन समाजमां बी. ए. थनार एओ प्रथमज हता ! मुंबाईमां १८८२मां स्थापित जैन एसोसिएशन ऑफ इंडियाना सेक्रेटरी वीरचंदभाई नीमाया, पछी एओ धार्मिक कार्योंमां आंगळ पढतो भाग लेवा मंडया अने पालीताणा-

मां यात्रालु उपर बे रुपियानो कर लेवातो हतो ते भारे खटपट करी काढी नंखावी रुप्यानो उचकोज नक्की कराव्यो छे. एओ १८८६थी सोलीसीटरनुं ज्ञान लेवा लाग्या ते वखते श्री सम्भेदशिखरजीपर बेडम नामे अंग्रेजे चरबी बनाववानुं कारखानुं खोलेलुं ते बंध कराववा कलकत्ता कोर्टमां फरियाद करी, तेमां विरुद्ध फेंसलो मळवाथी हाई-कोर्टमां अपील दाखल करवामां आवी, ते वखते वीरचंदभाईए कलकत्ता जई बंगाळी भाषानो अभ्यास करीने जुना लेखो, ताम्र पटो वगोरेनुं अंग्रेजी भाषांतर करी तेना पुरावा दाखल कर्याथी जैनोनो विजय थयो हतो. वळी सौथी महान कार्य जो वीरचंद-भाई करी गया होय तो ते अमेरिका जई जैनधर्मनो फेलावो करवानुं छे. सन् १८९६मां अमेरिकाना चिकागो शहेरमां गंजावर प्रदर्शन भरायेलुं ते समय त्यां 'विश्वधर्मपरिषद' थई हती तेमां जैनो तरफथी विजयानंदसूरी (आत्मारामजी)ने आमत्रण आवेलुं पण तेमनाथी समुद्र पार न जवावाथी तेमणे आ प्रश्न जैन एसोशीएशनने मोकल्यो, जेणे वीरचंदभाईने पसंद कर्या, जेथी पछी वीरचंदभाईए केटलाक महीना सुधी महाराज पासे जैनधर्मनुं ऊंडुं ज्ञान मेळव्युं अने पछी अमेरिका उपडी गया अने त्यां विश्वधर्मपरिषदमां जैनो तरफथी जैनधर्मनुं स्वरूप-नीति अने तत्वज्ञान बन्ने एवी उत्तम रीतिए अंग्रेजी भाषामां ते

समक्ष मूक्युं के ते वखतना एक वजनदार अमेरिकन पत्रे जणाव्युं छे के:-

"A number of Distinguished Hindoo Scholars, Philosophers and Religious Teachers attended and addressed the Parliament; some of them taking rank with the highest of any race for learning, eloquence and piety. But it is safe to that no one of the Oriental Scholars was listened to with greater interest than was the young layman of the Jain community as he declared the Ethics and Philosophy of his people."

अर्थ-पार्लामेंटमां प्रतिष्ठित हिंदु विद्वान, तत्वज्ञानीओ अने धर्मोपदेशको हाजर हता अने तेमणे भाषणो आप्यां हतां, तेमांना केटलाक तो एवा हता के जेओने समान-पदपर मूकाय तेम छे, परंतु एटलुं तो निर्भयताथी कही शकाय तेम छे के पौर्वा-त्य पंडितोमांथी जैन समाजना युवक श्रावके (वीरचंदभाईए) पोताना वर्गनी नीति अने तत्वज्ञान संबधी आपेल भाषण जे रसथी श्रोताए सांभळेल हतुं ते करतां वधारे रसथी कोई गौरव पण पौर्वात्य पंडितनुं तेणे सांभल्युं नथी."

आ भाषणथी वीरचंदभाईने त्यांनी सभामांथी रौप्यपदक मळ्यो हतो. पछी एमणे एटलेथी संतोष न जइ अमेरिकाना बोस्टन, न्यूयॉर्क, बोशिंग्टन वगोरे शहेरोमां जइ जैनधर्म उपर व्याख्यानो आपी जैनधर्मनुं रहस्य समजाव्युं तथा कासाडोगामां करेला भाषणथी त्यांना

लोकोग् एमने सोनानो चांद आप्यो हतो. (ए प्रसंगे तथा बीजा अनेक प्रसंगोए एमणे आपेलां व्याख्यानो 'Jain Philosophy' नामे पुस्तकमां प्रकट थयां छे). वळी एओ त्यां, 'गांधी फिलोसोफिकल सोसायटी' स्थापिने इंग्लंड गया, ज्यां पण घणां भाषणो आप्यां. मुंबाई आव्या पछी १८९६मां मुंबाईमां जैनतत्वज्ञाननो विशेष अभ्यास कर्यो अने मुंबाईमां घणां जाहेरभाषणो आप्यां अने आमंत्रण आववाथी फरी अमेरिका १८९६मां उपड्या अने अमेरिका तेम इंग्लंडमां रही अनेक भाषणो जैनधर्म संबंधी आप्यां हतां तथा इंग्लंडमां बेरीस्ट-रनो अभ्यास करवा मांडयो, पण वचमां हिंदूस्तानमां जैनो तरफथी एक अपील स्टेट सेक्रेटरीने करवानी हती तेमां बोलाव्याथी अत्ते आवी पाछा १८९८मां इंग्लंड जई त्यां ते अपील दाखल करी यशस्वी थइ पाछा फर्या हता, पण हिंदूस्तान आवतां एमनी तबीयत बगडी ने बेज अठवाडीयामां मात्र ३७ वर्षनी वये सन १९०१मां स्वर्गवासी थई गया. जो आ वीरनर वधु जीव्या होत तो जैन समाजनी उन्नतिनां अगणित कार्यो अवश्य करी शकत.

(३०) डॉ. एल. पी. टेसीटोरी-इटाली (Dr. L. P. Tesitori-Udine, Italy) मात्र २६ वर्षनी उमरमां १०-१२ भाषाओ उपर अनहद काबू मेळवनार अने

जैनधर्मनो अभ्यासी कोई वीर युरोपीअन नर होय तो ते आज इटालीअन विद्वान छे, के जेओ हाल कलकत्तामां रोयल एशीयाटीक सोसायटी ऑफ बेंगाल (Royal Asiatic Society of Bengal) तरफथी मारवाडी भाषाना ग्रंथोनुं संशोधन अने इंग्लीश ट्रान्सलेशन (अनुवाद) संपादन करवाने निमायला छे अने हाल रजपुताना प्रांतमां भ्रमण करी रहेला छे. आ विद्वान नर साथे अमो एक वर्ष थयां परीचयमां आव्या छीए त्यारथी एओ अमारा हिन्दी के गुजराती भाषानां पत्रो सारी रीते वांची-समजी शके छे, तेम 'दिगंबर जैन' शब्द-शब्द वांची शके छे, जेथी अमो स्पष्ट जणावीए छीए के एमनुं नानी उमरमां १०-१२ भाषाओनुं ज्ञान अति विशाळ छे. मी. टेसीटोरीए आटळुं ज्ञान क्यारे अने केवी रीते मेळव्युं तथा एमनो जीवन-परीचय जाणवा योग्य होवार्थी अमोए ते संक्षेपमां नीचे मुजब मेळव्यो छे:-

मी. टेसीटोरीनो जन्म इटालीना उडाइन शहेरमां सन् १८८९ (1889) मां थयो हतो अने नानी उमरथीज एमने भाषाज्ञान प्राप्त करवानो विशेष शोख हतो, तेमां विशेषे करीने संस्कृत (Sanskrit) शीखवानुं एमने उडाईननी लायब्रेरी-मांथी संस्कृत व्याकरणग्रंथो वांचता संस्कृत भाषा एमने अत्यंत पसंद पडी, जेथी ए भाषानुं पुरं ज्ञान संपादन करवानी एमने

ઇલટ થઈ, જેથી તે વચ્ચે હિબ્રૂ અને ઝીન્દ ભાષાજ્ઞાન મેલવતા હતા તે વંધ રાખી સંસ્કૃત શીખવા માંડ્યું, જેથી એ ભાષા જ્યાં બોલાતી હોય તે દેશ (હિંદુસ્તાન) તરફ એમની પ્રીતિ દોરવાઈ, અને આખરે તેમાં ફત્તેહ મેલવી હાલ હિંદુસ્તાન પધારેલા છે. એઓ ૧૮ વર્ષની વયે ફ્લોરેન્સની યુનીવર્સિટીમાં દાખલ થયા અને સેકન્ડ લેંગ્વેજ સંસ્કૃત લઈને ૧૯૧૦માં Ph. D.ની ડીગ્રી પ્રાપ્ત કરી. ત્યાંના વિદ્વાન સંસ્કૃત પ્રોફેસર પી. ઈ. પેવોલીની (P. E. Pavolini) થી એમને ઘણું જાણવાનું મળ્યું અને ફ્લોરેન્સમાં જ 'જૈનધર્મ' સંબંધીની વાતો જાણવામાં આવી, જેથી ત્યાંની નેશનલ લાયબ્રેરી (National Library Florence) માંથી સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત ભાષાના જૈન કથાગ્રંથો વાંચવા માંડ્યા, જેમાંની પ્રાકૃત ગાથાઓ વાંચવાથી પ્રાકૃત (Prakrit) ભાષા શીખવાનું મન થયું જેથી પછી સંસ્કૃત-પ્રાકૃત ભાષાના ગ્રંથો વાંચીને પ્રાકૃત ભાષાનું જ્ઞાન મેલવ્યું જે જૈન ગ્રંથો હોવાથી એમને જૈનધર્મની અનેક માહિતી મળતી ગઈ, જેથી સન ૧૯૦૯માં એમને 'ભવવૈરાગ્યશતક' નામે પ્રાકૃત કાવ્યનું ઇટાલીઅન ટ્રાન્સલેશન પુસ્તકરૂપે પ્રકટ કર્યું. જેમ જેમ એઓ પ્રાકૃત-સંસ્કૃત ભાષાનો વિશેષ પરીચય મેલવતા ગયા તેમ તેમ હિન્દ તરફની એમની લાગણી વિશેષ ઉશ્કેરાતી ગઈ અને એ દેશ જોવાની અને ત્યાં નિવાસ કરવાની

આતુરતા થઈ, જેથી કાશીમાં શ્રે. મુનિ શ્રી વિજયધર્મસુરી મહારાજ સાથે પત્રવ્યવહાર કરી ધીમે ધીમે હિન્દની બીજી ભાષાઓનું જ્ઞાન મેલવવા માંડ્યું, જેમાં પ્રથમ હિન્દી ભાષા ઉપર કાબૂ મેલવ્યા પછી મરાઠી, બંગાળી, ગુજરાતી અને મારવાડી ભાષાનું જ્ઞાન પુસ્તકોના પરીચયથી જ મેલવ્યું ! એમને હિન્દની બધી ભાષાઓ બહુજ ઉપયોગી અને જાણવાલાયક જણાઈ છે. રજપૂતાના પ્રાંતમાં મારવાડી ભાષાના પુષ્કળ ગ્રંથો એમના જોવામાં આવ્યા છે. જૈનધર્મ ઉપર એમનો પ્રેમ વધુને વધુ વધતો જાય છે અને માંસાહાર છોડી તદ્દન વનસ્પત્યાહારી (Vegetarian) થયા છે; તેમ ધર્મદાસ-ઉપદેશમાઝાની આવૃત્તિ ૧૯૧૨માં ફ્લોરેન્સમાં પ્રકટ કરી તથા 'A grammar of the old western Rajasthani' નામે પુસ્તક છપાવી રહેલા છે. આ મુજબ એમને માત્ર પરીચય દ્વારા સંસ્કૃત, પ્રાકૃત, હિન્દી, ગુજરાતી, બંગાળી, મરાઠી, મારવાડી, હિબ્રૂ, ઝીન્દ તથા યુરોપની ઘણીસરી ભાષાઓનું ઉત્તમ જ્ઞાન મેલવ્યું છે, તેમજ હિંદમાં હિન્દીભાષામાં ઘણાંજ સારી રીતે વ્યાખ્યાનો પણ આપી ચુક્યા છે, અને આ સ્વાસ અંક માટે પણ એક હિન્દી લેખ એઓ મોકલવાના હતા, પરંતુ ભ્રમણમાં હોવાથી તેમ બની શક્યું નથી પણ હવે પછી અમો કોઈ અંકમાં આ વિદ્વાન નરનો હિન્દી આર્ટિકલ પ્રકટ કરવા ઈચ્છા રાખીએ છીએ.

(३१) **मी. मणीलाल एच. उदाणी एम. ए.** इत्यादि, मुंबई:—जेतपुर (काठीआवाड) निवासी उंची केळवणी पामेला अने जैना त्रणे फिरकामां संपने चाहनार आ श्वे. स्थानकवासी जैन ग्रहस्थे नानी वयमांज M. A. LL. B.; F. LL. C. नी डी-ग्रीओ प्राप्त करी छे अने जैना त्रणे फिरकामां सामान्य बाबतोमां संप कराववाने एओ पुष्कळ मथन करी रहेला छे. एओ लेटन्ट लाइट कल्चर (Latent Light Culture) नी मुंबईनी शाखाना सेक्रेटरी छे तेमज भारतजैनमहामंडळना मुंबई इलाकाना सेक्रेटरीनुं काम योग्य रीते बजावे छे. वळी एओ जैनविद्याउद्योगवर्धक-मंडळना सेक्रेटरी होवा उपरांत बोम्बे प्रेसीडन्सी एसोसीएशन, सोशीअल सर्वीस लीग (मुंबई), ऑर्डर ओफ धी गोल्डन एड्ज (लंडन), टेम्परंस एसोसीएशन (मुंबई), गुर्जरसभा (मुंबई), ऑर्डर ओफ धी स्टार इन इस्ट (लंडन) वगैरेना मेम्बर छे, तेम गया मार्च मासमां एमने अमेरिकानी ओरियन्टल युनीवर्सिटी तरफथी एम. ए. (M. A.) नी डीग्री मळी छे अने हिंदमां ओरियन्टल युनीवर्सिटीना ऑ. कार्यकर्ता नीमाया छे. वळी जैन उपरांत अनेक जाहेरसभाओमां एओ भाग लई उत्तम भाषणो आपे छे. एमनी एज ईच्छा छे के कजीया-कंकाशने मुकी दर्ई संधा आतृभावथी जोडाय तो समाजनुं कल्याण थई शके. आ

ग्रहस्थनो एक इंग्लिश आर्टिकळ गत वर्षे अपायो हतो अने आ अंकमां पण छे, जे वांचवाथी एमना विचारो केटला उंचा प्रकारना छे ते वांचकोने जणाई आवशेज.

(३२) **राय बहादुर श्रीमान् शेट चम्पालालजी, ऑ. मजीस्ट्रेट, ब्यावर:**—अग्रवाल वंशज आपका जन्म खुरजा ग्राममें सं. १९०६में हुवा। आपकी माताजीको रानीजीके नामसे पुकारते थे इसलिये आप रानीवालोंके नामसे मशहूर हैं ! जबसे आपका निवास ब्यावरमें सं. १९३२से हुआ है, आपने अच्छा पैसा और नाम पैदा किया है और आपका जैन धर्म पर द्रढ श्रद्धान है। सं. १९४८ में आपने एक मन्दिर बनवाया, जिसकी बिंबप्रतिष्ठा बहुत उत्सवके साथ की गई थी और १ लाख मनुष्य एकत्रित हुए थे। इस प्रान्तमें ऐसा उत्सव अभीतक नहीं हुआ है। सं. १९४५ में आपको गवर्नमेन्टकी तरफसे आनररी मजीस्ट्रेटका पद प्राप्त हुआ और इस समय आप दुसरे दर्जेके मजीस्ट्रेट है। इस्वीसन् १८९७ में आपको सरकारकी तरफसे राय बहादुरका खिताब मिला और सन् १९०२ में सरकारने आपको एक मान्य पुरुष समझकर अपने खजानञ्ची नियत किये। इस समय आप अजमैर, ब्यावर, नसीराबाद और टाटगढ इन ४ शहरोंके खजानञ्ची हैं और म्युनीसिपल कमीशनरभी सरकारकी ओरसे हैं। आपके यहाँ रुई

गल्लेका व्यापार होता है और अन्य ग्रामोंमें आपकी २०-३५ दुकाने हैं। प्रेस और जीनींग फेक्टरी कई हैं और ब्यावरमें एक एडवर्ड मील है उसमें आधा हिस्सा आपका है। ब्यावरकी जैन पाठशालाको आपने स्थान दिया है और २ साल पहले १५००) सहायता की थी और आपकी कई तीर्थोंपर धर्मशालाएं हैं जो रानीवालोंकी धर्मशालाके नामसे मशहूर है। आपकी ८ पुत्र और ३ पुत्रियां हैं जिनमें ज्येष्ठ पुत्र कु. रामस्वरूपजी एडवर्ड मीलके मैनेजिंग डिरेक्टर हैं।

(३३) पं. बीहारीलालजी-अमरोहा (मुरादाबाद):—आप वैश्य अग्रवाल जैन दि. बुलन्दशहरी और अमरोहामें गवर्नमेन्ट हाईस्कूलमें मास्टर हैं। आपने सन् १८९७से १९०९ तक “दिल-आराम” नामका एक उर्दू मासिक पत्र निकाला था जिसमें जैन वा अजैन पब्लिकके चित्तपर जैनधर्मकी संत्यंता, प्राचीनता और उसके महत्वको अंकित करनेवाले बड़े उत्तम २ सर्वजनोपयोगी लेख निकलते थे। इन्होंने अनमोलमोती, हनुमानचरित्र नोवेल संपादन करके चाणाक्यनीतिदर्पण, भर्थरी और जैनवैराग्यशतकका अनुवाद करनेके अतिरिक्त उर्दूभाषामें कईएक जैनधर्म-उद्योतक तथा वैद्यकके भी ग्रन्थ, उपन्यास वा नाटकसुपरमें २०-२५ रचकर और निजव्ययसे प्रकाशित कराकर सर्वसा-

धारणका और मुख्यतया उर्दू पब्लिकका जितना उपकार किया है वह किसीसे छिपा नहीं है। अमरोहामें आप ११ वर्षसे सरकारी नौकरीपर हैं तभीसे सभाके शास्त्र नित्यप्रति वांचते हैं और केवल अमरोहा निवासीयोंहीको नहीं किन्तु मुरादाबाद जिले भरके जैनियोंको धर्मलाभ पहुंचाने पर सदैव कटिबद्ध रहते हैं। आपके निवाससे अमरोहामें जैनधर्मका एक चमत्कार-सा फैल गया है। और जैन अजैनके चित्त पर जैनधर्मका महत्व भले प्रकार अंकित हो गया है। “जैनधर्मसंरक्षणसभा” (अमरोहा) जो आजकल उत्तम कार्य कर रही है, आपनेही स्थापित की है और आपही उनके सभापति हैं। इनके अतिरिक्त पाठशालाका खुलना, दौलारी ग्राममें नवीन मन्दिर बनजाना आदि कार्य इन्हीं महोदयके उद्योगका फल है। आप चिरायू होकर इससेभी ज्यादा धर्मकार्य करते रहें।

(३४) मिथ्यात्वतिमिरनाशनी दि. जैन सभा, देहली:—धर्मपुरामें इस सभाकी स्थापना हुए ६ वर्ष हो गये। इसका मुख्य उद्देश मिथ्यात्वको दूर कराकर सुधर्म और सुरीतिकी ओर आकर्षित करना है। जो प्राचीन प्रथा धर्मविरुद्ध हो उसको खोद फेंकनेका यत्न करती है। इतने समयमें इतना परिवर्तन तो अवश्य हुआ है कि जो विवाह सनातन वैश्वनरीतिसे होते थे उनमें सन् ६०

जैनपद्धतिसे होते हैं। जितनी जैन संस्थाएं हैं तथा जितने जैनसमाचारपत्र, अनाथा-श्रम या जैनतीर्थक्षेत्र हैं उनके सहायतार्थ विवाहोत्सव, पुत्रोत्सव वा अन्य समय जातिके लोगोंसे दान दिलाना इस सभाका मुख्य कर्तव्य है। और रंडीका नाच बंद करानेमें भी यह सभा तत्पर है और देहली प्रान्त में विवाहमें दुल्हा, नौशा, नोहाराके पीछे वागवाडी कागजकी बनवाकर बहुमूल्य लट्टा करती थी उसको बन्द कराकर स्थायी अति सुन्दर बना दी गई है, जिससे लटेरांकी घमाघमीसे बचना होकर बहुत सुभीता हो गई है और खर्चमें भी किफायत कर दी गई है। इस सभाके कार्योंका अनुकरण अन्य स्थानों पर होना अत्यावश्यक है।

(३५) सेठ हुकमचन्द दि. जैन बोर्डिंग स्कूल, इन्दौर:—यह बोर्डिंग स्कूल सं. १९६२से स्थापित है। इसमें दो विभाग हैं, संस्कृत, अंग्रेजी। संस्कृत विभागमें मुख्यतया संस्कृत पढ़ाई जाती है, साथमें लौकिक मुनीमी, अंग्रेजी तथा व्यापारिक शिक्षा भी दी जाती है। अंग्रेजी विभागमें सरकारी यूनीवर्सिटीके अनुसार स्कूल व कालिजमें विद्यार्थी अंग्रेजी शिक्षा लेते हैं और दो घंटे धार्मिक शिक्षण पाते हैं। विद्यार्थियोंके रहन, सहन, खान, पान आदिका एकसा समुचित प्रबंध रहता है। अबतक इस बोर्डिंगमें ८५ लड़के भिन्न२ प्रान्तोंके प्रविष्ट हुए हैं। स्कालरशिप में

१०) से ७) तक मासिक दिये जाते हैं। भोजनशालामें जैनी रसोई करनेवाले हैं। यथासंभव विद्यार्थियोंके सुख, दुख तथा पढ़ाईपर पूरा२ ध्यान दिया जाता है। यहाँकी आब हवा बहुत अच्छी है। यह भी विदित रहे कि इस साल सेठ साहबने जो चार लाखका दान किया है उससे एक महाविद्यालय खोला जाना निश्चित हो चुका है, जिसकी ईमारतका काम शुरू है। इसमें उच्च दर्जेकी संस्कृत, न्याय, व्याकरण, धर्मशास्त्रादिकी पढ़ाई होगी। इसके आधिन १०० विद्यार्थियोंके योग्य बोर्डिंग भी रहेगा, जिसमें ५० वि० संस्कृतके ५० अंग्रेजीके रहेंगे और यह बोर्डिंग स्कूलभी उसीमें संमिलित हो जायगा। महाविद्यालयमें प्रविष्ट होनेवाले विद्यार्थीओंने अपना प्रार्थना पत्र भेजना चाहिए।

(३६) सेठ हुकमचंद दि. जैन मन्दिर, इन्दौर:—दानवीर सेठ हुकमचंदजीने यह विशाल और सुशोभित मन्दिर सं. १९५८ में नशियाँजीमें बनाया था, जिसमें निर्माण और प्रतिष्ठोत्सवमें दो लक्ष रुपया लगा है। इस मन्दिरके प्रबंधार्थ स्थाई १०८६०) रु. और चालु विभागमें १३२५) दिये हैं, जिसके सूदसे कार्य चलता है।

(३७) सेठ सरूपचंदजी हुकमचंद दि. जैन धर्मशाला इन्दौर:—इस धर्मशालाकी इमारत हालमेंही तय्यार हुई है, जिसका एक तरफका यह चित्र है। इसके बानेमें ३२०००) रु. लगा है। इसमें ५००

આદમિયોંકે ઠહરને યોગ્ય મકાનાત હૈ ઔર ઉચ્ચ વર્ણકે હિન્દૂ માત્ર ૮ દિન તક વિના કિસી ચાર્જકે ઠહર સકતે હૈ ઔર સવ-તરહકા ઇન્તજામ હૈ । મુસાફિરોંકી માહ-વારી સંખ્યા ૧૦૦ રહતી હૈ । ઇસકે, સ્વર્ચકે લિયે સેઠ સાહિબને ૧૫૦૦૦) રૂ. સ્થા-યી કોષમેં દિયા હૈ ઔર વ્યાપારાદિ પર મીજો લાગ લગાઈ હુઈ હૈ ઉસસે ૭૦૦) રૂ. વાર્ષિક આમદ હોતી હૈ । વાર્ષિક સ્વર્ચ ૧૨૦૦) રૂ. હૈ ।

(૨૮) શેઠ પ્રે. મો. દિ. જૈન યો-ડિંગ સ્કુલ, અમદાવાદ:—આ યોડિંગ સ્વ. દાનવીર શેઠ માણેકચંદળના ભત્રિજા પ્રેમચંદલાઈના સ્મરણાર્થે ૧૧ વર્ષ થયાં સ્થપાયલી છે, જેથી ગુજરાતને ધણોજ લાભ થયો છે. આજસુધીમાં એનો દશા હુમડ ૪૨, વીશા હુમડ ૧૦, દશાનરસિંહપુરા ૬૪, વીસામેવાડા ૫૧ અને રાયકવાલ ૧ એમ મળી ૨૬૮ વિદ્યાર્થીઓએ લાભ લીધો છે, જેમાં હાલ ૪૦ની સંખ્યા છે. યોડિંગ છોડેલામાં ધણા નોકરીએ તથા વ્યાપારમાં નેડાયલા છે. સ્થાપી ફંડ માત્ર રૂ. ૪૮૮૪૩૮, વાર્ષિક ઉપજ આશરે રૂ. ૩૯૦૦) અને ખરચ આશરે રૂ. ૪૧૬૩) છે. આ યોડિંગથી ગુજરાત પ્રાંતને અલભ્ય લાભ મળી રહેલો છે, તથા આ 'દિગંબર જૈન'ની શરૂઆત થવાનું નિમિત્ત કારણ પણ આ યોડિંગજ થઈ છે, જેનું માન સ્વર્ગીય દાનવીર શેઠનેજ ઘટે છે. આ સંસ્થાને ગુજરાત પ્રાંતના દિ. ભાઈઓએ વિદ્યાર્થીઓ તથા દ્રવ્યદ્વારા વખતો-વખત ઘટતી મદદ આપતાં રહેવાની જરૂર છે. આ યુપમાં વિદ્યાર્થીઓ ઉપરાંત સુપ્રીન્ટેન્ડન્ટ માસ્તર ગંગાશંકર અને ધર્મશિક્ષક પં. કાશીભાઈ પણ છે, જેઓ યોડિંગનું કાર્ય મોઝ્યતાપૂર્વક ધણાં વર્ષથી ચલાવે છે. સેક્રેટરી શા. લક્ષ્મીભાઈ લક્ષ્મીચંદ ચોકશી મુખાઈ છે.

(૩૯-૪૦) ઐલક પત્રાલાલ દિ. જૈન પાઠશાલા, સોલાપુર:—આ પાઠશાલાની પ્રથમ શરૂઆત સં. ૧૯૪૧માં ત્યાગી રિખવ-દાસજી આગ્રવાળા અને ખાલુ દુલીચંદજી જયપુરવાળાની પ્રેરણાથી રૂ. ૨૦૦૦)થી થઈ હતી જે વખતે જૈન પાઠશાલા એ નામ હતું. ફંડ વધતાં વધતાં ૨૫ વર્ષે ૧૪૦૦૦)નું થયું હતું અને ૪ વર્ષ ઉપર શ્રીમન ત્યાગી ઐલક પત્રા-લાલજીના કેશલોચ સમયે કેશલોચ સ્મારણાર્થે વધુ સ્થાયી ફંડ માટે નવીન ધ. શીતલપ્ર-સાદજીની કાશીશયી રૂ. ૨૫૦૦૦) ભરાયા હતા તેથી હાલ રૂ. ૩૯૦૦૦) નું સ્થાયી ફંડ છે. પ્રાથમિક ઉપરાંત ધાર્મિક અને સંસ્કૃતનું શિ-ક્ષણ અત્રે અપાય છે. તેમાં બે વરસ થયાં પં. બંશીધરજી દ્વારા ન્યાય, કાવ્ય વગેરેનું ઉચું શિક્ષણ અપાય છે. શાળા માટે ગત વર્ષે કુદુંવાડીવાળા ગાંધી માણેકચંદ લખમીચંદ, દોશી સખારામ નેમચંદ અને દોશી હીરા-ચંદ નેમચંદે મળીને રૂ. ૧૦૦૦૦) ખરચી નવી ધમારત બંધાવી આપી છે, જેનું આ ચિત્ર છે, તેમ વિદ્યાર્થીઓના યુપમાં ખુર્શી પર બેઠેલામાં ચોથા પં. બંશીધરજી શાસ્ત્રી તથા પાંચમા પં. પાસુગોપાળ શાસ્ત્રી પણ છે. હાલ ૭૦ વિદ્યાર્થીઓ આ પાઠશાલાનો લાભ ઉત્તમ રીતે લઈ રહેલા છે. સંસ્કૃત શી-ખનારને સાધારણ અંગ્રેજીનું જ્ઞાન પણ અ-પાય છે. એકંદરે આ સંસ્થા ૨૬ વર્ષ થયાં નિર્વિઘ્ને ચાલ્યા કરે છે જેનું માન સોલા-પુરના ભાઈઓને ઘટે છે.

(૪૧-૪૨) શેઠ નાથા રંગજી દિ. જૈન યોડિંગ, સોલાપુર:—આકલુજ નિવાસી ગાંધી નાથા રંગજીએ રૂ. ૨૫૦૦૦)ની મદદથી ૬ વરસ થયાં આ યોડિંગ સ્થાપી છે, જેમાં ત્યા-ગીજી પત્રાલાલજીના કેશલોચ સમયે રૂ. ૯૦૦૦) વધુ મદદ આપી હતી તથા ગત વર્ષમાં યો-ડિંગ માટે રૂ. ૨૬૦૦૦) ખરચી ખાસ ધિ-મારત બંધાવી આપી છે. હાલ એનો ૪૦ વિદ્યાર્થીઓ લાભ લે છે. આ યોડિંગ તથા પાઠશાલાના મંત્રી દોશી હીરાચંદ નેમચંદજી ઠરેલ અને અનુભવી હોવાથી પ્રબંધ ઉત્તમ રીતે ચાલે છે.

(४३) शेठ मा. पा. दि. जैन बोर्डिंग-
रतलामः—स्वर्गीय दानवीर शेठ माणेकचंद-
जीए पोतानी पेढी 'माणिकचंद पानाचंद'
ना नामथी आ बोर्डिंग त्रण वर्ष थयां
रतलाम नरेशने हाथे स्थापन करी छे,
जेमां शरुआतमां चारज विद्यार्थी हता, त्यारे
आजसुधी एनो वागड, मेवाड, माळवाना
६७ विद्यार्थीओ लाभ लई गया छे, तेमां
२३ विद्यार्थी हाल छे, जेने हिन्दी पहेलाथी
अंग्रेजी मीडल सुधीनो अभ्यास थाय छे.
सुप्रीन्टेन्डंट भाई कालुरामजी धर्मशिक्षण
आप्रे छे, जेओ बहुज काबेल अने लायक
होवाथी बोर्डिंगना कार्यथी सर्वेने संतोष
थाय छे. आज मुजब बधी बोर्डिंगोमां
सुप्रीन्टेन्डंटज धर्मशिक्षण आपी शके
एवी गोठवणो थवानी जरुर छे. स्थायी
फंड सारं छे, पण स्वतंत्र मकाननी जरुर
छे. एना सेक्रेटरी परी. लल्लुभाई प्रेमानंद-
दास एल. सी. ई. छे.

(४४) सुमेरचन्द दि. जैन बोर्डिंग-ई-
लाहाबादः—इस बोर्डिंगकी स्थापना दो
वर्ष हुए स्वर्गीय बाबू सुमेरचंदजीकी धर्म-
पत्निकी ओरसे अपने पतिके स्मरणार्थ
हुई है जिनके सुप्रीन्टेन्डंट और धर्मशिक्षक
मास्टर दीपचंदजीमें धार्मिक प्रेम ज्यादा
होचेसे कार्य सफलतापूर्वक चल रहा है ।
अभी ११ विद्यार्थी हैं ! चित्रमें बैठे हुए
महाशयोंके अनुक्रमसे नाम निम्न लिखित
हैं—कुमार देवेन्द्रप्रसादजी, मा. दीपचंदजी
सुप्री, बच्चुलालजी मंत्री, Hon'ble J. G.

Tennings M. A, Principal
M. C. Collage., मूलचंदजी कोषाध्य-
क्ष, आनंदस्वरुपजी और शबीदन्तराय-
सहारनपुर ।

(४५) दि. जैन बोर्डिंग—मेरठः—तीन
साल हुए इस बोर्डिंगकी स्थापना हुई है,
जिसमें आजतक संयुक्त देशके ९० विद्या-
र्थीओं प्रवेश हुए थे और अभी ४५ वि-
द्यार्थी हैं । ध्रुव्य फंड बहुत कम है और
मकान किरायेका परन्तु अच्छा है । यदि फंड
ज्यादे होवे तो १०० विद्यार्थी हो जाते ।
इस बोर्डिंगके सभापति रायसाहब प्रभु-
लालजी और मंत्री बाबू रिषभदासजी बी.ए.
हैं । इस चित्रमें बैठे हुए महाशयोंमें दा-
हिनी ओरसे पाँचवें मास्टर मित्तसैनजी
कांसिल, आ. सुप्रीन्टेन्डंट और छठवें मा-
स्टर चंपतलाल आ. आ. सुप्री. हैं । सं-
युक्त देशके भाइओंने इस बोर्डिंगको सहा-
यता देते रहना चाहिए ।

(४६) केशलोचमहोत्सव (कुचामन)
का दृश्यः—३-४ वर्ष पूर्व श्रीमन् त्यागी
ऐलक पन्नालालजीके केशलोचके अवसर
पर कुचामनमें बड़ा भारी मेला हुआ था,
उस समयकी श्रीमज्जिनेन्द्रदेवकी रथयात्रा
(जलुस)का यह चित्र है । पाठकवृन्द !
देखिए ! क्या रमणिय चित्र है ? मध्यमें
रथ खड़ा है । चारों ओर यात्रीजन खड़े
हैं, जिसके बीचमें त्यागीजी पन्नालालजी
महाराज भी हैं । यह खुरजाका रथ बड़ा
भारी और बहुत शोभनीय है ।

(४७) श्री शान्तिनाथ दि. जैन विद्यालय—ज्ञालरापाटन शहर:—श्री शान्तिनाथजीका बहुत प्राचीन और दर्शनीय मन्दिरमें इस विद्यालयकी स्थापना दो वर्ष हुए हुई है। दो वर्ष पहले श्रीमन् त्यागी ऐलक पन्नालालजीका चतुर्मास और केशलोचमहोत्सव हुआथा तबही इस विद्यालयके लिये ३००००) रु.का चन्दा हुआथा जिससे कार्य सुभीतासे चलता है। अंदाजन् १११ विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। प्रबंध बहुत अच्छा है। विद्यालयकमीटिके सभापति मुनीम साहब लुणकरणजी सेठ विनोदीराम बालचन्दजी साहबके हैं। मंत्री श्री.मदनमोहनजी और उपमंत्री बाबू सुन्दरलालजी बैनाड़ा है जो विद्यालयका सब कार्य अच्छी तरहसे चलाते हैं। मैनेजर सेठ लालचंदजी और खजाञ्ची सेठ हमीरमलजी हैं। विद्यार्थीओंको धार्मिक नाटकभी सिखाये जाते हैं, जो कुछ उत्सवके समय कराया जाता है। इस विद्यालयके तालुक १ पुस्तकालय और १ औषधालयभी है और १ बोर्डिंगभी खुलनेवाला है।

(४८) यज्ञोपवितसंस्कार—अमरोहा:—गत भादों शुक्ल १०को श्री जैनमन्दिर (अमरोहा, मुरादाबाद)में नौमीके उपवासादिव्रतपूर्वक बड़े उत्सवके साथ जैनपद्धति अनुसार आठ वर्षसे बारह वर्ष तककी वयके छह विद्यार्थीओंका और इससे अधिक वयके १६ अन्य विद्यार्थीओं तथा विवाहित पुरुषोंका यज्ञोपवित (जनेऊ)संस्कार कराया

गया था, उसके अन्त समयका यह गुप फोटो है। यज्ञोपवित धारण करनेवालोंको सप्तव्यसनत्याग और अष्टमूलगुणधारणादि व्रतनियमादि दिलिये गये थे और पंडित विष्णुदत्तशर्मा (अध्यापक जैनपाठशाला) ने बड़े उत्साहके साथ जैनपद्धति अनुसार इस संस्कारको करानेके लिये ग्रहस्थाचार्यका पद धारण किया था और इस संस्कारकी आवश्यकता तथा इसके लाभ और आगेको इसकी सारसंभाल रखनेके नियमादि विषय पर एक सारगर्भित मनोहर व्याख्यान दिया था और परम हर्षका विषय है कि इसी संस्कारके हर्षमें जैन पाठशालाके विद्यार्थीयोंने अपने उस धनको जो उनको पारितोषिकमें दिया जाना निश्चित हुआ था अमरोहाकी सर्व जैन बिरादरीमें तथा भादों शु. १५ की जलधाराके वार्षिकोत्सव पर आए हुए बाहरके २५०से अधिक स्त्री पुरुषों और बालकोंमें हर व्यक्तिको चार चार लड्डु बांट देनेमें लगाकर सफल किया था।

(४९) दि. जैन महोत्सव, मुलतान:—गत आसोज वदी २ को मुलतानमें दिगंबर जैन महोत्सव बड़े आनन्दसे समाप्त हुआ था जिसमें रथमें श्रीजी बिराजमान करके बड़े जलसके साथ भजन और व्याख्यान बड़ी धूमधामसे हुआ था। यह चित्र भी उसी समय सभामें लिया गया था। इस जलसा आगेके वर्षसे अति शोभनीक हुआ था।

Life or Death for Jains !

(By Jagmandar Lal Jain: M. A. Barristor at-law, Saharanpur)



rimson clouds are thick and thundering over humanity. The great civilized christian *Europe* is in the thrives of *War*. Satan is out. The war-hounds are brisk. Peace is driven into the back-woods. Anarchy grips the fair throat of Europe. *The Mighty British Empire* willy-milly is drawn into the scuffle. India is also affected, though at present most indirectly. The rulers and statesmen of the world are having anxious days and sleepless nights. The sudden, though not quite unforeshadowed, crisis is a mighty eye-opener. It has submerged peace, but not killed it. The redfury drama that is being acted by Europe in epoch-making. It is bound to change the map of Europe. It will alter the face of the great white continent as nothing has done since the brilliant and agitated era of Napoleonic wars. In the unique situation which has arisen a word as to the *duties of Jains* can not be out of place. Law makes it their duty to do their level best, individually and collectively, to support and help the Empire. Anyone can be rightly proud of being a member of the great British Empire. National interests demand the preservation of *British Connection with India*: the political evolution and schooling of the Indian democracy has barely begun and its continuance

is essential for our national well-being. Lastly our self interest as Jains makes it as evident as it is urgent that we as a community stand to continue to prosper even to exist, under the ages of British supremacy over the unlettered forces that be suppressed by law and government and that but for this check, can make only for anarchy, insecurity and chaos. As followers of *Lord mahavira* the greatest and most uncompromising apostle of Peace and harmlessness, it behoves us all every Jain man or woman to be prepared to help the cause of the Empire with body, mind and spirit. Jainas can volunteer their services as members of the *Ambulance Corps*; they can raise *Subscriptions for the war funds*, for the distressed by the war, they can offer or supply provisions and in various other ways can do their duty as citizens and Jainas in the tremendous crisis which has enveloped the Empire. Let us all *pray* for the success of the Imperial arms in the migty *mahabharata of Europe*.

Turning our glance more home-words, the Community is mourning the *loss* of three of its greatest leaders. The veteran Secretary and founder of the *Mahasabha* of course we mean *Deputy Champat Rai* of Cawnpore was the first to leave us after a long illness. Then followed the death of *Danvir Jain Kulbhusan Sheth Maneckchand J. P.* of Bombay.

It will hardly be an exaggeration to feel that the *mahasabha* has closed its wearied eyelids in a very deep and perhaps unawakable sleep. Last of all the legal luminary of Calcutta *Babu Dhannulal Agarwala, Attorney at law*—like the Bombay Sheth left us at a very short—almost no notice at all. The North, the East and the West *Jain section* of our community are left leaderless, headless. Important and complicated matters are on the anvil and very cautious and earnest handling is necessary. Large amounts of *Public money are involved*. Many works have to be supervised, continued and settled. The community should wake up at this juncture and save itself if it can from utter ruin and dissolution. This brings me to the grim question which is the head-line of my this year's article for the "*Digambar Jaina*" *Life or Death for Jains!*

At the outset I must say that for other Indian communities, the question may be of reform and progress, but for us Jainas the problem resolves itself into the choice of one of the two alternatives. *Live or die*. The instinct of self-preservation hastily grasps the fist; but our continuous communal conduct points to the way, not of life, but of Death. One great mark of a living organism is its capacity to take in, to assimilate and make part and parcel of itself something of the none-self when *Jainism* was reborn in the great soul of *Lord Mahavira*, it was

a living organism. It attracted and absorbed *non-Jains*. The little details of life one way or the other—except for monks—did not threaten to soil its lustre or destroy its soul. Its cloak was not narrow, Its vast folds covered all humankind. All life, even the tiniest atom that may live, shared its tender compassion. Study, honesty, fearless independence, gentle feelings and strong character were the points for which Jainas were noted. For their religion as it was based on reasoned conviction, they gladly laid down their lives. Their word was law. A promise given meant scrupulous performance, unless unavoidable impossibility intervened. No *arriere Pensees* spoiled the sincerity of their speech. No mean regrets came to obstruct the actions which they determined to do themselves or which they led others to believe that they would do. This was the type of Jainas whose daily example was worth miles of manuscripts of beautifully polished *slokas* or *gathas* of the learned moralist of the day. For these men, marriage was a sacred bond, which nothing could dissolve or dishonour. For these men dishonest trade or deceitful competition was as loathsome to bow as open theft or violent extortion. They avoided killing people by hurting their feelings as much as by drawing the keen blade of the knife or dagger on their throats.

Huminity added the hue of heaven to their pure characters. They were too conscious of their human frailty to claim divine and exclusive honours because they were born Jainas not birth in a Jaina family but rebirth into Jainism was their claim to merit. As men they provided the raw material for home life; as women they made the homes peaceful to come into and helpful to rise towards *nirwana*. All that has changed now; some of us have become civilized by inane aping of the externals of the west without reaching the spirit that is the life and soul of its civilization. Most of us have become self-elected-self-styled custodians and preservers of the great heritage of *Peace* and *Brotherlines* left to us by *Lord Mahavira*. But we show our conservative quality by claiming to own—per the status of managership—*temples*, the *idols* therein and *the funds*; by owning *public institutions* simply because the community is dead or dying and there is no one to resist our claims. To traverse the poet I am monarch of all I survey, because my right there is none to dispute! Our *Soi-disant* temple-managers and are owners of the funds in their charge because there is none to call them to account for the money. A pretty pass this for an ancient and prosperous community!

This is only one aspect of the conservative spirit, which, to my mind, is a sign not merely of decay but of final dissolution. And a word must be put in to avoid misunder-

standing when I say our present problem is of life and Death. I mean that of the Jainas: but by no means of *Jainism*. Jainism so far as it is identical with truth must endure. *It can not die*. Nothing can kill it; not even the perversity of all the latter day Jainas. Its sweetness, its cogency, its power for good are as fresh and pérennial to day as at the *samavasaran* of *lord Mahavira*. Jainism, I fain believe, has already taken rebirth in the west. Its compassion (दया) is the soul of all the humanitarian and life-protecting institutions of *Europe* and *America*. Its sober, commonsense philosophy has already won the hearts of several of our English brothers and sisters. Its simple creed already satisfies many European intellects; and its products of the past excite the admiration a love of many learned men of the west. This *Jainism is not dead*. Indeed it is full of a new life. Only the garb is changed; its denomination is altered but it is the same old life giving nectar in new jars. I have already adverted to the mismanagement of our *public funds*. Our social matters share the same fate. There is hardly any public opinion strong and defined enough to keep any control upon the vagaries of thought and action of our people. The units of the *Jaina* community can do pretty just whatever they like and as they like it. Anti-Jaina practices are frequent and scandalously notorious and yet there is neither censure nor punishment. The pious horror of most of my

coreligionist at real or fancied impiety of our Jaina brotheren seems to me to be mute and helpless like the arm of a waxen doll. Wide awake cynicism smiles at jains crefficing the "low" customs and "unclean" "immoral" and practices of others; just as it may smile at the kettle calling the pot-black! In literacy the Jains are not the most backward of the Indian peoples so far as statistical percentages go. But statistics are very deluding and we must remember the Jainas total only just a little more than one million souls in all the wide, wide world in the population of the globe the *Jainas* are a mere *handful*. It is enough to make us hang down our heads in something like shame, to compare our expansion and our achievements with our claims and traditions. So it can not be denied that our intellectual training is very, very defective. Can omniscience (nirvana) be pursued by such training? Jainas boasted of untold treasures which they made by trade but where are these treasures! Almost every kind of Jaina public need is starved for *want of funds*. As to our public spirit, can a dying man dance! If the community is dying we are not surprised at the lack of public spirit or sacrifice in our men. Listless indifference, mocking levity, blind superstition are the three unholy strands which choke the life down in our community. *Older* men are all censure and dissatisfaction; *younger* men impatient and supercilious. The former do nothing, only criticise and call it preserving the purity

of Jainism, the latter forsake, the galling conventionalities of the creed of their birth, by the up-to-date atteredisms that hail from without and that keep up continuous alliance with the forces of the material world which the *Jaina* prophets despised and conquered, and which in its turn despise and tyranimise over the deteriorating Jainas of today!

Anyone taking a dispassionate and not over optimistic view of things can see that the above is not an exaggerated account of the ills of our people. We are disorganised, uneducated, without effective social and public institutions, our numbers are growing less; our wealth is going down, our whole community is decaying. *We are on the path to dissolution and death*. But this fatal progress can be stopped. *The remedy* is in our hands. We must organise ourselves, educate ourselves; we must have a good enjoyable social life in line with the modern lives of the best and most advanced people of the *east* and the *west*. We must throw open the fold of *Jainism* liberally and frankly to all; we must organise our trading and banking resources; we must help and uplift the whole community: physically, morally, socially and spiritually. Will the Jains apply the remedy and perhaps save their tottering fraternity from utter down-fall? I prey and hope they may, when there is even the sixtieth minute of the twelfth hour left to them!

Live and Let Live.

(Ahimsa, or the principle of non-injury)

(By Alexander Gordon, Secretary, The Mahavir Brotherhood Cheshire England)

Embodied within the Jain observance of the principle of Ahimsa is to be found the "Perfect Way" as to Diet for those human beings who desire to possess healthy bodies for fraternal service, purified minds for right thinking, clean hearts for pure feeling, and rightly developed souls for noble living.

The Jains of India, in practising this humane method of obtaining sustenance for the physical body, do not inculcate this non-flesh dietary from the economical or health point of view, but base their teachings on the motto "Ahimsa Paramo Dharmah" (non-injury [to life is the highest virtue) which, in a very practical manner reveals their mercy, justice and wisdom, to be found in operation by their most considerate attitude towards all mundane living beings. The act of killing an animal for the sake of preparing its flesh for food, feeds the grosser passions, deadens the finer spiritual forces, and consequently dulls the mind of the killer. The partaker of this kind of food also hinders his own spiritual evolution from the psychological fact that the animals magnetic conditions are transferred.

This degrading custom of killing animals for the purpose of supplying foods for the peoples of Europe and America, has gained such a hold over the minds of the people generally, that the claims of the sentient creatures are not in any way entertained in the Western World; but the Jains of India have for upwards of 2,000 years recognised that the sympathy between body, mind and soul, is too great for the pollution of the one to leave the other pure. This is the wonderful message from the East which is one of the foremost principles of morality in Jainism; hence they have never needed a Society for the Prevention of Cruelty to Animals, a Humanitarian League, or an Anti-Vivisection Society. These Jaina teachings are the outcome of the knowledge that all a man's evils originate within himself and can only be successfully overcome within his own kingdom of thought and desire; consequently the Jaina dietetic habits have proved to be necessary if we wish to elevate the whole moral tone of a man, and this is the practical realisation of their beautiful doctrine of Ahimsa.

Thus, their freedom from stimulating and passion feeding foods has proved beyond all doubt that the life to be lived in order to help for-

ward the true evolution of all living beings must be one of absolute freedom from the use of the grosser foods which undoubtedly create and foster unnatural cravings and desires. To the Western mind this Jaina vision of life will probably be met by statements such as:—"It is a mode of life only suitable for dreamers." "It is not practicable." "The brutes are made for man, who has the same right over them which he claims to have over plants and stones."

"If he may kill them for food, it must be right to inflict pain upon them for the purpose of increasing man's knowledge, health, etc." Having also the same view in mind, the assertion will be made that animals can be hunted and killed for the depraved excitement of the senses engendered by what is termed 'sport.'

Whilst men hold such ideas it is impossible for them morally to improve their status because of the lack of pity and compassion which the animals sorely need in their world of torture and agony. Nevertheless, the religion of the Jains has stood the test of time as it is one of the oldest religions which has for thousands of years valiantly championed the cause of the evolution of the animal Kingdom, by the denunciation of the slaughter of any sentient beings for food, sacrifice, hunting or any other purpose. This vision of the Jains is not a dream, but it is a mode of life which shows the way

to the consecration of the body to the purest habits, because it is embraced in the method of life by which the soul of an earnest seeker for the Truth can get rid of hatred and all the other passions and affections which tend to hinder the soul's spiritual evolution.

A Western mind may ask the question "What is the immediate effect of the adoption of the principle of Ahimsa?" The answer to this question is, that a human being would be enabled to more fully recognise the fact that the divine powers of the universe are to be found within oneself and that all human beings can work out the ideal within them.

This a glorious message of liberty on account of its revealing what it is to live a life of love and compassion which implies the fraternity of all living beings. Thus, in the heart of a Jain, there is no room for the thought of depriving any living sentient being of its life.

The ultimate end of the practice of Ahimsa is the realisation of a mental attitude which brings with it "a peace which passeth all understanding." Therefore it behoves all students of the "higher life" to fully comprehend the beautiful Jaina principle "live and let live" with its noble exhortation to practise the widest circle of mercy and compassion which is the inner meaning of the Christian text.

"Love is the fulfilling of the law."

The Six Dravyas of the Jain Philosophy.

(By Mr. Herbert Warren, 84 Shelgate road—London S. W.)

“**Dravya**” is the real, anything that exists. It is translated by the word “*substance*.” Before examining what six particular substances there are in the universe, we must first know about substance itself. And before dealing with either, we must show the use of doing so, otherwise it may appear to be a waste of time.

With regard to the use of considering the subject, the aim of life is happiness. In order to attain *happiness* we must know what to do; and in order to know what to do to attain happiness, we must understand the universe and man's place in it, that is to say, we must understand the six real substances that there are.

As the late *V. R. Gandhi* said in his *Chicago* lectures (see “*The Yoga Philosophy*,” by B. F. Karbhari, Bombay), when rules of conduct are separated from physics and psychology, as they tend to be at present, especially in the West, such rules have no solidity and therefore no strength, “*Thou shalt do no murder*.” Why? The theologian would say because that is the command of God. The materialist would say because that is the command of the ruling authority. But why should God and Sovereigns issue such commands? There is no rational reply. Rules of conduct which are not based

upon a rational demonstration of the universe, rest upon nothing but individual opinion and convenience, the “irregular whims and caprices of individuals and nations.”

So the use of studying the “*six dravyas*” is that we may have a rational and solid foundation for rules of conduct to produce happiness which is the aim of life.

With regard to substance, the universe is the totality of realities. We classify such different things as ink, pens, and blotting paper, under one heading and call them “*stationery*” and again worm, tree, bird, angel, fish, man, God, are classified as living beings. Then again, such different things as stationery and living beings may be classified as substance. Substance is the one class in which all real things may be included, such as those just named, or anything else, a lump of clay, a brass band an ocean or a universe.

Substance then, is not something different from what we are all acquainted with; there is no such thing as mere substance which is not a particular stuff or thing, any more than stationery is mere stationery or living beings are mere living beings, stationery must be either ink, or blotting paper, or something particular, and living beings must be either men, or trees, or spirits, or some particular living being or beings; so too,

substance must be some particular stuff or thing or being, clay, fish, fruit, criminals, armies, circuses, solar systems, steam, or a universe, or something.

We want a definition of substance, what is it? To define it, a characteristic must be mentioned which is true of every real thing or being, so that nothing real shall be left out; and the quality, or characteristic, must be one which is not found in any unreal thing, so that nothing unreal shall be included.

Substance is that in which the differences of time, space, and modifications inhere together. This will apply to anything real; teacups for instance, in spite of all the differences of time that the clay is in the form of a teacup, the different spaces occupied by one teacup and another, and the different modifications, size, shape, etc., in spite of all these differences, still there is the mass of teacups, one thing, the whole mass of teacups is substance.

The same is true of anything, clocks, watches, solar systems, nebula, worlds, the universe, anything. The same is true of souls, in spite of all the different conscious beings that there are, still there is the mass, the mass of conscious beings is substance.

There are other definitions, however, from other points of view, namely:—substance is that which is the subject of qualities and modifications. Also substance is that in which there are origination, destruction, and

permanence; i. e. origination of a new mode of manifestation, destruction of the old previous mode, and permanence of the substance; for instance, origination of a solar system, destruction of the nebula that it was previously, and the continued existence of the substance, permanence of the substance. And then from an ordinary practical point of view, substance is that which performs a special action which is not performed by any other thing, but this would only apply to some particular substance thought of.

Any real thing, a lump of clay, all the teacups in the universe, a living being, anything, can be looked upon in four different ways as pure substance without thinking of the qualities and modifications, and so four definitions are given. But this is only possible in thought and not in actual fact.

The next thing is to know what particular substances there are. Substance is the one class in which everything real is included, and now we want to know the members of the class, what real things there are to include in this one class, and so we get a classification of real things, a classification of substances, 'the six dravyas.'

The Jain philosophy recognises six kinds of substances, their names are as follows:—

1. Dharmastikaya.
2. Adharmastikaya.
3. Akashastikaya.
4. Pudgalastikaya.

5. *Jivastikaya*.

6. *Kala*.

DHARMASTIKAYA is that substance which is the accompanying cause of the motion of moving things and beings. The accompanying cause is necessary for the motion, without the accompanying cause there could not be any motion. Vibration would be explained by this substance.

ADHARMASTIKAYA is the accompanying cause of the stationary states of things and beings that are not moving or that are resting in the sense of not moving.

AKASHASTIKAYA is that substance which acts as a receptacle of all other substances; and this is not a kind of thing that needs to be contained. It may be called space.

PUDGALASTIKAYA is that substance the nature of which is such that its qualities, colour, etc., increase and decrease. Here the real substance is the atom, but not in the Theosophical sense: the real substance is the ultimate, indivisible atom. Matter in all forms is made up of atoms, but the atom is not made up of other units, is not a mixture of other things. The atom is minute; it is permanent; it has no "*pradeshas*" (indivisible inseparable parts).

JIVASTIKAYA is that substance whose characteristic is "*chetana*" (sentience, consciousness, awareness, knowledge).

Each of the above five real things is a collection of indivisible inseparable parts (*Astikaya*).

KALA time. It is only called a substance for a matter of convenience, it is only figuratively a substance. Really, time is the modification, and a particular modification only; it is that modification which enables us to know the oldness or newness, the anteriority, or posteriority of a thing or being. And especially this modification is common to all the five substances, while it is very difficult to find other modifications that are common to all substances. Time is the duration of the states of substances; it is only by attribution a substance, from the practical point of view. It is not made up of "*pradeshas*."

Pradeshas.

(Indivisible, inseparable parts.)

The indivisible parts of a substance are called "*pradeshas*;" they are thought only in imagination. In any particular soul there are innumerable *pradeshas*; and any particular *dravya* has many *pradeshas* (the atom has no *pradeshas*). In every *pradeshas* there are infinite capacities of performing common action, of performing a common action in innumerable ways, of acting together in innumerable ways. "*Capacity*" refers to the future; capacities are future modifications.

Guna.—Paryaya.

Guna means the quality. Paryaya means the modification.

For instance, matter has colour, colour is the quality or *guna*; any particular matter has a particular

colour, the particular colour (red, for instance) is the modification or paryaya of the quality.

The particular mark which would stay all the time with the substance is quality; the temporary state is the modification.

The modifications succeed each other, the quality is permanent. In the changing states of knowledge, for instance, there is the permanent capacity to know.

There is only a distinction between guna and paryaya and not a real difference. Distinction means that it is separable only in thought; difference means a real fact of difference.

Having qualities and modifications is the characteristic of substance. Red is a modification, not a quality. A chair is a modification of matter; a horse is a modification of "jiva" (living being).

Natures.

As mentioned on page 48 any real thing, a lump of clay, a man, a town, a continent, a planet, or a universe, anything, can be looked upon as pure substance; and thus regarding it four definitions have been given, definitions which include any real substance, and which do not include anything that is not real substance (except time which is figuratively called a substance.)

If, however, we take for consideration any one of the five real substances mentioned on page 48; matter, for instance, it may be looked upon in a general way, or in a

particular way; that is to say, the natures that it has in common with living beings, space, and those two ethers may be regarded, or the natures that are peculiar to it, and which living beings, space, and those two ethers do not have may be regarded. Thus when regarding any one of the five real substances there are its common natures and its particular natures. And obviously this does not apply if everything in the universe is lumped together in mind and thought of as one mass, because then there is no other substance to compare it with.

To omniscience any one thing has infinite common natures, and infinite particular natures. Of the common natures the following primary ones are mentioned:—

1. Existence (*Astitva*).
2. The fact of being the subject of qualities and modifications.
3. The fact of performing special specific functions; i. e., the fact of being a substance.
4. Knowableness. Substances can be known by souls, and this particular point of Jainism differentiates it from Kant's philosophy (that the thing in itself cannot be known.)
5. The fact of being the subject of the capacity of originating modifications, destroying old modifications, and of keeping itself permanent; i.e. the fact of having origination, destruction and permanence.

In addition to the above primary general natures, the following secondary general natures are mentioned; they are common to all the five real substances, matter, etc.;—

1. Existence (*Astitva*)
2. Non-existence; that is to say, the non-existence of other things in the one thing under consideration; in matter, for instance, there is the non-existence of space.
3. Permanence.
4. Change.
5. Unity, the fact of being one.
6. Plurality, the fact of being many.
7. Separateness.
8. Unitedness, the fact of being part of,

And there are infinite others.

Of the particular natures, consciousness is a particular nature of living beings, and is non-existent in matter; matter never becomes conscious; the same is true of space, time and those two ethers, consciousness is absent in them, is not a nature common to them.

Tangibility, taste, smell, and visibility are particular natures of matter; those two ethers, space, time, and living beings (souls) are not tangible or visible; that which is visible in men, animals, plants, etc., is not the living being but the matter of which the bodies are composed. Spirit, which is the same as soul, never becomes tangible or visible; but the signs of its existence

visible. You cannot touch or see another man's knowledge, or his belief, his feelings, or choices, or any of the psychological qualities the soul has as its factors,...qualities which are not resolvable, are not separable in the individual, but which are ever changing their modifications; knowledge of the present is continually changing into knowledge of the past and knowledge of (or belief about) the future is continually changing into present knowledge,—knowledge of the future is quite possible; for instance, we know on Monday that to-morrow will be Tuesday; and on Tuesday the knowledge has changed and we know that it *is* (not that it *will be*) Tuesday; there is a difference in the quality.

The fact of containing is a particular nature of space;—and space is not the kind of thing that needs to be contained itself.

So we see that in thinking of any one particular real substance, matter for instance, there are its common natures and there are its particular natures; it is not possible for a substance to have nothing but common natures; it must also have particular ones.

With reference to spirit, just as matter is a mass of individual atoms so '*jiva*' (that which is conscious) is a mass of individual living beings, each having its own identity. Each soul is different from every other, one soul never becomes another or absorbed into another. Each soul is a conglomerate of qualities. Each

atom (or whatever name one uses for the ultimate unit of matter) too is a conglomerate of qualities and is not made up of other things, and so too a soul is not made up of other things. The peculiar characteristic, consciousness, cannot be destroyed it can be obscured; the individual can but exist, he must exist in some condition or other, he has this general nature in common with all things, to exist is his very nature; so the consideration is not how to keep ourselves in existence but to keep ourselves in a desired condition. What is an ideal condition? Happiness is universally regarded as the ideal condition.

So whatever real thing we take to talk about, it will consist of one, or more, of these six real things, matter, spirit, space, those two ethers and figuratively time, and may be regarded simply as a real thing, a lump of clay, a brass band, a nebula, a universe, anything.

Suppose we think of a band, it is a reality, one real thing; and each of those four definitions will apply to it. In this way of regarding it, a band is not more than one thing. So too a man, or a cat, or a tree is one thing, one living being, not two.

Now, although a band is one thing, obviously some parts are living beings and some parts are inanimate. So a band, although it may be regarded as one band, is nevertheless viewable as a duality; a band is something, and also it is some things namely:—things animate and things inanimate, men and instruments.

In the case of a band, this composite nature is very palpable. In the case of a man, however, who also is composite, it is not so palpable. Man is composed of body and soul, matter and spirit; so, although a man is one man, he is two substances, viz:—the conscious substance, and the visible substance, combined.

To sum up, we go on unifying things until we have unified everything in the universe. Just as we unify such dissimilar things as ink, pens, and blotting paper, into stationery, and such different BEINGS as worm, angel, tree, man into living beings, so we finally unify all real things, stationery, living beings, oceans, planets, solar systems, nebulae, space, universe, into one category which we call substance.

Substance, then is a class, just as fish, for instance, is a class; and just as there are different kinds of fish so there are different kinds of substance. Consequently in taking some one thing for consideration, such for instance as a brass band, it may include more than one kind of substance; so too in speaking of man we are speaking of more than one kind of substance. As soon as man understands that he is composed of two things sentient substance and insentient substance, most of which latter goes into the grave at death, and which is not the conscious individual at all, he begins to part company with all that isn't himself, to detach himself from all that isn't himself.

In proportion, as he does this his life becomes a right life; what he does will be right; his doings will be those very activities that are called moral, his life will not be mere obedience to commands that are but irregular whims and caprices of individuals and nations; his conduct will be based upon a rational understanding of the universe and

will have some solidity and strength.

Thus we see the use of thinking about the *six dravyas*. *Moral and spiritual conduct is the natural life of the soul. Cruelty, untruthfulness, dishonesty, greed, fear, ignorance, pain, weakness, are all unnatural, they are the death of the soul, due to moral uncleanness.*

'Element of Religion in Education.'

(Specially written by—**Manilal H. Udani**, M. A., LL. B. F. LL. C.—BOMBAY.)

It is a matter of gratification and pleasure to see that the eyes of all seekers of truth and lovers of humanity are directed to the *propagation of knowledge* amongst all people without distinction of caste, sect or creed, as a first step to the acquisition of happiness and bliss which is the aim of every soul. There is not an iota of doubt that every man has commenced to feel that *education* is the most essential element in life, that knowledge is more valuable than anything else in the world and that so long as his veil of ignorance may not be raised by the light of knowledge he is in no better condition than a man who although he has eyes, keeps them closed to the light and beauties of *Nature*. What the light of the sun provides for the sustenance of vegetable, animal or human life on earth, the knowledge provideth to the development of the soul in the cycle of evolution. So knowledge is as essential to the spiri-

tual life, as the rays of the sun are necessary to the keeping up of a healthy body. So having realized that *knowledge is the most necessary element in life*, we go to the determination of question as to the imparting of *real education*, and how it can lead to the perfection of the mind.

The goal of education is to lead us out of a condition in which we do not know and to carry us to a state where we realize our real self and realize our duties and responsibilities in life. If education succeeds in developing the mind, if it presents before us a true picture of our duty, if it gives us the peace of mind and joy in life, if it opens before us the whole vista of suffering humanity and the link or the common chord, by which we are all bound with each other, if it gives us the realization of truth, and if it animates in our soul the flow of universal love towards all the creatures of the world

if it raises us over the hatred and animosities of one class with another and if it produces in our mind an echo that we are not to limit ourselves by belonging to a narrow circle, but that the whole world is a manifestation of the self in different forms but with the same faculties and that we are all enjoined to live in a state of mutual love and cooperation in the name of the Great One at whose feet we have the same rights and privileges. If education throws a lustre of itself in our hearts and succeeds in keeping us aloof from the temptations in the world, then that is the *proper education* and we should welcome it from whatever source it may come.

Education does not consist in committing to memory well known pieces of literature, it does not consist in making life more artificial and fashionable. Real education engenders no pride or a higher estimation of the self but makes him more simple, more modest and more polite to humanity. Education requires no show thereof : it is manifested and perceived wherever it exists in its real type and you find on that face the splendour of light. Every soul is crying for knowledge; every soul is searching the truth, every soul is groping for happiness, whether the soul succeeds in acquiring the object of its pursuit is a question for every individual to solve for himself, and to the extent that it has succeeded in acquiring peace of mind, control over the self, knowledge of the

self and the equanimity of mind, to the waves of pleasure or pain, to that stage the soul has progressed in his journey. Leaving aside the philosophical denomination I will sum up in a word that if your mind is in harmony with nature and the touch-stone of conscience is satisfied in the performance of duties and your mind is not agitated by any action, you are in the cycle of evolution and in a state of proper education : if not you need more knowledge, to free you from the illusions of life and to instill principles of free and liberal education into the recesses of your heart.

It is true that *education is increasing in every community*, in every country and in every nationality, it is true that efforts are being made to make education more practical and useful; it is true that intelligent heads of different countries are engaged in making researches in various fields of investigations into the ways of increasing the comforts of humanity; it is true that with our increased knowledge, systems of education in different countries are being compared and attempts are being made to find out and adopt the best methods in every place; it is true that several men of wisdom and experience are trying to find out systems of education which can give the *real knowledge* that the soul needs and which can make life most comfortable and happy. The attempts are made in every country to make education

free, liberal, and practical, but to what extent these efforts have become successful can be judged only from the consequences thereof. A hot discussion is going on at present amongst the men of erudition and Scholarship of the time whether the task of imparting instructions be joined with the lectures on moral principles, whether moral education is a necessary element, whether religion has any part in the sphere of education and it is a matter of great pleasure to see that most of the learned men have come to a conclusion that *moral education* is the most essential element in the system of every society and that no system of education can be perfect without the tinge of religiosity therein which leads to the formation of character and perception of divine love in humanity.

Having defined very briefly the goal of perfect education, I shall go on to discuss how far has India in general and the *Jains* in particular have grasped this spirit of education and how far we have made progress in different lines. There is no doubt that the number of schools goes on increasing year after year, that the people are realizing the utility of learning in every profession, that the number of students in every school and college is found increasing every year, there is no doubt that our *Universities* are producing a large number of *graduates* every year in different faculties, that facilities are being made by the leaders of every community to pro-

vide primary, secondary and higher education to the poor students of their class, that even lower classes are offered opportunities to take education and to benefit themselves by the use thereof. These are all good signs. These are all signs for the progress and civilization of India in the near future. But to bring a glorious day earlier in India, we need still the spreading of education far and wide, not only *free* but *compulsory* and it is a good fortune of ours to see that efforts are not neglected in this direction by the leaders of our country. For effecting this purpose it is the duty of every dutiful son of *India* to do whatever he can in this common and noble cause of spreading right education amongst his brothers.

Before proceeding further I will first of all remove from your mind, the idea that India has increased in education. A very good beginning is already made in spreading education more and more, by the help of the *Benign British Government*. However in comparison with our Nations, we are at a miserable bottom. The latest statistics showing the *percentage of educated persons*, i. e. of those persons who can simply read and write are as follows:—

England 99. p. c. *Holland* 98 p. c. *Japan* 95 p. c. *America* 94 p. c.—*India* 3½ p. c.—from which you can see that inspite of all these measures, in the cause of education, *the greatest mass of our people is illiterate, ignorant and groping in*

darkness and greatest help and efforts are needed still in the propaganda of spreading education in every village, town city or nook and corner of India.

This is a huge task but not impossible, and it can be successfully accomplished if every community takes up into its hands the task of educating its own people, or if the Government makes education *free*, or if liberal philonthrophists, possessed with means decide to contribute liberally in this noble cause of giving knowledge to the ignorant. Now taking the Jains in particular I assure you that our community is very backward in receiving high education.

Liberal gentlemen of the Jain community have already realized this necessity and during the course of a few years, we see that *Boarding Schools* are provided to Jain students in every large city in India, free Jain High schools are already established and *Widows homes* and *industrial homes* are provided at some places: but we can not stop there and great many things most useful to the uplift of the community in the rank of other nations are still badly needed and any delay that is made in providing for these necessities of the time, not only hinders our progress but throws us back. It is now high time that *all the Jains should in practice forget the spirit of being born Swetambers, or Digam-bars or Sthankvasis* should live above this little differance in rituals and

with the liberal spirit of universal love so nobly preached by *Lord Mahavir*, we should regard ~~each~~ and every creature in the world as our own self and do for it what we do for our ownself.

Brothers realize this great truth in practice, realize at least in the spreading of education, spread education amongst all without distinction of caste, colour, creed, or sect, give knowledge to all without any price and then remember that such humanitarian who will sacrifice his money, talents or strength in such a noble cause, he shall get a thousandfold of what he gives in the selfless cause from the sphere of the Invisible. The work is not very difficult and the fruits would not be far, *if the rich Jains of India grasp this eminent idea of spreading the cause of religion through education.* The rich and the educated need to unite the attributes of each, the first his *wealth* and the second his *intellect* and a great *service* can be rendered to humanity.

After solving the first question and proving by facts that India is still greatly *backwards in education* I shall go on with the second question. "*whether the education that we have received has made us independent and happy and if not why is it so?*"

The solution of this question is very painful to every lover of humanity. It has been the cause of disappointment or convulsion to many of the promising youngmen of our country. One illustration will solve the question for you.

"An advertisement appears tomorrow in a paper that a graduate is wanted by so and so." Applications flow in numbers and the man who needs the services of the graduate buys the same as a marketable com-

modity and naturally at a lower price according to the economical *Law* of supply and demand. This is most disparaging and disappointing for our graduates and till we can not improve this state of things, we can not reap the practical results of education in our country. The main cause is this that the test of proper education defined above, is not satisfied, and that we cannot remedy this evil, till we succeed in making education practical and useful. It is the function of education to give you peace of mind, be you rich or poor, and so far as you do not succeed in attaining that harmony and peace of mind, as a resultant of your vibrations of knowledge, your education is to that extent imperfect and it is your necessity to make it perfect by acquiring what it lacks.

The study of *dead Languages*, unapplied chemistry, speculative philosophy, and such other studies cannot supply us the education that we need. You study and study for several years, till you get some degrees from the university and when you come out of the university with great enthusiasm and energy and when you enter into the affairs of the world, you find that you are a man of theories whereas the success in the world requires practical know-

ledge at every step in life. The fruits of education can be reaped only when knowledge is put into practice. Knowledge of itself has no practical utility till you know how to make use of it in practical life.

All that you know after coming out with success from the university consists in a through study of a number of prescribed books on literature, languages, science, history and mathematics, which take away the prime part of your life and require the use of your best brain and active energy, with an ardent desire to shine out in the practical life, you manage to master the books prescribed and pass the examination after great *exertions* and expense, get the *Degree* and when you come out in the field, you find that all the fields are blocked up and that there is not even standing room for you in any line. Such a state of things cannot but disparage you, cannot but baffle your enthusiasm, cannot but weaken the wings of energy. You find that you know little more than the study of *English Language* and that with a fair knowledge of English language you can do nothing more than work as a *Clerk* or *Manager* or *Officer* in some department. Several of the Graduates are required to take up appointments as *teachers*, or any post that may fall to their lot in the great struggle of existence and the wages of a *B. A.* are hardly more than 40 Rs. and of an *M. A.*, hardly more than 60 rupees *positively* and

which allowance is also denied to many. Having come in the society of educated persons he is required to keep up his status and as his expenses and necessities of life go on increasing, the resources of income become scanty and thus life seems to be miserable and tormenting. We find in practice that *the present education does not succeed in making us independent and happy.*

Our next step will be to find out the way to the acquisition of perfect education which can increase our peace and prosperity and which can make us independent and happy. The systems of education in our country require a thorough and keen attention and most significant change. Till knowledge is made practical and useful we can not take any advantage thereof. Our education can make us independent only when the studies of useful arts and industries will form the main part of our education. Examine the state of other countries; where education has increased the happiness of the people and see whether you receive such education or not? We need a great change in the system of education in *India* and he that shall take up such a cause in the name of love of humanity, shall win the highest merits and blessings from the unknown powers.

Education in Japan and America show us the systems of useful Education. It is now high time that mining, weaving, painting, pottery, agriculture and the study of applied

chemistry and of all useful arts, should be introduced in the course of our schools and colleges. It is now high time that the *studies of technical and mechanical science may be greatly increased.* The study of these arts will make your life independent and useful. *Medical* and *Legal* lines are also equally crowded and it is now essentially necessary that the introduction of new studies should open up new lines of employment and increase the wealth of the country.

The next step takes us to the solution of the question. "*How can education make us happy*" and this is the most interesting and useful question and which it is possible for every person individually to think out and adopt with the greatest comfort and satisfaction. A distinguished gentleman asked *Mr. Ranade*—"*Ranade, why don't you let, religion alone, what is the use of attempting to reform it when people do not care for the reform? There is so much else to do in this world than troubling oneself about God and Heaven?*"

Mr. Ranade's reply was very significant and that solves our question. He said—"*This is a land of religions: for better or for worse we have been thinking and talking of God and we cannot help it. God and religion are born in our blood; they will pursue us even if we run away from them.*

The reply is most intelligent: it sums up in short that so long as you

do not realize in practical life the closest connection of education with religion and so long as you are disposed to see a distinction between religious, moral or mental education, you cannot find the happiness that education can bestow as a consequence and so far the training is imperfect, there can be no perfection in education without the perception of the element of religion, there-in as a most prominent factor: wherever there is education, there is religion whether you perceive it or not and as you advance in education you feel in your mind peace and harmony consciously or unconsciously and which nothing but religion can yield.

Education is only a part of the great function of religion, and so long as this close union of both, with each other is not realized, you feel lack of harmony, in your mind. This is the most important lesson in life and earlier we realize it the earlier we reach the goal of life. *Religion* can be better expressed in feelings than in words: for Religion means in short the chord that binds you with the source, the chord that reminds you of the *spirit of brotherhood*, in the name of the source, the unknown and the unknowable, which are all bound with the same link. The moment you realize this, your mind is free from bondage.

It is a matter of *pity* to see that people may fight in the holy name of religions to find *Hindus*, *Mahomedans*, *Cristians*, *Parsis* and

followers of different religions quarrelling with each other for the sake of religion; this is all due to ignorance and for *want of true education*. God is no respecter of persons and there can be no religion but one irrespective of caste, colour, creed, or sect. Religion should be distinguished from Theology and divested of all dogmas and all distinction will disappear. If truth is revealed by different prophets at different times there can be no doubt, that *truth is one and the same* and it was promulgated in conformity to the times when the teachers appeared. If you see the rays of the sun, reflecting different colours in a prism; you cannot say the colour of the sun is violet or yellow or red or green and it is nothing but folly and ignorance to quarrel for upholding your belief that the colour of the ray is red or blue or green when you see before yourself the sun and its true colour. Raise up the veil of ignorance and you will see perfection of education when all differences will disappear from your eyes and you will grasp the real spirit of religion and the force of universal love. So every attempt to separate religion from education is quite futile: religion is born in us and we cannot separate it from any particle of our blood, although we may forget the realization of it and fight over the dogmas for some time; but we cannot get harmony and peace of mind and eternal happiness till we realize the very spirit of religion in every action of life. Such a stage in education is

perfection where mind feels its *union* with nature, communion with the Invisible, realizes the unity of all religions believing them as different gateways to the same goal, rises over the little self and sees the all, the indefinite, the same everywhere and forgets all differences. Till such a stage in education is reached, we can not get harmony, joy and happiness in any condition of life that nature has placed us.

It is a *matter of delight* that the *Jains* have realized this function of education and religious instructions are given in every *Jain Boarding School* or Jain institution. *Danvir Jain Kul Bhushan Sheth Manekchand Hirachand J. P.* of Bombay was the *first Jain Gentleman to grasp this most commendable idea* and his attempts have met with brilliant success every where. The Jain philosophy puts the truth so clearly and concisely before us, solves the riddle of life so beautifully, that any one that makes a study of it, will bring happiness not only to himself but bliss to the whole world by the power of his selfless spiritualism. It is a good fortune of the community that educated persons of our community as well as *western scholars* are taking great interest in the study and researches into the *Jain literature* and great credit is due to *Danvir Seth Manekchandji* who practically set an example of satisfying the need of the time and of spreading religion through the medium of liberal education; by spending a

large amount of *Rs. 10 to 12 lacs* in the cause of education amongst the Jains. *The Soul of Manekchand Sheth* has passed away to a higher region a few days ago leaving the whole Jain Community under the *depth of sorrow*, but his works are *immortal*, and *inspire* each and every liberal Jain to contribute all the money that he can in the cause of spreading education *without distinction of caste or creed* and thus raise up the *liberal spirit of Jainism* in every heart and soul.

The hearts of the Jains are most noble and benevolent: a Jain would not see even a minute creature unhappy: how can he tolerate the suffering of humanity? Education is the most proper way of relief, to lift up our suffering brothers from their difficulties. Give education to all without price: this is the *highest mission* appointed by the Almighty for the benevolent Jains and remember that those who will realize this grand mission of spreading truth, by educating the conscience of humanity and by giving them such education as can make their life independent and happy, free from all worries, anxieties and trouble of life, nay offering the very spiritual life on earth, shall win the goal of life and be freed from the corporal bondage, to dwell with the Great One. *Joy* will then be restored to people and *peace and harmony* will rule over the universe. Leave aside for a time all dogmas, all useless theories and beliefs, be firm in

your faith and aim at the *Unity of religions*: feel religion in the very breath of breaths: rise above all quarrels which are results of ignorance: spread education in the name of religion and try to make it practical, useful and perfect.

A vast change you will notice in the state of humanity: you will feel vibrations of spiritualism in the atmosphere and time will come when you will get whatever you want through your own Will, as we used to get from *Kalpa Vraksha* in days of yore. Peace and prosperity will be restored and India the mother of religions shall then be shining its spiritual lights and shall regain its original status and civilization. *To do all this* we need only a dozen of spiritual souls, who would prefer to renounce their material happiness in order to deserve and claim eternal happiness and bliss in the kingdom of heaven, only a few benevolent souls like that of *Danvir Sheth Maneckchandji* who would give their wealth in the cause of education and in the service of humanity and their venerable names will for ever be inscribed in the annals of the histories of nations and religions, as the saviours of humanity. *Amen.*

Bharat Jain Mahamandal

The All India Jain Association

ESTABLISHED 1899

General Secretary—

Baboo Ajit Prasad M. A., LL. B.

Ajitchashram—LUCKNOW,



જૈન સ્ત્રીસમાજને



સુશિક્ષિત કરવાના ઉપાય.

હે મારા જૈન સમાજની ઉન્નતિ કરવાને આતુર ભાષ્યો! તથા મારી અજ્ઞાન અધ-કારમાં પડેલી બહેનો! તથા વડિલ માતાઓ!

આજે આપણે ધણેજ આનંદ માનવો જોઈએ; કેમકે કાળરૂપી ચક્ર સર્વને માથે ભમે છે, તેમાંથી બચીને આપણે નૂતન વર્ષમાં પણ સુકૃત્ય કરવાને સાત્ત્વ તાત્ત્વ ઉપસ્થિત છીએ, તો તેની ખુશાલીમાં “જૈન સ્ત્રીસમાજ સુશિક્ષિત કેમ થાય” એ વિષય પર આપણે વિચાર કરીશું. સુશિક્ષિત એટલે સારી કેળવણી આપવી તે. જેવી રીતે ઘઉંની કણકને જેમ જેમ કેળવીએ તેમ તેમ નરમ અને સફાઈદાર રોટલી બને છે તથા તેનાં નાના પ્રકારનાં પકવાનો પણ કેળવણીથીજ બને છે, તેવીજ રીતે નાનપણથી પુત્રીને જે કેળવણી આપીએ, તો તેની અંદર નમ્રતા વિગેરે નાના પ્રકારના સદ્ગુણો આવે છે અને પિતાના ધરતું તથા શ્વસુરના ધરતું એક અલૌકિક ધરેણું બની જાય છે. સોના ચાંદી તથા હીરા માણેક મોતીનાં ધરેણાં તો ભય ઉત્પન્ન કરે છે, પણ આ ધરેણું કુટુંબને તેમજ આખા જનસમાજને હિતકારી થઈ પડે છે. આથી ઉલટું ન્યારે સ્ત્રીઓને અભણ રાખવામાં આવે છે સારે તેઓ તથા તેનાં કુટુંબીઓ તેના હઠીલા સ્વભાવથી તેના અસભ્યપણાથી ધણાજ દુઃખી થાય છે. તેમજ અભણ સ્ત્રી પોતે પણ દુઃખી થાય છે અને આત્મધ્યાન તથા શૈલધ્યાનના પ્રભાવથી મરીને નર્ક તિર્યચ યોગિમાં જઈ જન્મ લે છે. આવી રીતે

આલોક તથા પરલોકમાં દુઃખનું મુખ્ય કારણ એક અજ્ઞાન છે. જ્ઞાનથીજ કન્યાઓને પોતાની શક્તિઓને સારી રીતે ઉપયોગમાં લાવવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત થાય છે. યોગ્યતા હોવાથીજ જન્મ પર્યંત સ્વપરના ઉપકારમાં શક્તિ ખર્ચાય છે, નહીં તો દુરુપયોગ હોવાથી શોક, દુઃખ, પશ્ચાતાપ અને પારકાંની સાથે ધર્ષા તથા દ્વેષમાં મન લગ્ન છે અને માન, મત્સર, કષાય પોતામાં વધીને આત્માને આલોકમાં દુઃખી અને પરલોકમાં પાપી કરે છે, માટે કન્યાઓને સુશિક્ષા વગર રહેવા દેવી એ તેણીપર ઘણો મોટો અપકાર છે, તેથી અજ્ઞાનને દૂર કરવું જોઈએ.

જો કે પુસ્તકના શિક્ષણ વગર સ્વમુખથી તથા સાચાં દૃષ્ટાંતવર્તનથી પણ શિક્ષણ આપી શકાય છે અને એવું શિક્ષણ પુસ્તકોના શિક્ષણ કરતાં પણ મનમાં એક ઉત્તમ દલ અસર પેદા કરે છે; તોપણ પુસ્તકદ્વારા શિક્ષણ આપવું ખાસ જરૂરનું છે—અનેક શાસ્ત્ર વા પુસ્તકો સ્વયં ભણવાના કારણથી સ્વતંત્રતાથી મનનો સદુપયોગ અને સુશિક્ષાનો લાભ થાય છે—તેથી અક્ષરજ્ઞાનદ્વારા કન્યાઓને શિક્ષણ આપવું પણ પરમ આવશ્યકીય છે. એમાં શક નથી કે જે લોક કન્યાઓ ઉપર પુસ્તકોના પરિશ્રમનો ભારે ભોજો નાંખી દે છે તથા પરણ્યા પછી તેઓ પાસે મગજનું બહુજ કામ લે છે તે સ્ત્રીઓનું શરીર ધણું કરીને આ નિર્બળતાને પ્રાપ્ત થાય છે કે તેઓને સંતાનનો લાભ થતો નથી. તેથી વિચારપૂર્વક ઉપયોગી અને હલકી શિક્ષા પુસ્તકોદ્વારા કન્યાઓને જરૂર આપવી જોઈએ. અજ્ઞાન, જીવનો વેરી છે તેને દૂર કરવાને માટે સઘવા, વિધવા અને કુંવારી-કા સર્વને કેળવણી આપો, જેથી સઘવા સુધરી પોતાનો ગૃહસંસાર સુધારે અને કન્યા સુધરી ભવિષ્યની સુશીલ માતા થાય.

તેમજ વિધવા કે જેને પતિ વિયોગનું અસહ્ય દુઃખ પડેલું છે, જેને દેરાણી-જેઠાણી ભાઈ-બોબ્બલ વિગેરેનાં મહેણુંઠોણું ખાવાં પડે છે વિગેરે અનેક દુઃખ સહન કરવાં પડે છે. અજ્ઞાનથી વિધવાઓને ઘણું દુઃખ માલમ પડે છે, જો સુજ્ઞાન હોય તો સઘવા કરતાં પણ અધીક સુખને ભોગવી શકે છે, તેથી વિધવાનું દુઃખ દૂર કરવા માટે એનો સુમતિરૂપી સખી સાથે સંબંધ કરાવો, કારણકે સુમતિ સુખી સાથે નિમગ્ન થઈ રહે ત્યારે ક્ષણિક પતિવિયોગનું દુઃખ યાદ આવતું નથી અને સદા અલૌકિક આનંદમાં રહે છે, માટે ખાસ કરીને વિધવા બહેનોને સુશિક્ષા આપવી જોઈએ કે જેથી તેઓ એક નિરૂપયોગી નિર્માલ્ય સમાન ન રહે. જીવનનો સદુપયોગ અર્થાત્ પરોપકાર કરી પોતાનું જીવન સુધારે અને આખી જૈન જાતિને એક આદર્શરૂપ આદરણીય થાય.

સુશિક્ષાનો પ્રચાર કરવા માટે ગામો ગામ જૈન કન્યાશાળા, દરેક પ્રાંતમાં શ્રાવિકાશ્રમ તેમજ દિંદુસ્થાનનું એક મોટું શ્રાવિકાશ્રમ ઉઘાડવું જોઈએ, કે જેથી જૈન કન્યાશાળામાં કન્યાઓ કેળવણી લઈને ધર્મધારિણી, નીતિમાન, સુશીલ માતા અને યોગ્ય ગૃહિણી પેદા થાય, તેમજ પ્રાંત-પ્રાંતમાં આશ્રમોમાં સઘવાઓ પણ સુશિક્ષા પ્રાપ્ત કરી પોતાનો ગૃહસ્થાશ્રમ યોગ્ય રીતે ચલાવે તેમજ વિધવાઓ પણ સુશિક્ષા પ્રાપ્ત કરે અને પછી એક મોટા આશ્રમની સહાયતા લઈને ઉપદેશીકા, તથા અધ્યાપિકાની યોગ્યતાને મેળવીને પોતાપોતાના સમીપવર્તી ગામોમાં જઈને જૈનજાતિને અજ્ઞાનરૂપી નિદામાંથી જગાડે.

બંધુઓ ! આપ પોતાના નજીવા સ્વાર્થને દૂર કરી, આપને આશ્રિત જે વિધવા બહેનો હોય, તેને આશ્રમ જેવી સંસ્થાનો સંયોગ કરાવો તથા મારી બહેનો! તમે પણ

તે ખુશીથી અંગીકાર કરે તથા આવી સંસ્થાને તન, મન અને ધનથી સહાયતા આપે તોજ આપણા સમાજની ઉન્નતિ થશે. પ્રાચીન કાળમાં હજારો આર્જિકાઓ આ દિગંબર જૈન જાતિમાં વિહાર કરીને સ્ત્રીઓને સુમાર્ગ પર લગાડતી હતી-અધર્મથી બચાવતી હતી. જુઓ, અંજનાના પૂર્વભવમાં પટ્ટરાણીને પ્રતિમાનેા અવિનય કરવાથી એક આર્જિકાજીએ ધર્મે-પદેશ દ્વારા કેટલો ઉપકાર કર્યો હતો ? આજ કાલ સ્ત્રીસમાજ અજ્ઞાન અધિકારથી અંધળી થઈ રહી છે. જે વિધવા બહેનેા શિક્ષા પ્રાપ્ત કરીને, આર્જિકા ન હોય તોપણ ઉદ્ધારીન શ્રાવિકા થઈ સ્થાન સ્થાન પ્રાપ્તિ વિહાર કરી ધર્મ પ્રચાર કરે તો, આ ભૂલી પડેલી સ્ત્રી જૈન જાતિ એકાએક નિર્મળ પ્રકાશમાં આવી જાય. વિધવાઓના જન્મની સફળતા કરવી તે એનાથી વધીને બીજું કાંઈ કર્તવ્ય નથી, તેથીજ આશ્રમો દ્વારા વિધવાઓએ અવશ્ય લાભ લેવો જોઈએ. ફક્ત ધરમાં પડ્યાં પડ્યાં વાસણુ ધસવાં તથા છોકરાંરમાડવામાંજ આપણું કાર્ય ન સમજી લેવું જોઈએ.

આ દુનિયામાં સંસાર ચક્રાવવા માટે કુદરતથી પુરૂષ અને સ્ત્રીરૂપી યુગલ ગોઠવાઈ ગયું છે, પરંતુ દુનિયાના મોટા ભાગમાં આ બંને ઉચિત શક્તિવાળા અથવા અનુકુળ વિચારવાળા હોય છે, ત્યાંનાં દેશની સ્થિતિ, ઉચ્ચ વિદ્યા, કળાકૌશલ્યતા, ભરપુર ભોક્ તથા પૈસેટકે સુખી દેખાય છે. જે કે વિષયવિલાસતાના કાંજીથી તેઓના મનમાં સુખ શાંતિની માત્રા કમ હોય છે, તોપણ શિક્ષાના કારણથી તેઓની શુદ્ધિ સુમાર્ગ-કુમાર્ગ સમજવા યોગ્ય જરૂર હોય છે. ભાઈઓ ! ગાડીના બે પૈડાંમાંથી એક પૈડું સારું હોય અને એક સડેલા લાકડાનું બનાવવામાં આવ્યું હોય, તો તે ગાડી ઇચ્છિત સ્થાને જઈ શકે ખરી ? તેમજ સ્ત્રી અને પુરૂષ સંસારરૂપી

રથના બે પૈડાં છે, તેમાંથી એક સુશિક્ષિત અને એક અજ્ઞાનના સડાથી સડેલું હોય, તો સંસારરૂપી રથ ચાલી શકે ખરી ? ના, ના, અધવચમાંજ તે ભાંગી પડે છે. બંધુઓ ! યાદ રાખજો કે પુરૂષનું જ્ઞાન સ્ત્રીનેજ આધાર છે, સ્ત્રી જે સારી રીતે સુશિક્ષિત હશે, તેજ પોતાના પુત્ર પુત્રીને જન્મથી વિદ્યાના હાલડાં ગાશે અને અશિક્ષિત હશે, તો ગાળો ભાંડતાં શિખવશે, માટે સ્ત્રીને શિક્ષિત કર્યાં વિના કદી પણ આપણી સમાજની ઉન્નતિ થનાર નથી, પછી બને પુરૂષખી. એ. એલ. એલ, બી. વિગેરેની પરીક્ષા પાસ કરે, પણ તેને ધરમાં કાંઈ પણ સુખ-શાંતિ કે ધર્મનેા અનુભવ થશે નહીં. માટે એકાંત સ્થાનમાં કે ન્યાં ધણેા સોર બંકાર ન થતો હોય તથા ન્યાં આભુઆભુએ સમાગમ સારો હોય એવા સ્થાનમાં સંસ્થાઓ સ્થાપીને સધવા, વિધવા અને કન્યાને ધાર્મિક, વ્યવહારિક, કળાકૌશલ્ય, વાદ્ય વિગેરેનું જ્ઞાન આપવું જોઈએ.

ધાર્મિક જ્ઞાનમાં દેવ, શાસ્ત્ર, ગુરુનું સ્વરૂપ તથા સાત તત્ત્વનું સ્વરૂપ સારી રીતિએ જાણી શકે અને પ્રથમાનુયોગરૂપ કથા પૂરાણ, કરણાનુયોગરૂપ લોકઅલોકનું સ્વરૂપ તથા ચાર ગતિનું સ્વરૂપ આવે એવાં શાસ્ત્ર તથા ચરણાનુયોગરૂપ ગૃહસ્થી અને મુનિનું ચારિત્ર જેમાં હોય તે અને દ્રવ્યાનુયોગ કે જેમાં સાત તત્ત્વ નવ પદાર્થનું સ્વરૂપ હોય, તે શાસ્ત્રોને સારી રીતે વાંચીને સમજે એટલું તો અવશ્ય થવું જોઈએ કે જેથી ગૃહસ્થાશ્રમમાં ધર્મની પ્રવૃત્તિ રહે અને વિધવાઓ બીજાને એ માર્ગે દોરે. એની સાથે વ્યવહારિક જ્ઞાન હોય તો ધરનેા હિસાબ કીતાબ રાખે અને આવક પ્રમાણે ખર્ચાની કોશીષ કરે.

ચેલના, રાજ શ્રેણીકની સ્ત્રી પોતે સારી રીતે સુશિક્ષિત હતી, ત્યારેજ પોતાના પતિને બૌદ્ધ ધર્મમાંથી જૈન ધર્મમાં લાવી શકી.

રાજા દશરથની સ્ત્રી રાણી કૈકેયી પણ કળાકોશલ્યની વિદ્યામાં પહેલો નંબર ધરાવતી હતી, ત્યારેજ રાજા દશરથને યોગ્ય વખતે રથ હાંકવાની વિદ્યાથી બચાવ્યો અને રાજા પાસેથી વરદાન મેળવ્યું, સીતાજીએ પણ દુષ્ટ રાવણના પંજમાં પડીને પોતાના અખંડ શીલ વ્રતને દ્રઢ રાખ્યું, તે પણ એક સુશિક્ષાનોજ પ્રતાપ હતો. હાલમાં પણ શ્રીમતી એનીબીસન્ટે કેટલાં કેટલાં ભારે કામ કરી દેખાડ્યાં છે; તેમજ નાનીબહેન ગર્જીર સુરતમાં વનિતા વિશ્રામ ચલાવે છે, વિગેરે જે જે બહેનો કામ કરો રહી છે, તે સર્વ વિદ્યાદેવીનીજ મહેરબાની સમજવી, નહીં તો ધનવાન અનેક પડ્યા છે કે જેઓને વિદ્યાપર પ્રેમ નથી. તેઓના નામ પણ આપણે જાણતા નથી. આવું ઉત્તમ વિદ્યાધન તે કોઇ દહાડો નાશ થતું નથી કહ્યું છે કે—

હર્તુર્ચીતિ ન ગોચરં કિમપિ શં પુષ્ણાતિ યત્સર્વદા—
પ્યર્થમ્યઃ પ્રાતિપાદ્યામાનમનિશં પ્રાપ્નોતિ વૃદ્ધિં પરામ્ ॥
કલ્પાન્તેષ્વપિ ન પ્રયાતિં નિધનં વિદ્યાસ્વ્યમન્તર્ધનં ।
યેવાં તાન્પ્રતિ માનમુજ્જત નૃપાઃ કસ્તૈઃ સહ
સ્પર્ષતે ॥૧॥

અર્થ—ચોરને કંઈ પણ દ્રષ્ટિગોચર નહિ થનાર, અને જે હમેશાં કલ્યાણને પોષણ કરનાર, યાચકોને હમેશા આપ્યા છતાં પણ જે ધણી વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત થાય છે, કલ્પના અંતમાં પણ જેનો નાશ થતો નથી એવું વિદ્યા નામનું ગુપ્ત ધન જેઓની પાસે છે તેઓની સાથે હે રાજાઓ ! માનને છોડો, કારણકે તેઓની સાથે કોણ સ્પર્ધા કરે ? અર્થાત કોઇ નહીં. આવી રીતે જ્ઞાનવાન રાજાના ઓહાથી પણ ચઢીયાતા છે. આપણે જોઈએ છીએ કે આજથી ૧૦ વર્ષ

પહેલાં છેક અજ્ઞાન અંધકાર છવાયેલો હતો, પણ હવે કંઈ જરા ઠીક થવાં લાગ્યું છે તે જ્ઞાનથીજ છે. આવી ઉત્તમ વિદ્યા મારી સર્વ બહેનો પ્રહણ કરો અને વિવાહ વિગેરેમાં વ્યર્થ વ્યય, ન કરતાં તેવે પ્રસંગે આવી સંસ્થાને મદદ કરો. આળવિવાહને, કન્યાવિક્રયને તથા રડવા કુટવાના કુરીવાજને છોડો, ગુજરાતની બહેનોને પોતાનું જીવન સફળ કરવા માટે શ્રાવિકાશ્રમ (સુખર્ષ) માં આવવું જોઈએ અને બીજા પાસે વિદ્યા લાલ લઈને જીવનને સફળ કરવું જોઈએ. આશ્રમમાં આવવાને કોઈપણ પ્રકારનો ભય નહીં રાખવો જોઈએ. જેવી રીતે અમે રહીએ છીએ, તેવીજ રીતે તમે પણ સુખ શાંતિથી રહી શકશો. આ વાત ધ્યાનમાં રાખવાની છે કે જ્યાં સુધી સુશિક્ષા વિસ્તારવામાં નહી આવશે ત્યાં સુધી જીવનને આનંદ મળવો, મુશ્કેલ છે.

જૈન સમાજને સુશિક્ષિત કરવાને આવુર લલિતા બહેન સુજાચંદ (શ્રાવિકાશ્રમ-સુખર્ષ)

મીં રોકકેલર કહે છે કે, નિત્યક્રમ એ એક મુખ્ય સિદ્ધાંત છે અને દરેક બાબતમાં ઉંડા ઉતરી નિપુણતા મેળવવાથીજ વ્યાપારમાં ફતોહ મળે છે.

લોર્ડ રૂથકેનો એવો મત છે કે, ફતોહમંદ થવા માટે કાર્યસિદ્ધ કરવાની મહાન ફરજ સમજવી જોઈએ, અને તેની સાથે બત્સાહ, ભૂત મહેનત અને પદ્ધતિ એટલાં વાનાં હોવા જોઈએ.

સર હર્બર્ટ ટી એમ સૂચવે છે કે, પ્રત્યેક કામકાજના બંધારણની યોગ્ય વ્યવસ્થા કરવી, અને જેમ ખાવાપીવાની ફરજે યોગ્ય સમયે અદા કરવામાં આવે છે તેવીજ રીતે તેનો પણ વખતસર અમલ કરવો જોઈએ.

મીં ઓસવલ્ડસ્ટૉલ લખે છે કે, ફતોહ મેળવવા માટે શક્તિ કરતાં ચારિત્ર્ય વધારે જરૂરી છે.

लोभी और फेरियाजी ।

(एक उपदेश पूर्ण आस्थायिका)

[लेखक:—गोपीलाल गोधा—लश्कर]



य! हाय !! इस लोभने दिन दहाड़े लूट लिया। प्यारी ! तुम्हारी क्या दवा की जाय ? हाय ! आग लगे इस घड़ीको तुम्हारा सर्व नाश कर दिया। हाय ! हाय !! तुम्हें किसी दीनका न रक्खा। हाय ! यह तो पहले ही सोची जा चुकी थी जिस समय तुम्हारा व्याह हुआ था। हाय ! हाय !! तुम्हारे बापने बड़ा अनर्थ कर डाला।

सच है आदमी पर जिस समय लोभका भूत सवार होता है उस समय उसे किसी भी बातकी परवा नहीं रहती। अपने भले बुरेका विचार नहीं रहता। यहां तक कि अनर्थ करने पर भी उतारू हो जाता है।

हाय ! उस समय मैंने तेरे बापको बहुत समझाया पर उन्होंने कुछ भी नहीं सुनी। सच है, सुनते कहांसे ? वे तो उस समय लोभके इश्क पर सवार हो रहे थे। उन्हें अपने भले बुरेकी सुध तो थी ही नहीं।

हाय ! उस समय निगोड़े दलालोंने भी तो इस काममें सहायता कर अनर्थ करवा डाला। हाय ! उस समय कोई बिरादरी-वाला भी तो नहीं बोला। सच है वे बोलने भी क्यों लगे ? उनका तो पहले ही मीठा मुंह हो चुका था। प्यारी ! अब तुम्हारे लिये सिवाय भगवानकी शरण और कुछ नहीं है। अब कहां तक रोओगी, आखिर सर्व करना ही पड़ेगा।

प्रिय पाठको ! बेचारी दयामयी, चन्द्रकलाकी हालत पर शोक कर रही है। इस समय चन्द्रकलाकी उम्र कोई ग्यारह वर्षकी होगी कि एकाएक बेचारी पर बज्रका पहाड़ टूट पड़ा। बेचारी इस समय अनाथ हो गई।

हाय ! उसको धैर्य देनेवाला इस संसारमें नहीं रहा। आज इस संसारसे उसका सर्व सुखका देनेवाला उठ गया। बेचारी अबला अनाथ हुई पड़ी है। दयामयी इसी चन्द्रकलाकी अवस्था पर शोक कर रही है।

प्रिय पाठको ! इस समय आपका दिल हिलोरे ले रहा होगा कि यह एकाएकी शोक कैसा ? चन्द्रकला कौन है ? दयामयी कौन है, जो चन्द्रकलाकी अवस्था पर शोक कर रही है ? चन्द्रकला पर ऐसा कौनसा बज्र आ पड़ा। प्रियवर ! आप घबड़ाईये नहीं। धीरे २ सब भेद खुल

रतनचंद अपने कमरेमें चारपाई पड़े २ तरदुदूकी बातें सोच रहे हैं। तरह २ की तरंगे उठ रही हैं। कुबुद्धी और सुबुद्धी का द्वंद मच रहा है।

सुबुद्धी बोली—“अरे रतनचंद ! इस ढलती उम्र में ब्याह ! करके क्या करेगा ? इस जीव का ठिकाना नहीं, आज है कल नहीं। एक पल भरका भी ठीक नहीं है। अब तो तुझे इस ढलती उम्रको धर्मध्यान में बिताना चाहिये।”

कुबुद्धीने कहा—“नहीं जी ! मुझे तो ब्याह अवश्य ही करना चाहिए। चाहे कितने ही रुपये क्यों न खर्च पड़ जाय ? आखिर मेरे पीछे रोनेवाली तो रह जायगी ! धर्मध्यान तो होताही रहेगा, अभी थोड़े ही मरे जाते हैं !”

सुबुद्धी बोली—“रतनचंद ! तू ऐसे ख्याल छोड़ दे। पापमें पैर मत पटक। इससे बड़ा नुकसान पैदा होगा। कल तू इस संसारसे उठ गया तो उस बेचारी को तो सुख दैनेवाला कोई न रहेगा। आखिर वह अपने कर्मोंको ही फोड़ेगी”

कुबुद्धीने कहा—“नहीं जी ! इन थोथी बातोंमें क्या रक्खा है ? मुझे तो विवाह अवश्य ही करना चाहिए। क्या मालुम इस ढलती उम्रमें ही कोई सन्तानकी प्राप्ति हो जाय ?”

सुबुद्धी बोली—“अरे रतनचंद ! इस फांसी ! को तू अपने गलेमें मत बांध।

देख ! तेरा यह सत्यानाश कर देगी। तू, जो तेरे पास धन है, विद्यादानादि तथा सुयोग्य कार्य में लगा दे, जिससे तेरा भला हो और अगर तू अपनी लौकिक रीति अनुसार अपने कुटुंबका नाम चलाना चाहता है तो कोई सुयोग्य लड़का गोद ले, जिससे तेरा नाम चले। और अपनी इस ढलती उम्रको तो धर्मध्यानादिमें ही बिता, जिससे तेरा कल्याण होवै और यह लोक और परलोक दौनों सुधरें। मानले अगर तैने विवाह भी कर लिया। और अब तू चलनेके करीब के नगाड़े पर है। और तू चल बसा तो वह तो किसी न किसी तरह अपना निर्वाह करैहीगी। और अगर कुचलनी निकल गई तो तेरे जन्म जन्मान्तरको कलंक लग जायगा। इससे तेरा भला इसीमें है कि तू ऐसे ख्यालातों को छोड़ दे।”

कुबुद्धी बोली—“नहीं जी ! जब मैं उसे समझा दूंगा तो वह कुचलनी कैसे होगी ? उसके पास मेरा बहुतसा धन रहैगा, जिससे वह अपनी उम्र सुखसे बिता सकेगी। बिना स्त्रीके मुझे कोई पूछता भी तो नहीं है और न घर ही शोभा देता है। रातको अकेलेही पड़े रहौ। कोई दुःख सुखकी बात सुननेवाला नहीं है। इसलिये मुझे अवश्यही विवाह करना चाहिए और इसके लिये कोई लडकीकी तलाश करवानी चाहिये। पर यह काम

सिवाय लोढामलके और किसीसे न हो सकेगा। क्योंकि उसकी तलाश में बहुत सी लड़कियें रहती हैं। और रातदिन उसे सिवाय इसके और कोई काम भी नहीं है। इसलिये यही अच्छा है कि सवेरे लोढामलको बुला लैना चाहिए ”।

प्रिय पाठको ! रतनचंदके दिलमें बहुत समय तक कुबुद्धी और सुबुद्धीका द्वंद मचा रहा। पर अखीरमें कुबुद्धीहीकी जित रही। सच है “आदमी पर जितना जल्दी बुरी बातका असर पड़ता है उतना जल्दी अच्छीका नहीं”। आखिर रतनचंदने पाप करनेमें कमर बांध ही ली और सवेरे ही अपने आदमीको लोढामलको बुलाने भेज ही दिया। हाय ! उसे किसीने नहीं समझाया पर उसने अपना मतलब तो किसीसे कहा ही न था। समझाता कौन और दूसरे वह एक धनवान आदमी था। जो कोई उसे समझाता वह पहले उल्लू बनता। आखिर उसने अपने मनमें विवाहकी दानही ली। देखिये क्या होता है?

✱ ✱ ✱ ✱ ✱ ✱

बड़े दुःखकी बात है। चन्द्रकला भी अब व्याहने योग्य हो गई। अब इसके व्याहके वास्ते रुपये चाहिए। पहले स्त्रीका कारज करके चुके थे। अब व्याह करो। खैर, करना ही पड़ेगा। अब कोई वरकी तलाश करनी चाहिए। वर हो चाहे जितना बड़ा पर धनवान होना चाहिए, ताकि वह कुछ दे सके ! और घर भी

ऐसा देखना चाहिये कि सिवाय उसके घरमें दूसरी कोई न होवे ताकि मेरी बेटी हीका सबके ऊपर हुकम चले, और फिर जिसमें अपनी भी दाल गल सके। अपने पास भी बहुतसा धन आ सके। पांचों उंगलिया घीमें ही रहें। अबके अपने पाससे रुपया भी बहुत उठ गया है। कुछ रुपया पैसा हाथ लग जाय तो अपना भी बिगड़ा हुआ खेल बन जाय। इसलिये कोई ऐसा ही धनवान वर तलाश करना चाहिए। पर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं पंच न सुन लें, नहीं तो बिरादरीमें न रहने देवेंगे। नहीं जी ! इसका कुछ ख्याल न करना चाहिए। क्योंकि बड़े आदमीके होनेसे कोई भी न बोलैगा। और जिसमें एक रोज़ उनको भी मिठाई जिमा देवेंगे। वर बड़ा आदमी तथा धनवान होनेसे लड़कीको भी सुख मिलेगा और अपनी भी खूब पटैगी। अच्छा, तो अब लोढामलके पास चलना चाहिए और उससे अपनी सारी रामकहानी कहनी चाहिए। क्योंकि उसकी तलाशमें कई लड़के होंगे।

ऐसा विचार कर किसनचंद लोढामलके घर पर पहुंचा और आवाज़ दी—“लोढामलजी”, “ओ लोढामलजी” “लोढामलजी हैं क्या ?”

लोढामलः—कौन है ! भाई ?

किसनचंदः—अजी मैं हूं किसनचंद।

लोढामलः—ओहो ! आइये सेठ साहब ! आज आपने दासके घर पर कैसे तकलीफ की ?

पाठक ! अभी तक आप लोढामलसे अपरिचित हैं और यह सोचते होंगे कि यह लोढामल कौन है । यह एक कन्या-विक्रयके दलाल है । यह इसीमें खाते कमाते हैं । एक बड़े चालबाज, धूर्त और मतलबी यार हैं । आप यहां ऐसा कहेंगे कि विरादरीवाले इनको ऐसा करनेसे दंड क्यों नहीं देते ? सो इसकी वजह यह है कि यह, जो विरादरीके मुखिया पंच हैं, उनकी गांडगुलामी किया करते हैं और इसी लिये कोई भी इनके विरुद्ध होता नहीं । कहा भी है कि “खुशामदसे देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं ।”

किसनचंदः—“आपकी कृपासे सब कुशल मंगल है । मैं आपको एक तकलीफ दैने आया हूं और वह यह है कि आप जानते ही हैं कि चन्द्रकला अब विवाहने योग्य हो गई है । सो मुझे उसका दिन रात फिकर लगा रहता है । आप जानते ही हैं कि जबसे चन्द्रकलाकी मा मरी है तबसे क्या दशा हो गई है । सो अब मुझे उसके वांस्ते किसी लड़केकी तलाशी है ।”

लोढामलः—“अच्छा, आप यह बता-हये कि आप लड़का कैसा चाहते हैं ।”

किसनचंदः—“उम्रकी तो कोई परवा नहीं, पर धनवान होना चाहिए ताकि वह कुछ दे सके !”

लोढामलः—“अच्छा, आप यह बतलाइये कि आप कितना रुपया चाहते हैं और उसमेंसे मुझे कितना देवेंगे ?”

किसनचंदः—“अगर ज्यादा नहीं तो चार, पांच हजार तो जरूर ही दे सके और उसमेंसे सौ पचास आपको भी भेट किये जावेंगे ।”

लोढामलः—“सेठ साहब ! सौ पचास तो बहुत कम है । खैर आप ज्यादा नहीं आप मुझे दोसौ रुपये ही दे दैना । देखिये, मैं आपका काम भी कितना करूंगा ।”

इन दौनोंमें यह बात हो ही रही थी कि बाहरसे आवाज़ आई—“लोढामलजी हैं क्या ?”

लोढामलः—“अरे भाई कौन है ?”

आवाज़ः—“अजी मैं हूं सेठ रतनचंद-जीका आदमी ।”

लोढामलः—“कहो क्या काम है ?”

आदमीः—“आपको सेठ साहबने याद किया है ।”

लोढामलः—“अच्छा, सेठ साहबसे मेरा जुहार कहना और कहना कि आते हैं ।”

ऐसा सुनकर आदमी तो अपने घर गया । इधर किसनचंद भी विदा हुए । अब लोढामल सोचने लगा । आज क्या बात है जो सेठजीने मुझे बुलाया है ?

खैर कुछ काम होगा। अब तो किसनचंदके वास्ते कोई लड़का तलाश करना चाहिए और अगर कोई उसके मनलायक मिल गया तो फिर अपना तो क्या पूरे पौवारह पच्चीस होंगे। अब अपने दिन कुछ सुलझते दिखाते हैं। आज छः महीनेसे खाली बैठे हुए थे। चलो, अब थोड़े ही दिनोंमें अपनी खूब गहरी छनैगी।

* * * * *

सेठ रतनचंद अपने कमरेमें बैठे हुए कुछ सोच रहे थे कि उनकी नजर एकाकी लोढ़ामलपर पड़ी। देखते ही बोल उठे—“आईये लोढ़ामलजी, अबके तो आपने बहूत दिनोंमें दर्शन दिये कहिये, तबियत तो अच्छी तरह है।”

लोढ़ामल:—“सेठ साहबकी कृपासे सब अच्छी तरह है। कहिये अबके आपने दासको कैसे याद किया। कोई नई खबर तो नहीं है?”

रतनचंद:—“कोई नई खबर तो नहीं है। पर आपको एक कामके लिये बुलाया है। और वह यह है कि मेरा इरादा दूसरा विवाह करनेका है। क्योंकि घरमें कोई औरत नहीं है और बिना स्त्रियोंके घर अच्छा भी नहीं लगता, इससे आपको तकलीफ दीनी है कि कोई लड़की आपकी तलाशमें हो तो हमारी सगाई पक्की कर दो। रुपये चाहे जितने खर्च पड़ जाय।”

लोढ़ामल:—(थोड़ी देर चुप होकर विचारने लगा, मौका तो अच्छा मिला है।

किसनचंदने भी चन्द्रकलाके वास्ते लड़केके लिये मुझसे कहा था। सो अब मेरा मतलब ठीक निकलता है) “सेठ साहब! लड़की तो तलाशमें है और वह खूबसूरतभी अच्छी है। पर उसका बाप रुपये ज्यादा मांगता है।”

रतनचंद:—“मैं आपसे कह तो चुका कि रुपये चाहे जितने खर्च पड़ जाय पर लड़की अच्छी होनी चाहिए और जहां तक जरूरी हो जाय सो अच्छा।”

लोढ़ामल:—“अच्छा! कि सनचंदजीकी लड़की है और वह पांच हजार मांगते हैं। कहिये! आप चाहते हैं या नहीं?”

रतनचंद:—“बहुत ठीक! क्या कहना? पक्की कर आओ।”

लोढ़ामल ऐसा सुनकर वहांसे विदा हुआ और सीधा किसनचंदके घरपर पहुंच और आवाज दी, किसनचंदजी है क्या?

किसनचंद:—“कौन है लोढ़ामलजी! आओ।”

लोढ़ामल:—“हां मैं हूं, और आपको एक खुशखबरी लाया हूं।”

किसनचंद:—कहिये क्या खबर है?”

लोढ़ामल:—“कहिये आप सेठ रतनचंदजीके साथ चन्द्रकलाको ब्याहना चाहते हैं या नहीं? आपका मनोरथ सब पूरा हो जायगा।”

किसनचंद:—“क्या सेठ रतनचंदजी स्वयं अपना व्याह करना चाहते हैं? (कुछ

सोच कर लड़का तो बड़ा है और उम्रमें भी कोई ५०-५५ वर्षका होगा। पर इससे कोई अपनेको मतलब नहीं! अपने पास तो रुपये पूरे आवेंगे, अच्छी बात है।) अच्छा, पक्की कर दो पर यह तो बताओ रुपये कितने देवेंगे?"

लोढ़ामलः—“आपके मुंह मांगे दाम। मैं आपसे यह भी कहता हूं कि आपकी लड़की वहां सुख पावेंगी।”

किसनचंदः—“अच्छा, तो पक्की कर आओ। पर यह बात अभी गुप्त रखना, किसीको मालूम न होवै।

लोढ़ामलः—“नहीं जी! आप कैसी बातें करते हैं? क्या मैं नासमझ हूं?”

प्रिय पाठको! दौनों तरफसे सगाई पक्की हो गई। दौनों तरफ ब्याहकी तैयारियां होने लगीं। लोढ़ामल भी अपनी मूंछोपर ताव दैने लगे और कहने लगे कि बिना कुछ तकलीफ के अपना काम बन गया। यह सब बातें चुपचाप ही होने लगी थी पर दबी हुई रहती कब तक? आखिरको एक दिन चौड़ेमें आही गई पर सिर्फ इतनी बात कि किसनचंदकी लड़की चन्द्रकलाका विवाह होनेवाला है। चन्द्रकला इस बातको सुनकर हंसी, खुशीके साथ दिन बिताने लगी। जब उसकी साथकी सखी सहेलियां उससे हंसी करतीं तो वह नीचे को मुख कर लेती और खुशीके साथ रहती। पर उस बिचारी भोली लड़कीको इस बातकी क्या मालूम थी कि यह हंसी खुशी फिरना नहीं है, बल्कि रोना

है। उसके बापने उसके लिये जन्मभरको कांटें खड़े कर दिये हैं। हाय! जावै इनका सत्यानाश जो लोभके पीछे अपनी बेटीके गलेमें फांसी डालना चाहता है। जानता पूछता अपनी बेटीको कुएमें ढकेलै देता है। हाय! चन्द्रकला! तेरी तकदीरने बड़ा धोका दिया। हाय! धिक्कार तेरे बापको जो अपनी बेटीका तथा अपना भला बुरा नहीं सोचता। हाय! अभी तो कुछ भी नहीं बिगड़ा—देखो कोई इनको समझाता है या नहीं। देखो क्या होता है? सच है “जो होना है सो होकर रहैगा।”

प्रिय पाठको! अबसे हम किसनचंदको लोभीके नामसे लिखेंगे। और देखिये! रतनचंदकी भी क्या बुद्धी अष्ट हुई है कि वह ऐसा फैय्याजी बना कि अनर्थ करने तक पर भी उतारू हो गया। और यह न सोची कि मैं अपने धनको परोपकारमें लगाऊं, जिससे मेरा कल्याण हो। हाय! धिक्कार है एसे रुपयेवालेको जो धर्मकार्य छोड़कर अनर्थ करनेपर उतारू हो जाता है। पाठक! अबसे हम रतनचंदको भी फैय्याजीके नामसे लिखेंगे। और देखो लोढ़ामलको! जो अनर्थ करर पैसा कमाता है और अपनी उदरपूर्णा करता है। न मालूम इसका भी क्या हाल होगा? जो जो हाल होगा पाठकोंको शनैः मालूम पड़ जायगा। अभी हम ऐसी बातोंमें अपने पाठकोंका समय नष्ट नहीं करना चाहते। हम अपने किस्सेका सिलसिला छेडते हैं। (शेषमग्रे।)

श्री चंद्रगिरि पर्वत



सोर राज्यान्तर्गत हासन जिलेमें एम्. एस्. एम्. रेलवेके आरसीकेरी स्टेशनसे ४२ माइलपर 'श्रवणबेलगुल' नामक एक बहुत सुप्रसिद्ध धार्मिक स्थान चिरकालसे विद्यमान है। इसके उत्तरओर चन्द्रगिरि तथा दक्षिणओर विन्ध्यगिरि पर्वत हैं। दोनों पर्वतोंके बीचमें श्रवणबेलगुल ग्राम वसाया गया है। 'श्रवणबेलगुल' शब्द हल्लीकन्नड (प्राचीन कर्नाटकी) भाषाका है। संस्कृतमें इस शब्दका अनुवाद 'धवलसरोवर' होता है। इस ग्रामके नाममें सरोवर शब्द संयोजित करनेका कारण यह है कि, यहां एक भूदेवीमंगलादर्शकल्याणी नाम्नी सरसी है। यह बड़ी लम्बी चौड़ी है। समुद्रकीनाई इसमें अथाह जल है। इसका जल कभी सूखता नहीं। जब देशमें अवर्षण होता है तो तृषाशांतिके लिये बहुत दूर दूरसे लोग आकर इसके आश्रित होते हैं। इसको श्रवणबेलगुलका कटिभूषण समझना चाहिए। इस सरोवरके विशेष प्रसिद्धिगत होनेसे ही माहाराज अशोकने इस ग्रामके नाममेंभी 'सरोवर' शब्द संवलित कर दिया।

यह स्थान चन्द्रायपट्टण तालुकमें १२.५१ उत्तर अक्षांश और ७६.३३ उत्तर रेखांशपर है। श्रवणबेलगुलमें जैनाचार्योंका मठ, ताड़-पत्रांकित अलभ्य जैनग्रन्थ और अनेक प्राचीन जैनमन्दिर हैं। यह स्थान जैन ब्राह्मणोंकी तपोभूमि है तथा इस स्थानको बड़े बड़े जैनाचार्यों और जैन-ग्रंथ-कर्ताओंने विभूषित किया है। विन्ध्यगिरिकी उंचास भूपृष्ठसे ३३४७ फूट है और चन्द्रगिरि पर्वतकी उंचास ३०५२ फूट है। कन्नड भाषामें विन्ध्यगिरिको दोड्डुबेट्ट और चन्द्रगिरिको चिकबेट्ट कहते हैं। विन्ध्य और चन्द्रगिरिकी सार्थकता लोगोंने इस प्रकार की है:—विम् (आत्मा) ध्या (ध्यान) अर्थात् आत्मध्यान करनेका स्थान। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि, इस पर्वतपर अनेक ऋषि मुनियोंने आत्मध्यान कर अपना जीवन उत्सर्ग किया है। इसलिये इसका नाम विन्ध्यपर्वत रक्खा गया। दूसरे पर्वतपर चन्द्रगुप्त मुनिने अपने गुरु भद्रबाहु स्वामीकी चरण-पादुकाकी निरन्तर सेवा कर ऐहिक लीला परिसमाप्त की है इसलिये इनके चिरस्मरणार्थही इस पर्वतके नाममें 'चन्द्र' जोड़ दिया गया है। जिस विन्ध्यगिरि पर्वतपर श्री १००८ बाहुबलि-स्वामीकी सुरम्य मूर्ति लगभग ७० फूट उंची है, इसका सविस्तर परिचय हम अगली किसी किरणमें करायेंगे। सम्प्रति हम चंद्रगिरिका परिचय पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करते हैं।

चंद्रगिरि एक बहुतही रमणीय पर्वत है। इसपर चढ़नेमें कुछ भी कठिनाई नहीं होती। भारतीय आदर्शभूत शिल्पकलासे रचित अनेक जैन मंदिर, विकसितकमल-सुशोभित सुन्दर सरोवर तथा अध्यात्मिक-चिंतनोपयुक्त सुरम्य स्थान इसकी विशेष रमणीयताको परिवर्द्धित कर रहे हैं। इसका सृष्टिसौंदर्य दर्शकोंके चित्तको बलात् आकर्षित करने लग जाता है। इसके गगन-चुम्बित शिखरकी छटातो देखतेही बनती है।

दक्षिणद्वारसे ढाई सौ सीढ़ी चढ़कर दो राहें मिलती हैं, एक तो भद्रबाहुकी गुफाकी ओर जाती है और दुसरी प्राकारकी ओर जाती है। वहांपर निम्न लिखित मंदिर है। भद्रबाहुकी गुफा पश्चिमाभिमुखी है। उसमें घुसनेपर पूरबकी ओर भद्रबाहुस्वामीकी दो विशाल चरण पादुका मिलती है। गुफा बहुतही एकान्त स्थानमें है। योगियोंके अध्यात्म विचारके लिये यह गुफा बहुतही उपयुक्त है। इसमें प्रविष्ट होतेके साथ श्री भद्रबाहुस्वामीकी तपस्या, चन्द्रगुप्तका संघ छोडके श्री १०८ गुरु श्री भद्रबाहुजीके साथ रहना, प्राचीनकालकी पुराणकारोंसे वर्णित हुई कर्नाटककी सुभिक्षता, आध्यात्मविचार और जैनियोंकी प्राचीन धार्मिक उन्नतिका चित्र दर्शकोंके चित्तपर सहसा खिंच जाता है।

इसी गुफामें श्री १०८ भद्रबाहुस्वामीने मुनि-संघोंको चोल पांड्य देशमें भेजकर

आप कठिन तपस्याकर समाधि-मरणसहित इस असार संसारको छोड़ा और यहींपर अपने गुरु भद्रबाहुस्वामीके मुक्त होनेपर चन्द्रगुप्त मुनिने जैन धर्मकी चिरस्थायी नींव डालकर जैन महत्वका प्राचीनता-सूचक एक प्राकाम्य प्रशस्त प्रासाद बनाया। भाइयों ! यह ऐसा स्थान है कि, यहांके दृश्य देखनेपर यही मालूम होता है कि, आज भी वही जैनधर्मका विस्तृत क्षेत्र है, स्याद्वाददेवीकी वही शुद्ध धर्मोपदेशकी ध्वनि गूंज रही है तथा 'अहिंसा परमो धर्मः'की भी वही शुभ्रवैजयंती फहरा रही है। ठीक है अपनी सम्पत्ति, अपनी जमीन्दारी तथा अपने धर्मकी सुरक्षित मूलभित्ति देखकर भला कौन नहीं प्रसन्न होगा ?

प्रिय पाठको ! अन्तिम श्रुतकेवली श्री १०८ भद्रबाहुस्वामी और उनके शिष्य मुनि चंद्रगुप्तके संन्यस्त मरणके स्थानको देख कर स्वधर्माभिमान उत्तेजित होकर प्रज्वलित हो आता है और ऐतिहासिक-घटनाके परिचय होनेसे एक क्षण भी वहांसे हटनेका जी नहीं चहता। अस्तु ! उल्लिखित गुफाके चारोंतरफ कई बड़ी बड़ी शिलाएं हैं। इनपर अनेक जैनमुनियोंने संन्यस्त-मरण किया है। इस बातकी शाक्षिता उन शिलाओंपरके अनेक चरणचिन्ह ही काफी है।

इस गुफाके दर्शन करनेके बाद दूसरी राहसे प्राकार [चहार दिवाली] की ओर

आनेपर एक छोटासा रमणीय तालाव मिलता है। इसका स्वच्छ जल और अभरानुरंजित विकसित कमल इसकी शोभा दूनी बढ़ा रहे हैं। यात्रि-गण इसमें अष्टक धोकर दर्शन करने जाते हैं। पर्वतके मंदिरोंके चारों तरफसे किलेकीसी चहारदिवाली दौड़ायी गयी है। दक्षिण द्वारसे इस प्राकारमें घुसनेपर अनेक मंदिरोंका दर्शन होकर अंतःकरण आनंदित हो जाता है। प्रथम ही मानस्तंभ तथा इसके समीप मैसोर-नरेश-द्वारा सू-संरक्षित और प्रस्तर प्राचीरावगुण्ठित एक शिलालेख है, जो आजतक भारतवासीयोंको यह बता रहा है कि जब बारह वर्षका दुर्भिक्ष पड़ा था तो भद्रबाहुस्वामी और इनके शिष्य चंद्रगुप्तने मुनिसंधोंके साथ रह कर समाधि-मरणसहित इसी पर्वतपर अपनी विनश्वर देहको छोड़ा है। यह शिलालेख बहुत दिनोंतक किसीसे परिचित नहीं था और लोग इसके महत्वसे बहुत दिनोंतक वञ्चित रहें; किन्तु पुरातत्ववेत्ता मि. ल्युईस राईस साहेबने अपरिमेय परिश्रम कर इसको प्रकाशित कर भारतवासियोंको और विशेषकर जैनियोंको एक प्राचीनतम ऐतिहासिक घटनासे परिचय कराया।

मंदिरोंका क्रम।

१—उपर्युक्त प्राचीन शिला-लेखके उत्तर भागमें श्री १००८ पार्श्वनाथ तीर्थंकरका पूर्वाभिमुख एक विशाल चैत्यालय है।

इसमें एक अन्तर्मन्दिर तथा शिला-लेख-सहित एक सभा-मण्डप है। इस मंदिरमें श्री १००८ पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी लगभग ढाई पुरुष प्रमाणकी एक खड़ी सप्त फणा-मण्डपमण्डित मनोज्ञ कृष्णवर्णकी मूर्ति है। इस मंदिरके सामने एक विस्तृत चबूतरेके साथ ऊंचा मानस्तंभ है।

चंद्रगुप्त वस्ती (मंदिर)।

२-३. इस मन्दिरके उत्तर तरफ पासहीमें महाराज अशोकद्वारानिर्मित चंद्रगुप्त वस्ती (चैत्यालय) है। यह वस्ती बहुत विस्तृत होनेकी वजहसे अन्धकारमय है। इसीलिये कनाडमें लोग इस 'कत्तलवस्ती' भी कहते हैं। इस वस्तीमें दो दालान हैं। इन दोनों दालानोंमेंभी प्रतिमा विराजमान की गई है। ऊपरका दालान बहुत लम्बा चौड़ा है। इसमें बीस खंभे लगे हुए हैं। भीतरका कुछ भाग प्राचीन शिल्पकलाका नमूना दिखा रहा है। अन्तर्मंदिरमें सिंहासनपर श्री १००८ भगवान् आदिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके पीछेका भामण्डल आजभी प्राचीन शिल्पकलाका आदर्श हो रहा है। प्रतिमाके आगे यक्ष और यक्षिणीकी बड़ीही मनोज्ञ मूर्ति है।

नीचेके दालानका मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। इस मन्दिरके तीन भाग हैं। मध्य भागमें कायोत्सर्गस्थ श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी एक प्रतिमा है। इसके दक्षिण ओरमें पञ्चावती

देवीकी मूर्ति, सामने धरणेन्द्र यक्ष, वाम-भागमें कुष्मांडिनि देवीकी मूर्ति और सामने सर्वाण्डय यक्ष हैं। इस त्रैविभागिक वस्तीके आसपासमें दोनों तरफके अत्यन्त मसृण प्रस्तरपट्टपर पैतालिस पैतालिस ऐतिहासिक चित्र खुदे हुए हैं। इन चित्रोंसे यह मालूम होता है कि, ये श्री १०८ भद्रबाहुस्वामी और महाराज चंद्रगुप्तके समयके शिल्पकला-संबंधी चित्र हैं; किन्तु अभी हमे इन चित्रोंका यथार्थ भाव नहीं ज्ञात हुआ है। मन्दिरका बाह्य दृश्य और शिखर पुरानी द्राविडी-पद्धतिसे बना है। मन्दिरके ऊपरके भागमें छोटे छोटे सिंह खुदे हुए हैं।

४—प्राकारके नैऋत्य कोणमें पूर्वाभिमुखका एक मन्दिर है। इसमें लगभग डेढ़ पुरुष ऊंची एक कायोत्सर्गस्थ सुरम्य श्री १००८ शान्तिनाथजीकी प्रतिमा है। इसके आगे एक मानस्तंभ है। इसके बगलमें एक धर्मशाला है, जिसमें यात्रिगण ठहरा करते हैं और पूजाकी सामग्रीभी यहींपर सुसम्पन्न करते हैं। इसके पासहीमें श्वेत चम्पकवृक्षके नीचे लगभग डेढ़ पुरुष ऊंची एक बाहुबली स्वामीकी खण्डित प्रतिमा है। कहा जाता है कि, सांगोपमं सुसज्जित नहीं होनेसे इसकी स्थापना नहीं की गयी।

५—६—वायव्य कोणमें पूर्वाभिमुख दो जिनमन्दिर हैं। एक मन्दिरमें श्री १००८ सुपार्श्वनाथजीकी प्रतिमा विराज-

मान है और प्रतिमाके दोनों ओरसे दो इन्द्र चँवर ढुला रहे हैं। दूसरेमें श्री १००८ चन्द्रप्रभु तीर्थंकरकी प्रतिमा है। बाह्य भागमें यहां यक्ष और यक्षिणीकी मूर्तियां हैं।

नंबर ४-५-६ वाले मन्दिरोंके सामने चारोंतरफसे खुले हुए कई छोटे छोटे मन्दिर हैं। उनमें बहुतसे शिलालेख खुदे हुए रक्षापूर्वक रखे गये हैं। इन शिलालेखोंमें प्राचीन जैनाचार्योंके महत्वसूचक कई लेख हैं।

७—नंबर ९—६ वाली वस्तीके सामने चामुण्डरायकी स्थापित एक अत्यन्त रमणीय भारतीय शिल्पकलाकी अत्युच्च प्रतिष्ठा रखनेवाली वस्ती है। इसमें श्री १००८ नेमिनाथ तीर्थंकरकी मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके दोनों बगलमें दो इन्द्र चँवर ढुला रहे हैं। इन्द्रोंकी देहपर आभूषण तथा वस्त्रादि इस कलाचातुरीसे खुदे हुए हैं कि, इनके सामने सच्चे गहने और कपड़े भी फीके पड़ जाते हैं। पीछेका भामण्डल भी एक बड़े चिकने कृष्ण प्रस्तरपर अंकित है। यह शिल्पीय उत्कृष्टताका नमूना क्षणक्षण दगोचर कराता है। इसके पार्श्वमें यक्ष-यक्षिणीकी प्रतिमा विराजमान है। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा श्रीमान् १०८ नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ति द्वारा की गयी है।

इस मन्दिरका सभा-मण्डप बहुत बड़ा है। इसके ऊपरका भाग (कोठा) चामु-

ण्डरायके लडकोंने बनवाया है। ऊपरके मन्दिरमें श्री १००८ पार्श्वनाथकी प्रतिमाभी चामुण्डरायके पुत्रोंने ही बिराजमान कराई है। लोग कहते हैं कि, पिताके सरणार्थ ही इस मन्दिरकी स्थापना इन्होंने की है। इसका समय लगभग ई. स. ९९५ है। दर्शनके लिये तथा प्राचीन जैन-शिल्पसाहित्यका नमूना बतलानेके लिये इस मन्दिरका चित्र भी इसी किरणमें हमने प्रकाशित किया है। मन्दिरका बाह्य दृश्य भी प्राचीन चित्रकलाकी अच्छी छटा बता रहा है।

कहा जाता है कि, इसी महाराज चामुण्डरायने विन्ध्यर्षवतपर श्री १००८ बाहुबली स्वामीकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा भगवन्नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ति-द्वारा की है। श्री १००८ बाहुबली स्वामीकी प्रतिमा उत्तराभिमुखी और लगभग ७० फीट ऊंची है। प्रतिमाकी शिल्पकलाकी घटना इतनी अपूर्व और मनोहर है कि, हजारों-बार प्रतिमाका दर्शन करने पर भी नेत्रकी अनिमेष-दर्शनेच्छा नहीं तृप्त होती। प्रतिमाका विशाल स्वरूप, मधुर लावण्य, शिल्पकारीगरीकी सांगोपांग पूर्णता और परमशांत गंभीर ध्यान दर्शकोंके हृदयपर बहुत ही असर करते है। कहा जाता है कि दुनियामें जो आज बड़े-बड़े तीन मूर्तियां विद्यमान हैं; उन सबोंमें यहांकीसी मूर्ति अन्यत्र कहीं भी नहीं है। इस विशाल प्रतिमाके दोनों तरफ चरणके

नजदीक दो शिला-लेख पत्थरपर खुदे हुए हैं। वे शिलालेख मराठी और कन्नड भाषामें; तथा—देवनागरी और कन्नड लिपिमें हैं।

श्री चामुण्डराजें करवीयलें।

अर्थात्—इसका निर्माण चामुण्डराजने करवाया है। दूसरा शिलालेख:—

श्री गंगाराजें चुत्तलें करवीयलें।

जिसका अर्थ—महाराज गंगाराजने इधरका चैत्यालय बनवाया है, ऐसा है। यह गंगकुलोत्पन्न परम जैनधर्माभिमानी महाराज गंगाराज, चामुण्डराजके दोसौ बरस पीछे हुए हैं, ऐसा ज्ञात होता है।

८—नंबर ७ के मन्दिरके पासहीमें श्री १००८ आदिनाथ तीर्थकरका मन्दिर है। इसमें सिंहासनपर श्री १००८ आदिनाथ तीर्थकरकी मूर्ति तथा सव्य और वाम भागमें चमर लिये हुए इंद्रकी दो प्रतिमा स्थापित है। दोनों इंद्रोंके आसपासमें यक्ष और यक्षिणीकी मनोज्ञ मूर्ति विद्यमान है। इस पूर्वाभिमुख मंदिरको 'शासन वस्ती' भी कहते हैं।

९—उपरिनिर्दिष्ट मंदिरके सामने दाक्षिणाभिमुखी 'मज्जीगण' नामकी वस्ती है। इसमें भी यक्ष-यक्षिणीके साथ श्री १००८ अनंतनाथ तीर्थकरकी परम गंभीर और शांतध्यानकी मूर्ति है।

१०—यह 'एरडूकट्टे' नामक उत्तराभिमुखका चैत्यालय है। इसमें यक्ष यक्षिणी-तथा इंद्र-इंद्राणीके साथ श्री १००८ आदिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा है।

११—उपर्युक्त मंदिरके पार्श्वहीमें 'सती-गंधर्वण' नामक उत्तराभिमुखी वस्ती है; जिसमें श्री. १००८ नेमिनाथ स्वामीकी एक बड़ी मनोज्ञ प्रतिमा है।

१२—यह 'गोमटेश्वर स्वामी' नामक वस्ती उपर्युक्त वस्तीकी दाहिनी ओर है। इसमें श्री १००८ बाहुबली स्वामीकी प्रतिमा यक्ष-यक्षिणीके साथ विराजमान हैं।

१३—यह अन्तिम उत्तराभिमुख मन्दिर बिल्कुल ईशान कोणमें है। इसमें श्री १००८ शान्तिनाथ स्वामीकी सुन्दर मूर्ति है।

श्री १०८ भद्रबाहुस्वामीकी गुंफासे लेकर चंद्रगिरिपर्वततक सब मिलकर १५ मन्दिर हैं। बीच बीचमें प्रबंधके साथ छोटेसे पाषाणके चबूतरेपर स्थापित किये हुए 'मल्लिषेण प्रशस्ति' आदि लगभग १०० शिलालेख बड़े ही महत्वके हैं।

प्राकारपरिवेष्टित इस चंद्रगिरिपर्वतके ईशान कोणसे 'जिननाथपुरी' को जानेका एक मार्ग है। जिननाथपुरीमें प्रवेश करनेके पहले ही एक सुरम्य सरोवर मिलता है। इसके तटपर श्री १००८ पार्श्वनाथ भगवानके उत्तराभिमुख दो मन्दिर हैं। जिननाथपुरीमें प्राचीन द्राविडीयशिल्पकलाकी सर्व सुंदर समृद्धि-शाली

श्री १००८ महावीरस्वामीका एक मन्दिर है। किन्तु शोक है कि, यह मन्दिर बहुतही जीर्णवस्थामें है। तीर्थ-संरक्षकोंको इसकी ओर ध्यान देना चाहिए।

प्रिय पाठक महोदयों! यहां थोड़ासा चंद्रगिरिका दृश्य आपलोगोंके सम्मुख प्रदर्शित किया। समयानुसार इसका और विशेष परिचय हम देनेका प्रयत्न करेंगे। ('जैन सिद्धांत भास्कर' किरण २-३से उद्धृत)

सद् उपदेशरूपी संवाद.

(लेखक:—पुनशी अरजुन शाह-धुणीआ)

पु३५—मा! मा! आ वपते, आ व्याधथी ज्यीश जेवुं देजातुं नथी! भांड-गीजे डेटलुं लयंकर ३५ पडडेलुं छे?

[वधवाभाध—हा, तारी व्याधि जेवुं सयवे छे अइं! तने थती पीडा लयंकर देजाय छे अरी! पणु, तारां करेलां लयंकर कृत्ये आगण तो थोडीज् हरी, जेवुं तने नथी लागतुं?

पु३५—थोडी ते शुं हरी? अने तेमां लागवातुं शुं हरी? आ स्पष्ट रीते थती व्याधियां हुं मडा मुशीयते लोगवुं छुं! पांसणीओमां थतो ह्:आवेा डेटलो लयंकर छे! छतां आप आम डेम कडो छे?

वि० भाध—सखज् कडुं छुं, जे मोटी पूरमां आवेल नदीओ तरतां, अने मोटां मोटां सात माण सहजमां उतरतां, मृत्युथी पणु डरे नडी, जे मुथीमां जव राभी हभेशां इर-नार, तेने आ नरासी व्याधि शुं करनार छे?

પુરૂષ—વ્યાધિ શું કરનાર છે ? થતી હોય તેજ જાણે. મુઠ્ઠીમાં જીવ લઈ ફરતો હતો, તે વખતે આવી ભયંકર વ્યાધિથી પીડાતો પડ્યો નહતો. સારો, તાજો, નિરોગી થઈ, મસ્ત બની મારાં કાર્યો કરતો હતો, પણ આ વ્યાધિ મને જીવતો મુકનાર નથી. ખરેખર એથી તો હું મરીશ, મરવાથી ડરતો નથી, પણ મૃત્યુ પછીના વિચારોથી મારું અંતઃકરણ બહુજ રીઝાય છે અને મને શું થાય છે ? કોણ જાણે ?

વિં બાઈ—હા ! સમય તેવોજ છે ! વખત બારીક છે ! આવે વખતેજ મૃત્યુના વિચારો થાય એમાં આશ્ચર્ય જેવું કંઈ નથી, માટે તને આવા જણાતા ભયંકર સમયને બચાવનાર “પ્રભૂ” એકજ “પરમાત્મા” છે, માટે તેનું સ્મરણ કર, સાચા અરિહંત દેવનું સ્મરણ કર.

પુરૂષ—પ્રભૂનું સ્મરણ ! અરિહંત દેવનું સ્મરણ ! બાઈ ! બાઈ, આજ સુધી મેં પ્રભૂને ઝોળખ્યો નથી. તેનું નામ સાંભળ્યું નથી, તો કેને સંભાર ! આ જુઓ ! આ જુઓ ! યમદૂતો ! અરે યમદૂતો ! ફાસ લઈ ઉભા છે તે. હાલ ! મરું છું, હવે મને કાંઈક થાય છે ! બચાવો ! અરે બચાવો, બાઈ મને ઉગારો ! ઉગારો !

વિં બાઈ—હજી સમયને વાર છે, પુરો થયો નથી.

પુરૂષ—યમદૂતો તૈયારી કરી રહ્યા છે અને આપ કહો છો, સમયને વાર છે ! વાર છે !

વિં બાઈ—શાંત થા, શાંત થા, શાંતતાથી જે થાય છે તે ઊતાવળથી બનતું નથી. મરણ આવે છે એવું તને સ્પષ્ટ જણાય છે, તો એજ વખત સાચવવાનો છે. સમજ ! આ સંસાર સમુદ્રમાં, આ સંસાર ચક્રમાં, આ ભવ અટવીમાં માણસ મરે છે અને જન્મે

છે, જે ઉત્પન્ન થયો છે તેનો નાશ થવાનોજ, જે આવ્યો છે તે જવાનોજ, એવું કોણ અમર રહેનાર છે ? તો વૃથા શોક કરવાનું તજ દઈ પ્રભૂને અંતરમાં યાદ કર. આવી અમુલ્ય તક ફરી મળનાર નથી, તો ગમાવ ના. શાંત થા, શાંત થા, તે પ્રભૂજ,—તે અરિહંતજ, તને આવા મૃત્યુના મૂખમાંથી બચાવનાર ઐષધિ રૂપ છે, તેજ તારનાર છે, તેજ સહાયકર્તા છે તો ભૂલ માં, ભૂલ માં. સાંભળ—આ એક પદ શું સૂચવે છે !

ભેરવી-ગઝલ.

ભ્રમણભૂંસાય લક્ષિતથી ભણે ભગવંતને ભજ તું ;
ભરી લે લક્ષિતનો ભંડાર ભજ લે ભાવથી પ્રભૂ તું.

ભયો ભૂંડા ચોર્યાશીમાં,

પડ્યો છે પાપ રાશીમાં ;

મળ્યો માનવનો અવતાર, સફળ કરવા

પ્રભૂ ભજ તું.

રહ્યો રાગી શું કાયામાં,

અને સંસાર માયામાં ;

હકોવા પાપની ખાતર, બની મસ્તાન પ્રભૂ ભજ તું.

અજ્ઞાને અંધ ના બન તું,

આતમ જ્ઞાન મન ધર તું ;

આત્મા શુદ્ધ તો કરવા, હવે નિશ્ચે પ્રભૂ ભજ તું.

હવે ના ધાર કાયાને,

તજ દે ક્રોધ માયાને ;

અચળ વૃત્તી ધરી લીનતા, ખરા ભાવે પ્રભૂ ભજ તું.

પિતા માતા બેની બાર્યાં,

ન કોઈનો કોઈને તાર્યાં ;

પ્રભૂ વિના ન તારક કોઈ, તો તરવા પ્રભૂ ભજ તું.

ભવિષ્ય કોઈ ના જાણે,

જે જન્મડા જીવડો તાણે ;

અંખડ લક્ષિતથી વશ કરવા, પ્રભૂને પૂનસી ભજ તું.

પુરૂષ—પ્રભૂનું નામ ! કેમ અને કેવી રીતે લઉં બાઈ, મને મરવાનો અરે ! મૃત્યુનો ભય લાગે છે ! ભય લાગે છે !

વિં બાધ—બહાદુર નર, બહાદુર લુ-
ટારા, બહાદુર ચેર, તારાં મ્હોંમાંથી ભયની
વાત સાંભળી બહુજ વિસ્મીત થાઇ છું.
અચારે એક અબળાએજ આશાસન આપવતું
જરૂર છે. તો હરે છે કાં ?

પુરૂષ—હરે છે કાં ? જુઓ, જુઓ,
આ સામે દેખાતા રાક્ષસથી કૂર, પાડાથી પણ
લડું અને કસાઇથી પણ નિર્દય, ભયંકર
શસ્ત્રો ધરી ઉભેલા યમદૂતોના ભયંકર
અવાજોથી માફું હૃદય કંપી ઉઠે છે.
આ કાળા દૂતો જાણે મારાં કાળાં પાપો-અરે
અસંખ્ય કાળાં કૃત્યો આ અશુ સામે ભયંકર
તોફાન મચાવી રહ્યા છે.

વિં બાધ—એ વિચાર કરવાનો હાલ
સમય નથી, માટે આ વિચારોને-આ
દૂષ્ટ વિચારોને તારાં અંતઃકરણમાંથી કાઢી
નાંખ, તેને દેશવટો દે, તેને સદાને માટે દૂર
કરી સમુદ્રમાં યા એક ઉંડા ખાડામાં નાંખી
દે, કે ફરી આવવાનો વખત મળે નહીં અને
સાચા પ્રભુનું, જગતારક પરમાત્માનું દિ-
લમાં સ્મરણ કર, તે સૌનો બેલી છે,
સૌનો તારક છે. મૃત્યુ પછી પણ દુઃખ દેવા
નહીં દે, નહીં દે.

પુરૂષ—બાધ, પણ મને ! આ પાપીનો
પ્રભૂ ઉગારશે? મને લાગે છે કે આ કૂર, અ-
સંત કૂર, પાપીને ના, નહીંજ ઉગારે !
જુઓ યમદૂતો કેવી સખ્તાઇથી મને ફાંસમાં
લેવા તજવીજ કરે છે ! તેમના શસ્ત્રોના
અવાજથી મારા શરીરે કંપારી છૂટે છે.

હું હરું છું ! મરું છું ! મને બ-
ચાવો ! ઉગારો ! ઉગારો !

વિં બાધ—પ્રભૂ ! પ્રભૂ તને બચાવે !
ભાઇ, આ સમયે પ્રભૂમાંજ ચિત્ત રાખ, કીધે-
લાં કાળાં કૃત્યોનો પશ્ચાતાપ કર અને સાચા
પ્રભુનું સ્મરણ કરી, સાચાજ પ્રભૂને હૃદયે

ધારણ કરી લે. અપરાધિઓને અને અધોર
કર્મીઓને તારનાર તેજ છે. જેમ બાળક સર્પ
સાથે રમે છે, અને મૃત્યુનું નામ અરે ! વિ-
સરખું તેના હૃદયમાં હોતું નથી, તેમ તું
પણ બાળક બની પ્રભૂ રૂપી સર્પ સાથે રમ,
અને એકનિષ્ઠતાથી પ્રભૂ--અંતરાત્મા સાથે
મલી, તેનાજ ગુણ ગા. મૃત્યુને ભૂલી
જા અને પ્રભૂપદમાં શીર નમાવ.

પુરૂષ—હા, છે ખરું ! પણ અપરા-
ધિઓનો પ્રભૂ નથી, નિરાપરાધિ અને અચા-
નનો પ્રભૂ છે. જુઓ, આ સ્ત્રી મને ગાળો
આપે જે, તે છુટ્ટો લાકડીથી મારવા આવે
છે અને જ્યાં લાં મારા બદલ પૂરા પોકારો-
જ સંભળાય છે તે સાંભળી હું વધારે રી-
બાઉં છું. આ કરેલાં કૃત્યો તાજાં જેવાં
જણાય છે.

વિં બાધ—એ બધાં તારી નજરે
જણાય છે, તો તેમને માફ કર. તહેં એઓને
દુઃખી કીધાં છે, તેઓને દુઃખ આપ્યું છે,
તેઓ તેથીજ એવી કૃતિઓ કરે એ નવાઇ
જેવું નથી.

પુરૂષ—અરે ! હું શું માફ કરું !
માફ તો મને એ કરે ! આગળ કોઇ વખત
એવું બોલત તો તેમનાં માર્ગા ધડથી જૂઠાંજ
પડ્યાં હોત, પણ હાલ તો એ ગાળો આપ-
નારની પાસેજ જઇ માફી માગું ! એમના
પાસેજ ક્ષમાની લિક્ષા માંગવાનું મન થાય
છે, તો બાધ કદાચ એ લિક્ષા પણ આપે;
પરંતુ, પ્રભૂ તો મને નજ આપે.

વિં બાધ—તું માગીશ તો તે આ-
પશે. બાળક રડે લારેજ માતા પુત્રને ધવાડશે,
તેમ પ્રભૂ પાસે ક્ષમા માંગીશ અને પ્રભૂ ક્ષમા
ન આપે એ બનવાનુંજ નથી, ભૂખ્યાને
ભોજન, તૃષ્ણાને પાણી મળેછેજ, તો એ અં-
તઃરસાક્ષ પ્રભૂ એવા મારી આપશે ! કે
કોઇએ એવી મારી આપીજ ન હશે ! જરૂર

તારા પાપોની ક્ષમા કરશેજ. આ જો તારા સાથે થોડુંક પણ જ્ઞાન મેળવી, પ્રભૂ પાસે ક્ષમા માંગે છે, તેની મુદ્રાજ સ્પષ્ટ જણાવે છે ! સત્યતા દેખાઇ જાય છે ! શાંતચિત્તને અશ્રુપ્રવાહજ સાક્ષાત્કાર જણાવે છે અને તે પ્રવાહરૂપ પાપ ધોવાઇ બહાર પડે છે ।

પુરૂષ—એનાં થોડાં પાપ ! પણ મારાં તો અગણીત અને તે કેટલાં ભયંકર છે ! મારો દેહ ! મારા દેહમાં ફરતું લોહીનું એક મિંદુ પણ પાપની ક્રીયાથી અક્ષય નથી ! તો આ અધમાધમે-આ દૂષ્ટે-આ પાપાત્મે મારીની આશા રાખી વ્યર્થજ છે !

વિં બાઈ—સાંભળ, મારા ભવદિય વીર ! સાંભળ ! ઉત્સાહ રાખ તો 'બધું' સારું થશે. સંસારોપદેશનો એક નમુનો સાંભળ—

લાવણી—(ચેતે તો ચેતાવું તુને રે.)

સજી તો સજીવું તુને રે જન્મળી જીવડા

ત્રી પૂત્રે મોહ ઘાલ્યો,

સંબંધીઓએ ભમાવ્યો,

લક્ષ્મીના લોભે તણ્યોયેરે; જન્મળી જીવડા ૧

નિજ નારીને વિસારો,

પરની તે પ્રિતે લાળી,

સાયું સુખશું તે દેનારી; જન્મળી જીવડા ૨

માથે છોશાંડિયા ઘાલી,

છાતી કાઢી ને તો ચાલી,

દૂનિયાને કીધી વહાલીરે; જન્મળી જીવડા ૩

ઉચ્ચ અત્તરો મંગારી,

તેલ સુગંધી લગાવી,

ઉંચા વસ્ત્રે દેહ શું સળગીરે;

જન્મળી જીવડા ૪

એવાં એવાં ગાંડા ઘેલાં,

મૂકી દે નકામા ચાળાં,

જમકેરા ખાય ભાલારે; જન્મળી જીવડા ૫

અહીં નથી કોઇ તારું,

મિથ્યા કાં વદે છે મારું,

કે'તાં તને લાગે ખારું; જન્મળી જીવડા ૬

પંખી ટેળું સાથે મળ્યું,

ક્ષણમાં ઉડીને ચાલ્યું;

તેમાં તને શું જણાયું; જન્મળી જીવડા ૭

પાણી પરપોટો ફૂટે.

દેહથી તો જીવો છૂટે,

પછી પોક માથે મૂકે રે; જન્મળી જીવડા ૮

ઠાંડીમાં ઠીક ઘાલ્યો,

ચાર જણે તો ઉપાડ્યો,

કાષ્ટે સૂરાડી સળગાવ્યો; જન્મળી જીવડા ૯

હાય વોય નિત્ય કરે,

નકામી પીડાને વહેરે,

દેહની જો થાય હોળીરે; જન્મળી જીવડા ૧૦

મોટા મોટા શાહુકાર,

ગરીબ અને ગમાર.

કોઇ રહ્યું ના ન રહેવાના; જન્મળી જીવડા ૧૧

સંસારે ડૂબેલ પૂનક્ષી,

કાઠજે ના વત હસી,

ઉરમાં ઉતાર ઉંડીરે. જન્મળી જીવડા ૧૨

સાંભળ્યું કેટલો બોધ ! તારી ઉમરમાં

તેં કેટલાં અગ્નિમાં બાળ્યાં હશે ? તો તને

પણ કોઇ બાળશેજ ! એ શું તું જાણતો

નથી ? જાણે છે, સમજે છે, તું છતાં કાં

વ્યર્થ સમયને ગમાવે છે. તને એમ લાગે છે

કે પ્રભૂ શું માફ કરનાર છે ? અરે ! આ

માયાણુ પ્રભૂની દયા તું માપી શકે ?

પ્રભૂની મુદ્રા શાંત છે, તે કોઇપર ગુસ્સે થતા

નથી, જો ગુસ્સે થાય તો ખીજને પણ કેમ

ઉગારે ? આપણા પાપ; પશ્ચાતાં પની ધૂનથીજ

ધોવાશે, અંતઃકરણ સાફ થશે, સારેજ જ્ઞાન

પ્રાર્થ થશે. શું તારા જાણમાં નથી કે આ-

ગળ કેટલાં બધાં અધમનરો પણ પશ્ચતાં પની

નદીઓ વહેવડાવી ! પાપ ધોઇ આ સમુદ્ર તરી

ગયા છે !

પુરૂષ—પણ મારાં પાપ તો મને વાત સરખીએ કરવા દેતાં નથી, જ્યાં જોડેં છું ત્યાં કાળુંજ કાળું જણાય છે! જેવી ચોમાસાની ભરપૂર પાણીથી ભરાયલી વાદળોએની ભયંકર કાળી ધમધેર રાત! એજ રાત! એજ મારાં કાળાં કૃત્યો. આ કાળાં પાકા રંગના કૃત્યોને ઘોષ નાખનાર કેષ નથી. જે વખત જાય છે તેમાં **મરવાનોજ મરવાનો**.

વિં બાઈ—એક ઘડીમાં તું મરીશ એ સત્ય જણાય છે, તોપણ હજી વિલંબ કરે છે! કેટલું આશ્રય! એક ઘડીમાં કેટલું બધું થાય?

પુરૂષ—એ ઘડીમાં બધું થશે? શી રીતે?

વિં બાઈ—જરા શાંત થા, તારા દુષ્ટ વિચારોને દાબ, જ્યારે **મરવાનું** છે ત્યારે શું ડરવાનું છે?

પુરૂષ—સારે શાંત થવાથી પણ શું થવાનું છે?

વિં બાઈ—બધુંયે.

પુરૂષ—તો મારા ત્રાસને, મારી પીડાને, મારાં પાપોને પણ દૂર કરી શકશે?

વિં બાઈ—હા.

પુરૂષ—સારે મારી ધર્મમહેન, અરે મારી ધર્મ ભગિની! આ નુગુરની તું ગુર થા, સત્ય માર્ગ જણાવ, મને ઉગાર, હાથ જોડી તારા શ્રેણીમાં શીષ્ય નમાવું છું. મારું થોડું જીવતર તારા ખોળે મુકું છું. **મને ઉગાર! મારી ગુર! ઉગાર!**

વિં બાઈ—બાઈ, બાઈ, મારા ચણું-માં શીશ ન મૂક, પણ પ્રભુના પદમાં મૂક. જે સોંપવું હોય તે પ્રભૂને સોંપ, હું તો તારા જેવી મનુષ્ય છું. પુન્ય અને પાપને સંભાળનાર પ્રભૂજ છે, તો તેના ખોળે તારું મસ્તક મૂક.

પુરૂષ—મારો ગુર તુંજ છે. મારો પ્રભૂ તુંજ છે, મને શરણુ આપનાર તુંજ છે, તો મારી ધર્મગુર! મારો આધાર તારા પરજ છે.

વિં બાઈ—એવું બોલ મા, મારા ભાઈ. હું પામર તારા જેવીજ છું, તો એક પ્રભૂમાં આશા રાખ, તેનુંજ શરણુ લે, તેઓના દુરમાવેલા માર્ગે ચાલ. તો બધુંએ સારું થશે. મારા ભાઈ!

પુરૂષ—પ્રભૂમાં આશા અને શરણુ તમો અપાવો સારે ખરું, હું તો અન્યને મારનારો વાધ વડે જેવો લૂંટારો, તે તમનેજ અસારે ઝોળણું છું. તમારામાંજ આશા રાખું છું અને તમારુંજ શરણુ ચાહું છું. આપ મારા ગુર છે તો પાપમુક્ત થવા સદુપદેશ આપો અથવા આ પાપીને પાપમાંજ મરવા દો.

વિં બાઈ—ના બાપુ! ના ભાઈ! **પાપમાં ના મર**, તારા પાપનો રંગ કાઢ્યો છે, ઇચ્છા કરીશ તો એક ઘડીમાં પાપને ઘોષ શુદ્ધ થઇશ, જેમ ખોવાયલાં બચ્ચાને મા શોધે છે, તેમ પાપમાં પડેલાંને પ્રભૂનો સ્નેહ શોધી રહ્યો છે. જે તપાસ કર, આ વખતે તું પણ તારાં કૃત્યોનો પશ્ચાતાપ કરી રહ્યો છે. તેજ પ્રભૂને સ્નેહ છે. તને બોલાવે છે, માટે **પ્રભૂના સ્નેહમાં લીન** થા. એ પરમાત્માના સ્નેહમાં મળવા તારી ઇચ્છા છે કે નહીં એ જાણવાનું છે, માટે ખોલ, સમય જાય છે—વેળા વહી જાય છે તે પાછી આવનાર નથી, ગયેા અવસર ફરી મળશે એ આશા રાખવીજ વ્યર્થ છે. માણસ જીવાનીના અને લક્ષ્મીના મદમાં ઢાઝ પી થયેલા જ કટા માફક તણાઇ શુદ્ધ બુદ્ધ ખોલ, ગટરોમાં પડવા તૈયાર છે અને મોટાં મોટાં તારાથી પણ ભયંકર પાપ કરવામાં મગ્ની રહે છે, માટે ભાઈ અભિમાનથી ઉતરી તારી દૃઢ ઇચ્છા જણાવ.

પુરુષ—ધ્વજા ! આવી મારી છેવટની સ્થિતિએ દૃઢ ધ્વજા ધારણુ ન કરીશ તો પછી ક્યારે ? બોલ મારી ધર્મ ગુરુ બોલ ! જે કહીશ તે સાંભળવા અને કરવા તૈયાર છું.

વિં આઈ—તારી દૃઢતાની મને ખબર છે, ચોરી કરતા વખતની જીવના જોખમ ભરેલા કૃત્યોની વાતો તેં અગાઉ સાંભળાવેલી છે, તારા બહાદુરપણાની સીમાજ નથી. મને સખળ ખાત્રી છે કે તું ખરી દૃઢતા રાખીશ.

પુરુષ—મારાં હિમત ભયાં સાહસ-કામો, તે વખતે જીવતરની પર્વાં પણુ ન કરેલી, પણ હાલ આ મૃત્યુ સમીપ આવી ઉભેલા દેખાય છે તે કારણે હીંમત હારી જવાય છે. હાલતો મૃત્યુ અને મૃત્યુબાદ આવનારાં દુઃખો સાંભળીને અત્યંત દુઃખી થાઉં છું તો આ વખતે તો તેથી પણ દૃઢતા ધારણુ કરીશ. તમારું કહેવું માથે ચડાવીશ. મહારા ! ધર્મ ગુરુજી. મારી સંપૂર્ણ ધ્વજા છે અને ખાત્રી છે માટે ફરમાવો.

વિં આઈ—તો સાંભળ, જેવી રીતે એક દૃઢતાથી ચોરી કરતાં મૃત્યુને પણ તૂચ ગણ્યો હોતો, તેવાજ પ્રકારની દૃઢતા રાખી, મૃત્યુને તૂચ ગણી યમહૂતોથી ન ડરતાં એક ચિત્તથી પ્રભુતું ભજન કર. અહીંનું બધું ભૂલી જા. આ ધર તારું નથી, આ વસ્ત્રો તારાં નથી, ભાઈ, બહેન, પિતા, માતા, સગાસંબંધીઓ તારાં નથી, આ તરૂણુ ભરજીવાનીમાં આવેલ સ્ત્રી તારી પત્ની નથી, આ દ્રવ્ય તારું નથી, આ જમીન તારી નથી, અને છેવટે એકજ શબ્દે સમજવું તો આ શરીર પણ તારું નથી, તો બીજા પણ શા આધારે તારાં થવાનાં છે ? પણ યાદ રાખ, આ બધું સમજ્યા પછી અને પ્રભુની ધ્વજાથી આ માંદગીમાંથી ઉઠ્યા પછી કદાચ પાછાં કાળાં કૃત્યો કરવા તૈયાર થાય, તે કરતાં આ પાપી વિચારમાજ મરે એજ વધારે

સારું છે. કારણુ દેખતો કુવામાં પડે તે કરતાં આંધળાએ પડવું સારું, માટે પહેલાં કોષ, માન, માયા, લોભ, વગેરે દૂષ્ટાનો ત્યાગ કર-દૂષ્ટ કામો ન કરવાના સોગંદ લે, તોજ ઉપરોક્ત વિચારો ફળદાયક પૂર્ણ ફળ આપશેજ.

પુરુષ—બહેન, મારી ધર્મ ગુરુ, જ્ઞાન આપનાર માતા, બધું સમજ્યો, નાનપણમાં તો પ્રભુ દીવો ગમાવ્યો, જીવાનીમાં મસ્ત બની દૂષ્ટ કૃત્યો કીધાં અને હવે ! હવે !! ભૂલીશ ? કદી નહીં ભૂલું. તમારા ઉપદેશામૃત શબ્દોને મારાં અંતઃકરણમાં સ્થાન આપીશ, કદી પણ ભૂલીશ નહીં.

વિં આઈ—ત્યારે, ઉપરના વિચારોને અંતઃકરણમાં ધારણુ કર, તારું શું છે તેનો પુરો વિચાર કર, તારાં હજારો તાળાં વચ્ચે દાખી રાખેલા કાળાં કૃત્યો ઉઘાડાં કર, પ્રભુતું નામ લેતાં લેતાં બધાની પાસેથી મારી માંગ, કાંઈપણ છુપું રાખીશ નહીં, જેના પરિણામે તું પ્રભુતા રૂપની સાથે મીઠનસાર થઈ જશ. પ્રભુતા અંતઃકરણ સાથે તારું અંતઃકરણુ જોડાઈ જશે. તારા મનને મજબુત બાંધી નાંખ, કે ફરી કાંઈપણ કાળે અન્ય વિચારો તરફ દોરાય નહીં, તેની પૂરી સાવચેતી રાખ તો પછી પ્રભુ તારો ઉદ્ધાર કેમ કરતો નથી એ જોવાશે.

પુરુષ—જેને ચરણે માથું મુકી કીધેલ કાળાં કૃત્યોનો ઉચ્ચાર કીધો છે, અને તે બદલ તમોને પૂર્ણ ખાત્રી આપેલી છે. આ તમારી પૂર્ણ મધુરતા અને લીનતા ભરેલ વાણીથી હું એક ચિત્ત થતો જાઉં છું. આ વેદના ભૂલી જાઉં છું-દેહનું ભાન પણ ભૂલી જાઉં છું. આહા પ્રભો ! અરિહંત, અરિહંત, વીરપ્રભુ ! વીરપ્રભુ ! મારા પાપનો ક્ષય કરો, માર કરો. આ દુઃખી દીનના દુઃખો નિવારો.

હવે કોઈની ધાસ્તી નથી, થોડા જીવન માટે ડરીને શું થવાનું છે ?

વિંઠ બાઈ-ધન્ય છે તને, કે એટલાં કાળાં કૃત્યો કરી પ્રભુને ઝાળખ્યો. હવે તને કોઈપણ રીતની ધાસ્તી નથી, યમદૂતોથી ડરવાનું નથી, એક ચિત્ત કર, નાસિકા સામે ધ્યાન રાખી વીરપ્રભૂની પદ્માસને એસેલ મૂર્તિને ધારણ કર, તેના જેવોજ શાંત થવા, પડરિપુને હણુવા તૈયાર થા, મોહલોભાદિને સમુદ્રમાં ફેંકી દે, પ્રભૂની ભક્તિ કર કે ફરી કોઈપણ જન્મમાં દુઃખ ભોગવવા વખત ન આવે અને ધર્મકૃત્યો કર, પરપીડા હર, તો જરૂર થોડા વખતમાં મોક્ષ મેળવવો પણ સુલભ થશે. અહાહા ! કેવો પ્રશ્નાતાપ કરતો પ્રભૂપદમાં લીન થઈ ગયો છે. દેહનું પણ ભાન ભૂંટી ગયો છે. પ્રભૂ ! પ્રભૂ!! પરમાત્મા ! વીર પ્રભૂ ! હે અરિહંત ! એવીજ શાંતિ એને આપ, એના પાપને કાપ, એના કષ્ટો નિવારણ કરી તારા અંતઃકરણ પ્રત્યે ધારણ કર. પણ ! અરે આ શું ! એનો અહેરો કાળો કેમ થતો આલ્યો ? એનું શરીર થંડુ કેમ ? શું આ દેહને એકલો મૂકી આલ્યો ગયો ? અહાહા ! કેવી શાંતિથી, કેવી મધુરતાથી, કેવી સમાધિથી પ્રાણુ છોડ્યો ! પ્રભૂ એના આત્માને શાંતિ આપો ! !

ગુણદ્રષ્ટિવડે જગાતી—

બહિરાત્માની બલીહારી.

જેમ જગતમાં પદાર્થો અનંત છે, તેમ એ પદાર્થોને જેવાની દ્રષ્ટિઓ પણ અનંત છે તથાપિ જેમ મનુષ્યો અનેક હોવા છતાં, યુરોપિયન, અમેરિકન, ઇન્ડિયન, જાપા-

નીસ, ચાઇનીસ એમ પ્રેમ વર્ગ પાડીએ તો સાત કે આઠ વર્ગજ પડી શકે. તેમ દ્રષ્ટિઓ અસંખ્ય અને અનંત હોવા છતાં પૂર્વ-પુરુષોએ માત્ર ત્રણ કે ચાર વર્ગમાં એ સર્વ દ્રષ્ટિઓનો સમાવેશ કરેલો જણાય છે. એ દ્રષ્ટિઓ દોષદ્રષ્ટિ, ગુણદ્રષ્ટિ અને સમદ્રષ્ટિ એમ ત્રણ છે. સમદ્રષ્ટિને કોઈ વેળા યથાર્થદ્રષ્ટિમાં પણ કોઈ કોઈ લેખકો ગણાવે છે.

આત્મા ત્રણ પ્રકારના શાસ્ત્રમાં ગણેલા છે; બહિરાત્મા, અંતરાત્મા, અને પરત્મા. શરીરને આત્મા માને તે બહિરાત્મા, અને શરીરને જણુનાર એવો જે સાક્ષીભૂત તે અંતરાત્મા અને એ સાક્ષી એવો જે જ્ઞાનરૂપ આત્મા (તે પૂર્ણ પવિત્ર-પૂર્ણજ્ઞાન કે આનંદરૂપ આત્મા) તે પરમાત્મા.

તથાપિ પ્રસ્તુત વિષય બહિરાત્મા એટલે શરીર-વગેરેનેજ હું માનનાર આત્માને લગતો હોવાથી અંતરાત્મા તથા પરમાત્મા વિષે હાલ આપણે કંઈ કહીશું નહિ. કોઈ બીજા પ્રસંગે તેઓનો શો અનુભવ કંઈક કંઈક થાય છે તે વિષયપર વાર્તાલાપ કરીશું.

બહિરાત્મા દોષદ્રષ્ટિવડે કેવો દેખાય છે એને માટે કંઈ થોડું લખાયું નથી, માટે તે પણ આ પ્રસંગનો વિષય ન હોવાથી આપણે મૌન રહીશું. હાલ તુરત તો ગુણદ્રષ્ટિવડે બહિરાત્મા કેવો રમણીય દેખાય છે ? તે સંબંધી એ શબ્દો જણાવવા લેખક પ્રયત્ન કરે છે.

કોઈ બંધુ-બહેન પુછશે કે તમારે આ વિષય લખવાનું પ્રયોજન શું ? બહિરાત્મા નિંદનીય છે-દોષરૂપ છે, અધરૂપ-પાપરૂપ વર્ણવ્યો છે; તો જણે એ પ્રકારે વર્ણવ્યો છે તે શું ખોટું છે ? આ અગત્યના પ્રશ્નનો લેખક ઉત્તર આપે છે કે એમણે વર્ણવ્યો તેવો દેખાય છે; કારણ કે બહિરાત્માને જ્યારે દોષદ્રાષ્ટ્યે જોઈએ તો તેવો દેખાય છે; પરંતુ ગુણદ્રષ્ટિએ કેવો દેખાય છે તે પણ જણવું

જોઈએ. જડ વસ્તુમાં વસ્તુતઃ સારું નહાઈ કહેવાય છે, તે સાપેક્ષી છે, એટલા માટે બ્યારે દોષદ્રષ્ટિથી બહિરાત્મા પાપરૂપ દેખાય છે, તો લેખક કહે છે કે ગુણદ્રષ્ટિવડે પૂણ્યરૂપ પણ બહિરાત્મા દેખાયજ છે. અપેક્ષાયુક્ત આ વિષય છે. વળી મનુષ્ય જાતનો મોટો ભાગ અને તેમાં પણ આ દેશનો મોટો ભાગ પોતે ધણે ભાગે સ્વતંત્ર વિચાર કરી શકતો નથી. તેમને જેમ કહેવામાં આવે છે, તેજ પ્રમાણે આખો ભવ માની રહે છે, અને એક અપેક્ષાવડે લાભ થાય તો ઠીક, નહિં તો તેજ સ્થિતિમાં વહા કરે છે; એટલા માટે બીજા કે સાથેની અપેક્ષા પણ કેવી છે તે બતાવી ગુણદ્રષ્ટિવડે બહિરાત્મા કેવો છે તે જાણી, કયા કયા લાભો આપણે આ માનવ દેહમાં પામી શકીએ તે દેખાડવા યત્ન કરવો એજ લેખકનો આંતર હેતુ છે. તથાપિ ગુણદ્રષ્ટિના પ્રકાશથી અંબધ જનારા કે દોષદ્રષ્ટિવડેજ અંધ થઈ ગયેલાને આ વાત સમજાવી અને તેનો સંશય સરખો પણ હવે રહેશે નહિ. આટલા કારણથી જે ગુણદ્રષ્ટિ હોય તેને લાભ થાય, અને જેની તે દ્રષ્ટિ થઈ શકે તેને પણ લાભ પહોંચે, એટલા શુભ હેતુથી આ પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે; માટે જો તે ભુક્ષિગમ્ય થાય, તેમજ જગત્ દ્વિતકારક લાગે તો માન્ય રાખશો, એવી પ્રાર્થના છે. કારણ કે શાસ્ત્ર પણ પ્રથમ વૃત્તિ અને પછી શુદ્ધ વૃત્તિ તરફ ક્રમે દોરે છે.

જેમ કોઈ મનુષ્ય પુસ્તકને પગ લગાડે તો આપણા જૈનમાર્ગી બાંધવો અને બહેનો એમ સમજે કે આશાતના થઈ અને જો તેની પૂજા કરવામાં આવે તો સમજે કે આરાધના થઈ, કારણકે પુસ્તક એ જ્ઞાન છે-જ્ઞાનનું સાધન છે, માટે તેની આરાધનાજ કરાય.

એજ પ્રકારે કોઈ પ્રભુની પ્રતિમાજીની આશાતના કરે, તો પાપયુક્ત ગણાય, અને તેનું પૂજન કરે તો આરાધના ગણાય;—કારણ કે પ્રતિમાજી એ પ્રભુરૂપ છે. શાસ્ત્ર પણ કહે છે કે “જિનપ્રતિમા જિનસારખી” જિનપ્રતિમા તે શ્રી જિનેશ્વરરૂપ છે. આ વાત સત્ય છે, સર્વને નિર્વિવાદ છે. તેજ પ્રકારે કોઈ માણસ કે પશુને કોઈ મારે તો આપણે કહીએ કે તેણે જીવને માર્યો અને તેને બચાવે તો આપણે સમજીએ કે જીવને બચાવ્યો. આ વાત પણ આપણુ સર્વને માન્ય છે.

આ દ્રષ્ટિએ જોતાં પુસ્તક એ જ્ઞાન છે, (જોકે જ્ઞાનનું ઉપકરણ હોવા છતાં ઉપચારે જ્ઞાનજ ગણાય) તેજ તેની આરાધના થઈ શકે છે. પ્રતિમાને પ્રભુ ગણાય, તેજ તેની પૂજા થઈ શકે છે અને ફળદાયક પણ તેથીજ થાય છે; તેજ પ્રકારે મનુષ્યાદિ શરીરને જીવ ગણ્યાથીજ તેની રક્ષા વગેરે ધર્મકાર્ય થાય છે. તેજ પ્રકારે શરીરને આત્મા, એમ ગણવાથી આત્મા જ્ઞાનરૂપ હોવાને લીધે, તે જ્ઞાનરૂપ થશે. જે માણસો શરીરને આત્મા માને છે તે માણસો શરીરગત ઇંદ્રિયોને, અવયવોને અને મનને પણ આત્મા માને છે. આમ માનવાથી શરીરને સુધડ કરી શકે છે, કારણ કે તેઓ માને છે કે અમે આત્માને સુધડ અને સુદૃઢ કહીએ છીએ. ઇંદ્રિયોને વિકસિત કરે છે, કારણ કે તેઓ માને છે કે અમે આત્માને વિકસિત કરીએ છીએ. મનને સંબળ, સુદૃઢ, નીતિયુક્ત, વિચારયુક્ત કરે છે, કારણ કે તેઓ ગણે છે કે મન એ આત્મા છે. આ વાત યુરોપસ્થ ધણા જણાને લાગુ પડશે અને જૈનદ્રષ્ટિમાંની ગુણદ્રષ્ટિએ આપણે જોઈએ તો આત્મા એ જ્ઞાનરૂપ હોવાથી શરીરને આત્મા માનનાર પણ પાંચ જ્ઞાનમાંના એ જ્ઞાન એટલે કે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી શકશે. મતિજ્ઞાન ઇંદ્રિયોની પટુતાથી વૃદ્ધિ પામે

છે, તો જે શરીરને આત્મા ગણનારા તેપણુ અન્યવિકાસ કે જ્ઞાનવિકાસ એટલો ન કરે કે મતિજ્ઞાનના ૩૪૦ ભેદને પામે ! અને શ્રુતજ્ઞાન કે બુદ્ધિજન્યજ્ઞાન-સર્વ જગતને યથાર્થ સમજી પોતાનો વિચાર કરી શકે. આ પ્રમાણે વિકાસક્રમને માનનારા Evolutionists જ્ઞાનરૂપ થશે. માટે ગુણુદ્રષ્ટિ વડે બહિરાત્મા પાસેથી આપણે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનની ચરાકાષ્ટા પ્રાપ્ત કરી શકીએ, એ વાત જૈનોના લક્ષમાં આણવી જોઈએ. જેમ આત્મા જ્ઞાનરૂપ હોવાથી બહિરાત્મા પણ માને અને શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી શકે છે; તેજ પ્રકારે આત્મા દર્શનસ્વરૂપ હોવાથી બહિરાત્મા ચક્ષુદર્શન, અને અચક્ષુદર્શનની પણ પૂર્ણતાએ પહોંચી શકે. વળી બહિરાત્મા જે શરીરનેજ હું માને છે, તે શરીરને શુભ આચરણે પણ પ્રવર્તાવી, ઇન્દ્રિયોને પણ નિયમમાં લાવી, મનનો વિજય કરી, ચારિત્ર એટલે Character પણ પોતાની ગુણુદ્રષ્ટિએ સુધારી શકશે.

વળી આત્મા વીર્ય સ્વરૂપ હોવાથી શરીરને આત્મા માનનારા શારિરીક બળમાં, મનો બળમાં અને નીતિબળમાં પણ ઉત્તમોત્તમ થઈ શકશે.

આજ પ્રકારે આત્મા પોતે અનંત ગુણુવાન હોવાથી શરીરને આત્મા માનનારા સંપૂર્ણ નહિ પણ શરીરના, ઇન્દ્રિયોના અને મનના અનેક ગુણોથી વાસિત થઈ, પોતાની ઉન્નતિ કરી શકશે.

સ્પષ્ટતાની ખાતર ફરીથી કહેવું પડે છે કે આત્મા જ્ઞાનસ્વરૂપ હોવાથી માણસને ગુણુદ્રષ્ટિવડે જોતાં શિખવાથી તેમને શરીરનું સાઈ જ્ઞાન થશે, અને શરીરનો સદ્ઉપયોગ એટો સમજી શકશે. તેજ પ્રકારે આત્મા જ્ઞાનસ્વરૂપ હોવાથી તેમને ઇન્દ્રિયોનું જ્ઞાન થશે, અને તેની શક્તિ તે જોતાં જોતાંમાં ઘણીજ પ્રાપ્ત કરી શકશે. બાહ્યજગતનું પૂર્ણ જ્ઞાન પ્રાપ્ત

કરી જવામાં તેનો ઉપયોગ કરી લેશે. એજ પ્રકારે બહિરાત્માને ગુણુદ્રષ્ટિવાળો મનનું પણ જ્ઞાન મેળવી તેને કાણુમાં રાખી, શુભ વ્યવહાર ધર્મમાં પ્રવર્તાવશે, માટે લેખક ગુણુદ્રષ્ટિવડે બહિરાત્માને જોવાની, તેજ પ્રકારે શીખવાની લક્ષમણુ કરી શરીરે બળવાન, ઇન્દ્રિયે જયવાન, મને શુભ મતિમાન કરી બાહ્યજગતનો જય કરી પોતાની બાહ્ય પણ ઉન્નતિ સાધે એમજ થવું જોઈએ.

માટે શરીરની આશાતના કરવી એ જ્ઞાનની, દર્શનની, ચારિત્રની, વીર્યની, આશ્વાતના કરવા બરાબર છે, અને તેની આરાધના કરવી એ જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર અને વીર્યની આરાધના રૂપ છે.

વળી લેખક એમ કહે છે કે બહિરાત્માવાળાએ તેમાં દોષદર્શન કરી, મન, ઇન્દ્રિય કે શરીરાદિનો જય કરવા કરતાં, તેને અને તેના કાર્યોને છોડ્યાં છે, અને તેમ કરી અંતરાત્મત્વ અને પછી પરમાત્મત્વ પામ્યા છે. આ ગુણુદ્રષ્ટિનો માર્ગ ક્રમવાર છે, અને તે બહિરાત્મા એટલે શરીર, ઇન્દ્રિય, મનનો ત્યાગ નહિ પણ તેનો જય કરી પછી અંતરાત્મા થઈ પરમાત્મા થવાનો માર્ગ છે. જેમ વિષયોમાં ફસનારો જયકર્તા નથી; તેમ તેથી ભાગનારો પણ તેનો જય કરનારો ન કહેવાય. જેમ શત્રુના હાથમાં ફસનારો જય કરનારો ન કહેવાય તેમ શત્રુઓથી ભાગનારો તેપણુ જય કરનારો ન કહેવાય, પરંતુ તેનો જય કરી પોતાની શુભેચ્છા પ્રમાણે પોતાની ઉન્નતિ તે માર્ગે ચક્ષાવે તેજેજ તેનો જય કરેલો ગણાય.

જેમ સોમલ ઝેર છે, માટે નિરૂપયોગી છે એમ જાણુ નાર સોમલનો જય કરી શકે નહિ, પરંતુ સોમલ ને મારી તેની લક્ષ્મ કરનારા તેનો ઉપયોગ કરી જાણુ તેમ તે વિષયોથી ડરનારા વિષયોને જીતનારા કેમ ગણાય? પરંતુ વિષયોમાંથી વિષભાગને કાઢી તેનો સદ્ઉપયોગ

કરી શકે, તેજ જીતનારા-જૈન ગણાય. લેખકને તો ગુણુદષ્ટિ વડે સર્વત્ર એમ સુજે છે, અને તેથી આ યુક્તિ પણ ગ્રાહ્ય લાગે છે.

વિ. વિ. કોઈ એમ કહેશે કે શરીરને આત્મા માનવાથી એટલે બહિરાત્મભાવ હોવાથી શરીરનો તો નાશ થાય છે, તો સમજવું કે શરીરનો નાશ નથી, પણ પર્યાયાંતર થાય છે. જેમ સાંકળીનો નાશ થતાં પોંચી બની, તેજ પ્રકારે શરીરનો નાશ થતાં, નવીન પ્રકારનું શરીર બને; આવું મતિજ્ઞાન રહેવાનું કેમકે શરીરનો નાશ એટલે પર્યાયાંતર થવાથી કંઈ મતિજ્ઞાનનો નાશ થાય? તેમ શરીરનો નાશ એટલે પર્યાયાંતર થવાથી જ્ઞાનનો, દર્શનનો, આનંદનો કંઈ નાશ નથી થતો.

આ પ્રકારે જેમ જ્ઞાનાત્મા, દર્શનાત્મા, ચરિત્રાત્મા, વીર્યાત્મા, તપાત્મા, ઉપયોગઆત્મા તેમજ યોગાત્મા (મન, વચન અને કાયા) એ પ્રસંશનીય ગણાય.

હવે એક કૃષાય આત્માએ આઠ પ્રકારના આત્મામાં એક પ્રકારનો આત્માજ નિંદનીય રહે છે, પરંતુ બહિરાત્મા એટલે શરીરને આત્મા. માનનારા માનવખંધવો મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન વડે, તેનો પણ અંશે જ્ય કરી શકે છે.

જુઓ મતિજ્ઞાન વડે કોષપર કોષ નથી કરતો! માન છોડવાનું મન નથી થતું! માયાને ઠગવાને માયા (સરલતારૂપી માયા) નથી કામે લગાડતો! લોભનો ત્યાગ કરવાનો શોભ નથી વધતો! કામને જીતવાની કામના નથી થતી! મોહને છેતરવાની યુક્તિ નથી આવડતી? આમ કોષધના પ્રતિપક્ષી વડે તેનો જ્ય કરી, તે કોષધને જીતવાનો કોષ કરવો પડે એવી સ્થિતિએ પણ મતિજ્ઞાનવડે બહિરાત્મા શું ન આવી શકે? પરંતુ પ્રયત્ન કરનાર મનુષ્યની તો શું પણ સકલ જીવ માત્રની સ્વાભાવિક ઉચ્ચે ચડવાની છે, પરંતુ જેને તે પોતે માને છે, તેમાં તે સુધારો કરી ઉપર ચડવાનું કરે છે. પરંતુ હાલ હિંદમાં કે દુનિઆમાં એમ આદ્યું છે કે એક પ્રદેશમાં પૂણું ઉન્નતિ કર્યા વિના તેને પડતું મૂકી બીજા

પ્રદેશપર મનુષ્ય ફૂંકો મારવા માંડે છે, અને બીજાથી ત્રીજો આથી ફૂંકાતું પરિણામ ભૂસકામાં* નીચે પડી જવામાં અને અત્યંત દુઃખ મય સ્થિતિમાં આવે છે, જે મનુષ્ય શુભ દષ્ટિને હૃદયમાં રાખી ઉન્નતિના માર્ગમાં આગળ વધવા પ્રયાસ કરે છે તેને તે સ્વાભાવિક હોવાથી અમલમાં મૂકવું સરળ થઈ પડે છે.

સંક્ષેપમાં જે પોતાને બહિરાત્મા માનશે એટલે શરીરને અને તેના અવયવો અને ઈંદ્રિયોને હું માનશે તે ચડતો જીવ શારીરિક ઉન્નતિ, અવયવોની દ્રઢતા અને સ્પુરતી, અને ઈંદ્રિયોની પટુતાપર લક્ષ આપી જે પ્રકારના જ્ઞાન મેળવવા વિજયી થશે. એટલે કે મતિજ્ઞાનના ૩૪૦ ભેદ તથા શ્રુતજ્ઞાનના ૧૪ ભેદ સુધી પોતાની ઉન્નતિ આગળ વધારશે. હાલ મતિજ્ઞાનની પટુતા પરોક્ષરીતે અર્થાત બનાવટી ઈંદ્રિયો એટલે ટેલીફોન; ટેલીગ્રાફ-ટેલેસ્કોપ વગેરે લગાડી વધારે છે, તેમ નહિ, પરંતુ વગર આજી સાધને પણ વધારશે.

જે જોડો મનની સાથે કે અંતરાત્મા સાથે કે વિવેકની સાથે એકતાનતા કરશે, તે psychology કર્મે પ્રકૃતિના જ્ઞાનથી વધી આગળ અવધિ અને મન:પર્યય જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરશે.

જેઓ આત્મા સાથે એક વાક્યતા કરશે તે કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરશે,

જેઓ ત્રણે આત્મા સાથે અર્થાત પૂર્ણ સાથે એકય Harmony પામવા પ્રયત્ન કરશે, તે અવસ્થ પૂર્ણતા પ્રાપ્ત કરશે. એટલે કે પ્રથમ ત્રણેની શુભ અવસ્થા અને પછી પોતાનું શુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કરી સકશે.

લઘુતમ લાલન.

* કાયાશક્તિ વગેરેની તપાસ-તલના પૂર્વક કર્યા વિના અતિ કષ્ટ કરનારા પાછા પડયા છે માટે શાસ્ત્રકાર યયાશક્તિ અર્થાત જેમ શક્તિ વધતી જાય તેમ વગરશક્તિ ગોપવે, આગળ પર નો ઉપદેશ છે.

जैनोना सोळ संस्कार.

(आदिपुराणने आधारे)

लेखक-शा. नानचंद पुंजाभाई बी. ए.-वडोदरा.

द्विज एटले ब्राह्मण, क्षत्री अने वैश्य-
ने गर्भाधानथी निर्वाण सुधीनी त्रेपनक्रिया
करवा योग्य छे. उत्तम कुळमां जेनो जन्म
छे, तेवो माणस जो आ क्रिया सांभळे,
तेनो सारी पेटे अभ्यास करे, जिनेश्वरना
मार्गमां बुद्धि परोवे अने ते महा बुद्धिवान
निकट संसारी पोतानी मेळे अथवा गुरुना
उपदेशथी तत्वनो बोध पामी आ
क्रिया पाळे, तो ते त्रण जगतूनो चूडा-
मणी थाय छे.

महाव्रत अने अणुव्रत पाळवामां जे
ईच्छा थवी, तेनुं नाम दिक्षा; अने तेने
दृढ करनारी जे क्रिया ते दिक्षान्वय क्रिया
केहेवाय छे. आ दिक्षान्वय क्रियाना ४८
भेद छे तेमांना पेहेला सोळ संस्कारनुं
वर्णन अत्रे आपेळुं छे. पेहेली क्रिया
जे अवतारक्रिया केहेवाय छे ते
नीचे प्रमाणे छे.

विधि वगर रहेवाथी जे भव्यजीव
दोषीत थयेलो छे तेणे महा बुद्धिवान,
सदाचरण पाळनारा एवा कोई साधु
अथवा उत्तम श्रावक पासे जइने एवी
विनंती करवी के हे महा बुद्धिनाधारण-

हार ! वीतरागधर्म (जेमां क्रोध, मान,
माया तजवा कहेळुं छे) सिवाय बीजा
धर्मोमां कषायनुं वर्णन होवाथी तथा
तेमनी क्रियाओमां हिंसा थती होवाथी
दोषवाळा मने लागे छे, भाटे मने निर्दोष-
पवीत्र-धर्म समजावो. एवी रीते ज्यारे ते
भव्यजीव पूछे, त्यारे ते गुरु अथवा पंडिते
साचा दयामयी महाविवेकरूप धर्मनुं
वर्णन करतां एम कहेवुं जोईए के, हे भव्य
जीव ! तुं कल्याण माटे केवली अथवा
श्रुतकेवली-के जेमनां वचन सत्य छे, जे
मोक्षमार्ग बतावनारा छे, जे रूप, तेज,
गुणोना भंडार, आत्मरूप, ज्ञान, ध्यान,
दृष्टि, सुख, वीर्य, रिद्धि, दान अने सुंद-
रता विगेरे गुणोने लीधे भगवान इंद्र, धर-
णेंद्र, चक्रवर्ती विगेरेमां श्रेष्ठ छे, जे शा-
स्त्रमां आप्त (सर्वज्ञ) अथवा परमेश्वर छे.
जेमनां वचन वादिथी अखंडित, अद्वितीय,
अतिगंभीर अने संशय रहित छे-तेज
धर्मनुं मूळ छे.

सर्वज्ञना वचनथी शास्त्र, मंत्र क्रियादि
सकल पदार्थ बराबर समजो. सर्वज्ञनां वर्ण-
वेलां द्वादशांग जे पाप रहित छे तेज शास्त्र
छे, तेज वेद छे के जेमां हिंसानो उपदेश
बीलकुल नथी, तेज षट्कर्म छे के जेमां
पाप त्याग करवानुं कहेळुं छे; जेमके देव-
पुजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप
अने दान. गर्भादिथी निर्वाण पर्यंत जे
क्रिया शास्त्रमां बतावेली छे तेज खरी छे,

अने गर्भथी मांडी श्मशान पर्यंतनी लौकिक क्रिया खोटी समजवी. जे मंत्रमां हिंसा छे ते मंत्र नथी. भगवान तेज छे के जे सकल सुर असुर नरने शांति आपनार छे. जे महा क्रूर, मांसाहारी, भयानक होय ते देव कहेवाय नहिं. जे जिनभाषित छे, मुक्तिनुं साधन छे तेज मुनि, अर्जीका उत्तम श्रावकनो भेख छे, वाळ, चामडां, चीपीया बगेरे राखी फरवुं ते भेख आगळ प्रमाण नथी. मांस रहित भोजन तेज शुद्ध आहार छे. जे मांसाहारी छे ते बधा जीव-नो शत्रु छे. जे मुनि दयाळु छे तेनेज अ-हिंसानी शुद्धता छे अने जे पशु वधमां रत छे ते कदी शुद्ध परीणामी नथी. विषयकामथी तेज विरक्त छे के जेणे मनथी इंद्रिय जीती छे, स्त्रीसंगथी पराङ्गमुख छे अथवा जे श्रावक स्वस्त्री विषे संतोषी छे अने परदारा विषे पोते भाई समान छे तेज कामथी शुद्ध छे. बीजा बधा तो विष-यना पुतळारूप छे.

आवी रीते ए भव्यजीव उत्तम वक्ता पासेथी धर्म श्रवण करी दयाना मार्गमां बुद्धि धारण करे अने हिंसामांथी प्रीति दूर करे त्यारे भव्यजीव धर्मरूपी जन्म धारण करनार थाय छे. श्री गुरु तो धर्म उपजावनारा पिता केहेवाय अने तत्त्वज्ञान गर्भ केहेवाय. तेनाथी नवीन अवतार धारण करवो, ते अवतार क्रिया गर्भधान क्रियानी माफक समजवी. जन्मनी प्राप्ति

आ बन्ने गर्भधान अने अवतार क्रियाथी थाय छे. द्विज एटले के (द्वि=बे वार. ज=जन्मवुं) ब्राह्मण, क्षत्री अने वैश्य ए त्रणे वर्गने आ बधा संस्कार करवानो अधिकार छे. जेम कोईक जीव जुनुं शरीर छोडी नवीन धारण करे छे अने ते शरीर जन्म केहेवाय छे, तेज प्रमाणे मिथ्यात्व अवस्थानो त्याग करी, जीव ज्यारे सम्यक्त्व धारण करे त्यारे ते धर्म जन्म अथवा अवतारक्रिया केहेवाय छे.

वळी तेने व्रतनो लाभ थाय, एटला माटे तेणे गुरुना चरणे प्रणाम करी विधि-पूर्वक आठ मूळगुण व्रत धारण करवां तेनुं नाम व्रतलाभक्रिया छे.

उपवास करी विधिपूर्वक श्री जीनेश्वरनी पूजा करवा मंदिरमां झीणा दळेला लोटथी अथवा अनेक रंगना भूकाथी आठ पांख-डाना कमळनुं मंडळ अथवा समोसरणनुं मंडळ विधि जाणनार पासे कढावी तेना मध्यभागमां श्री जिनेश्वरनी प्रतिमा स्था-पन करी पूजन करे. पछी ते भव्यजीवने प्रतिमा सन्मुख बेसाडी, गुरुए तेना मस्तक-नो स्पर्श करी एम केहेवुं के 'तने श्रावकनी दिक्षा आपुं छुं.' पंचमुष्टिनुं विधान करी तेना मस्तकनो स्पर्श कर्या पछी केहेवुं के 'आ दिक्षार्थी तुं पवित्र थयो छे' एम कही तेना मस्तक पर तीर्थोदक रेडी पंच नमोकार मंत्रनो उपदेश आपी एम केहेवुं के 'आ मंत्र तने बधा पापमांथी मुक्त करी

पवित्र करे.' आ विधि पूरी थये जमवा माटे घेर जवानी रजा आपवी. गुरुए आज मारी उपर मोटी कृपा करी छे एम समजी शीष्ये हरखभेर घेर जवुं. आ संस्कारनुं नाम 'स्थानलाभ' छे.

घेर गया पछी पोताना घरमां जे मिथ्यात्वीना देव, देवीओ, गणेश, गणपति, माता, हरमान वीगेरे जे कई होय, ते प्रत्ये एम कहेवुं के आजसूधी अमे अमारी अज्ञानताने लीधे तमारो मोटो आदर करी पूजा-भक्ति करी, पण आजथी हवे मने श्री जिनेश्वर देवज पूज्य छे माटे तेमनीज पूजा करीशुं, तो तमे अमारा उपर गुप्से न थतां अहींथी नीकळी बीजी जग्याए जाव. एम कही ते मिथ्यादेवनी मूर्तिने एवी कोई जग्याए मुकवी के ज्यां हरकत न थाय, तेम तेमनी पूजा पण न थाय. आ प्रमाणे पेहेलांना मिथ्यादेवने तजी शांत जिनदेवतानी पूजा करवी तेनुं नाम 'गणग्रह' छे.

पछी भगवाननी पूजा करी, उपवास करी, द्वादशांग वीगेरे शास्त्र सांभळी, जिनवाणी धारण करवी, तेनुं नाम पुजाराध्य छे. पछी पुण्यकारक चौद अंगपूर्व शास्त्रनो अर्थ पोताना साधमीं भाईओ साथे सांभळबो; तेनुं नाम पुण्ययज्ञ छे. पछी जिनसूत्र सांभळी व्रतमां दृढता थाय एटला माटे न्याय, व्याकरण अलंकार, गणित, विगेरे लौकिक विधानो अभ्यास करवो

एनुं नाम 'दृढचर्या' छे. प्रत्येक मासनी बे आठम अने बे चौदशे उपवास करी रात्रे कायोत्सर्ग धारण करवो तेनुं नाम उपयोगिता छे.

हवे अंतरंग शुद्धि माटे यज्ञोपवित (जनोई) धारण करी, व्रत, दिक्षानुं पालन देवगुरुनी साक्षी साथे विधि सहित करी, शुक्लवस्त्र पहेरी षट्कर्म बरोबर नित्य करी जिनमार्गी थई गोत्र, जाति वीगेरे धारण करवां, ए उपनीति नामनो नवमो संस्कार छे.

जनोई धारण करी व्रतचर्या पाळी सातमुं अंग जे उपासकाध्ययन तेना सूत्रोनो अभ्यास गुरु पासे करवो, तेनुं नाम व्रतचर्या छे. आ व्रत करतां सुधीमां ब्रह्मचारी रूपे रहे, चोटलीनी गांठ वाळी, माथुं उघाडुं राखी, गळामां जनोई पेहेरी, कम्मरे मुंजना लण तार वीटाळी; पवित्र उज्वल धोती पहेरी, वगर जोडे, धोतीआ तथा दुपट्टा सीवाय बीजा कईपण विशेष वस्त्र वगर, घरेणां वगर, उपासकाध्ययननो पाठ करी रहे, त्यारे गृहस्थाचार्यनी समक्ष ब्रह्मचारीनो भेख उतारी घरेणां अंगीकार करवां तेने 'व्रतावतारण' कहे छे.

पछी गुरुनी समक्ष पोतानी स्त्रीने श्राविकानां व्रत अपावी तेनो स्वीकार करवो. जो ते श्राविकानां व्रत न पाळे, तो तेनो स्वीकार करवो नहिं, ए विवाह नामनो बारमो संस्कार केहेवाय छे. माता पिता जे द्रव्य आपे ते लईने स्त्री सहित जुदा रहेवुं

તેનું નામ 'વર્ણલાભ' છે. નિત્ય ષટ્કર્મ પૂરેપૂરાં કરવાં તે કુલ્લચર્યા કહેવાય છે. વ્રત, અધ્યયન કરે, પરજીવ ઉપર દયા કરે, પ્રાયશ્ચિત્ત કરે, શ્રુતિ ઇટલે કેવલીની દિવ્ય ધ્વનિ, સ્મૃતિ ઇટલે ધર્મશાસ્ત્ર અને પુરાણ ઇટલે મહાપુરુષોનાં ચરિત્ર વાંચે, ગૃહસ્થાશ્રમ ભોગવે, તેને ગ્રહીસિતા કહે છે.

પછી વિવિધ પ્રકારના ઉપવાસ કરી ગૃહ કારભાર પુલને સોંપી દઈ પોતે વિરક્ત થઈ શાંત જીવન ગાઢવું તેનું નામ પ્રશાંતતા છે. પછી પોતાના પુત્ર ગૃહકારભાર બરાબર ચલાવે છે, એમ લાગે ત્યારે પોતે ઘર છોડી ચાલ્યા જવું તેનું નામ 'ગૃહત્યાગ' છે. પછી ધીરે ધીરે શ્રાવકની અગીયારે પ્રતિમા પાઠી એક વસ્ત્ર ધારણ કરી રહેવું તેનું નામ 'દિક્ષા' છે. પછી વસ્ત્રનો ત્યાગ કરી નિર્ગથ મુનિની દિક્ષા લેવી તેનું નામ 'જિન-રૂપતા' છે.

જે મન્યજીવ આ ક્રિયાઓ અથવા સંસ્કાર નિશ્ચયપૂર્વક આદરે, તે શીઘ્ર નિર્વાણ પામી અનંત સુખ અનુભવે છે.

પ્રિય વાંચનાર, બ્રાહ્મણોમાં આઠમે વર્ષે જનોઈ પેહેરાવે છે અને ગાયત્રીનો મંત્ર શીખવાડે છે, ઈંગ્રેજોમાં પણ બાપ્ટીસ્મની ક્રિયા કરાવે છે, તેમજ મુસલમાનોમાં પણ ધાર્મિક ક્રિયા કરાવે છે તો આપણાં કંઈ આવા સંસ્કારની પ્રથા જોવામાં આવે

છે ? નહીં. તો એ કેટલું બધું શોચનીય છે? આપણાં ગુરુના ઉપદેશના અભાવે મિથ્યા-ત્વીઓના આચાર-રિવાજ ઇટલા ઘુસી ગયા છે કે, આપણે એમ પણ સમજી શકતા નથી કે અમુક રિવાજ શાસ્ત્રવિહિત છે કે શાસ્ત્ર નિષિદ્ધ છે. આપણી લૌકિક ક્રિયામાં ધર્મની વિધિ તો જોવામાં આવતીજ નથી. બ્રાહ્મણ અષ્ટપદ્ધતિ જેમ સમજાવે તેમ કંકુના છાંટા આમ તેમ નાંખી વિધિ પૂરી થઈ જાણી પોતાને ધન્ય માને છે. હાલની વિધિ બ્રાહ્મણો કરાવે છે, તે તદ્દન આપણા શાસ્ત્ર વિરુદ્ધ હોવા છતાં ગાડરીઆ પ્રવાહમાં તળાઈએ છીંપે. વઢી હોઢી, શીતલા સાતેમ, શ્રાદ્ધ, પીપળે પાણી રેડવું, નવરાંતર કરવાં, ધરોઆઠેમ, સમચરી (સંવત્સરી), બારમું, રોવુંકુટવું; જવારા વાવવા, આજો કરવો, પીર, હનુમાન, માતા, બાવા, મૂવા, જતી, જોગીની બાધા આશ્વઢી સંતતિ માટે રાશ્વ-વી વીગેરે તદ્દન મિથ્યાત્વીઓનું અનુકરણ નથી તો શું છે ? આપણે પોતાના ધર્મનું કંઈ ન જાણીએ ઇટલે આપણો પડોશી બ્રાહ્મણ વાણીઓ જેમ કરે તેમ કરવાનું મન થાય એ સ્વાભાવિક છે, પણ એનું ફલ કંઈ નથી એમ સ્વાભાવિક સમજવું. આપણા શાસ્ત્રમાં જુદી જુદી ઉમરે જે સંસ્કાર કરવાના બતાવ્યા છે, તેજ સ્વરા શ્રાવકે કરવાના છે, માટે હવે જાગ્યા ત્યારથી વ્હાણું વાયું સમજી આવા રિવાજોને તિલાંજલી અપાય તો સારું. આવી આવી ક્રિયાઓ,

विधिओ, जे शास्त्रमां बतावेली होय ते विद्वानो द्वारा शोधावी बहार पाडवी ए दरेक खरा श्रावकनुं काम छे. आपणामांथी उपदेशना अभावे घणाक वैष्णव थई गया छे अने एमने एम चालशे तो बीजा पण थशे, तेनो दाखलो जुओ सुरत अने पादरा.

आ मिथ्यात्व, ज्यांसूधी आपणो स्त्रीवर्ग सूधर्यो नथी, त्यां सूधी कदी दूर थशे नहिं, कारण के कदाच पुरुष अमुक बाबत न माने, पण जो घरमां पीपळे पाणी रेडवा ! हठ ले अने रुसणुं घाले, तो मरदनी मगदूर नथी के ना पाडी शके!! आपणा घरनी घटमाल आ प्रमाणे चाले छे तेनो ख्याल दरेक विवेकी बंधुना मगजमां हवे आव्यो हशे, माटे जेम बने तेम स्त्री पाठशाळा तथा छोकराओनी पाठशाळा झटपट खोलो. हवे सन्मार्गनो रस्तो आपणे हाथेज शोधी लेवानो छे, माटे बीजाना उपर भरोसो राखवो, ए बेवकुफी-भरेली गणाशे.

आ बाबतमां वडोदराना भाईओने धन्यवाद घटे छे. तेमणे आठ नव महिनाथी स्त्री पाठशाळा खाली पोते मासिक मदद आपी, स्त्री शिक्षक रोकी मिथ्यात्व अज्ञानता दूर करवा तैयार थया छे, जेथी स्त्रीओ नित्य धर्माभ्युत्थान पान करी रही छे, अने आशा छे के हवे संख्यामां पण वधारो थशे.

ऐलक, झुलक, ब्रह्मचारी, भट्टारक वीगेरे सद्गुरु प्रत्ये विनंती के जमानो ओळखी जैनधर्मनो उपदेश करवा कटी-बद्ध रहेवुं, एज तेमनी फरज छे एम समजवुं. आ जमानो ज्ञानने चाहवावाळो छे. अंधेर समय जतो रखो छे. हवे तो चारित्र अने ज्ञानथी जे उत्कृष्ट हशे, तेज विशेष मानने पात्र गणाशे !

आपणे जैन धर्मानुयायी कहेवाईए, पण रीतरिवाज जोतां शुद्ध जैन कहेवाईए के केम तेनो बिचार मारा सुन्न वांचके पोतेज करवो. षटकर्म भूली गया, अष्ट मूळगुण जता रखा, पंच अणुव्रतने बदले कईक बीजांज व्रत ! उभां थयां, जेबां के रात्रेखावुं, वीगेरे वीगेरे. वांचनार, आ लेखमां कोई संस्कार संबंधी गेरसमज थई होय तो कृपा करी लखी जणावशे, तो आभार साथे विशेष स्पष्ट करवा प्रयत्न करीश.

बेचते नहीं बांटते हैं

बाल उद्धान का साबुन-विज्ञान किसी तरह के कष्ट के बालों को ५ मिनट में उडाकर साफ कर देता है कौमत् फी बक्स । आने १२ बक्स एकसाथ लैने से १ रास्कोष सिष्टम लीवर बडी साथ में मुफ्त भेजेंगे । मंगाने का पत्रा-
शर्मनएंड कं:सतघडामथुरा

ત્યાગનું નવું સ્વરૂપ અથવા હવે આપણને કઈ જાતના ત્યાગની જરૂર છે ?

લેખક:-અમૃતલાલ સુંદરજી પઠીઆર-સુખંઈ.

દુનિયાનાં દરેક ધર્મશાસ્ત્રો જગતને એમ શીખવે છે કે ત્યાગ કર્યા વિના કદી પણ ઉદ્ધાર થઈ શકે તેમ નથી. ધર્મની બહારની ક્રિયાઓમાં જુદા જુદા ધર્મવાળાઓ વચ્ચે ગમે એટલો મતભેદ હોય, છતાં પણ ત્યાગની આખતમાં તો દુનિયાના સૌ મુખ્ય ધર્મવાળાઓ સંમત છે. જે કે જુદા જુદા ધર્મની અંદર જુદી જુદી જાતનો ત્યાગ કરવાનો કહેલો હોય છે, એટલુંજ નહિ પણ ત્યાગની રીતિઓમાં પણ ઘણી જાતનો તફાવત હોય છે. છતાંપણ કોઈને કોઈ રૂપમાં જગતના બધા ધર્મવાળાઓ ત્યાગનો સ્વીકાર કરે છે. જેમકે બ્રાહ્મણો કહે છે કે વૈદિક ધર્મમાં એ સિદ્ધાંત છે કે સંન્યાસ લીધા વિના મોક્ષ મેળવી શકાયજ નહિ. ઈશુખ્રિસ્તે એમ કહેલું છે સોયના નાકામાંથી કદાચ જાંટ ચાલ્યો જાય એ વાત બનવા જોગ છે, પણ શ્રીમંતો શ્રીમંત રહીને સ્વર્ગમાં જાય એ કદી પણ બનવાનું નથી. મહાત્મા ગાંધે પણ બહુ ભાર મૂકીને કહેલું છે કે ત્યાગ વિના આરો આવી શકે તેમ નથી. જૈન ધર્મમાં પણ મુખ્ય એજ સિદ્ધાંત છે કે સૌસૌના પ્રમાણમાં અમુક હદ સુધીનો ત્યાગ તો જોઈએજ. પેગંબર જરથોસ્ત પણ એકસ પ્રકારના ત્યાગને ચાહનારા હતા. યાહુદીઓના પેગંબર મુસાનો પણ સિદ્ધાંત ત્યાગને મળતોજ હતો, એટલુંજ નહિ પણ હાલના જમાનામાં ખીબ જે જે

નવા ધર્મો ચાલે છે, તથા નવા નવાપથો નીકળેલા છે તે સૌ સંપ્રદાયો કોઈને કોઈ રૂપમાં ત્યાગની હિમાયત કરનારા છે. આવી રીતે જગતમાં દરેક મુખ્ય ધર્મો ત્યાગને ધ્યાન આપવાવાળા છે, માટે હવે આપણે એ જાણવું જોઈએ કે ત્યાગની શું જરૂર છે ? શા માટે દુનિયાના બધા ધર્મવાળાઓ આગ્રહી છે ? અને ત્યાગ વિના કલ્યાણ થઈ શકેજ નહિ તેનું કારણ શું ? એ વાતો આપણે જાણવી જોઈએ.

ત્યાગ કરવાથી થતા ફાયદા.

મહાત્માઓ કહે છે કે ત્યાગ કરવાથી જીવાત્માનું કલ્યાણ થઈ શકે છે અને ત્યાગ કરવાથી જીવાત્મા સંસારના બંધનમાંથી મુક્ત થઈ શકે છે. માટે ત્યાગ એટલે શું ? તેનું ખરું સ્વરૂપ આપણે જાણવું જોઈએ. એ માટે જુદા જુદા મહાત્માઓ જુદી જુદી વાતો કરે છે, પણ તે બધામાં સાર એજ હોય છે કે જગતની કોઈપણ વસ્તુનો મોહ રાખવો નહિ અને બધી વસ્તુઓને તજ ઈર્ષ્ય સર્વ સ્ત્રીજ્ને તથા આબતોમાંથી મનને ખેંચી લેવું તેનું નામ ત્યાગ છે. ત્યાગની બહુ વિશેષ વ્યાખ્યા કરવા બેસીએ, તો તેમાં ખીબું ધણુંજ કહી શકાય. પણ ટુંકામાં એજ કે અંતરમાંથી તથા બહારથી બની શકે એટલા વિષયોને તથા પદાર્થોને તજ દેવા, તેનું નામ ત્યાગ છે. આમ હોવાથી ત્યાગ થવાની સાથેજ ઘણી જાતની ઉપાધિઓ મટી જાય છે તેથી મન ઉપરનો બોલો ઓછો થઈ જાય છે, એટલે જે વિષયમાં મનને ઉંડું ઉતારવું હોય, તે વિષયમાં તે જલદીથી જઈ શકે છે અને જલદી એકાગ્ર થઈ શકે છે, તેથી જે વસ્તુ પ્રાપ્ત કરવાની હોય, તે વસ્તુ બહુજ સહેલાઈથી પ્રાપ્ત કરી શકાય છે. એ ત્યાગનો મોટામાં મોટો ફાયદો છે. એ સિવાય ત્યાગથી

શાંતિ મેળવી શકાય છે. બુદ્ધિને બહુ જલ-દીથી ને અતિશય ખીલવી શકાય છે, લોકોના આશિર્વાદો મેળવી શકાય છે, પવિત્રમાં પવિત્ર જીવન ગાળી શકાય છે અને મહા આત્મિક આનંદ ભોગવી શકાય છે; કારણકે ત્યાગની ખુબીજ એ છે કે ત્યાગની આગળ જગતની બધી વસ્તુઓ નીચી પડી જાય છે, એટલુંજ નહિ, પણ ખરા ત્યાગીને કોઈપણ વસ્તુઓની જરૂર પડતી નથી, અને જીવન જીવવાની રાખવા માટે જે વસ્તુઓની જરૂર હોય તે વસ્તુઓ બહુજ સહેલાઈથી તેઓને મળી શકે છે એટલે તેઓની અનેક જાતની ઉપાધિઓ ઝોછી થઈ જાય છે. તેથી પરમ-તત્ત્વની શોધ પાછળજ તેઓ પોતાની બધી શક્તિઓ રોકી શકે છે, એટલે તેઓને અલૌકિક આનંદ થાય તેમાં કંઈ નવાઈ નથી.

ત્યાગ કોણ કરી શકે ?

લાગ આવી મહાન વસ્તુ છે અને જગતના દરેક ધર્મો તથા દરેક મહાત્માઓ તેને કબુલ રાખે છે, છતાં પણ તે એવી મુશ્કેલ બાબત છે કે કરોડો માણસમાંથી કોઈકથીજ ત્યાગ બની શકે છે, અને તેમાં પણ હજારો ત્યાગીઓમાંથી કોઈકનોજ લાગ સાચો હોય છે. બાકી ઘણાખરા તો લાગના અમુક અમુક અંગમાંજ રહી ગયેલા હોય છે; કારણ કે ખરેખરો લાગ કરવો, એ વાત મોહવાદીઓને માટે બહુજ મુશ્કેલ છે, માટે કેટલાક સંતો એમ કહે છે કે જેનાં અનેક જન્મનાં પુન્ય ઉદય થયાં હોય તેને લાગ કરવાનું સૂઝે છે, જેના જગતના મોહ છૂટી ગયા હોય તેને લાગ કરવાનું સૂઝે છે, જેને વિષયોનો કંટાળો લાગતો હોય તે માણસથી લાગ બની શકે છે, જગતના સુખદુઃખના ઘડકાથી જે માણસો હારી ગયા હોય અને નિરાશ થઈ ગયા હોય, તેઓથી ત્યાગ બની શકે છે, જે માણસો પોતાની ટુંક વખતની હયાત જીવન કરતાં પરલોકના

જીવનની બહુજ વધારે મોટી કીંમત સમજી શકતા હોય, તે માણસોથી ત્યાગ બની શકે છે. દુનિયાદારીનાં વિષયોનાં સુખો કરતાં આત્માના આનંદનું સુખ અલૌકિક છે, એમ જેને વિશ્વાસ એસી ગયો હોય અથવા અગર એ વાતની ખાત્રી થઈ ગઈ હોય તે માણસો ત્યાગ કરી શકે છે, અને જે સબજનો ત્યાગીઓની સોબતમાં રહેતા હોય તથા જેઓ કાંઈક ખાસ વધારે ઉંડાં તત્ત્વો સમજેલા હોય તેવા માણસો ત્યાગ કરી શકે છે, અને તેઓનો ત્યાગ નભે છે તથા ફાયદાકારક થાય છે, પણ એ સિવાય દેખાદેખીને લીધે જે ત્યાગ કરવામાં આવે, રિવાજોની ખાતર જે ત્યાગ કરવામાં આવે, ફરજ પડવાને લીધે જે ત્યાગ કરવામાં આવે, લાચારીને લીધે જે ત્યાગ કરવામાં આવે, મૂર્ખાઈને લીધે આવેગમાં આવી જઈને જે ત્યાગ કરવામાં આવે અને મનમાં અનેક જાતની વાસનાઓ ભરી રાખીને બહારથી થોડીક વસ્તુઓનો જે ત્યાગ કરવામાં આવે, તે ત્યાગની કાંઈ વધુ કીંમત નથી. અને એવા ખોટા ત્યાગથી કાંઈ સંગીન ફાયદો થતો નથી. એટલુંજ નહિ પણ એવા ઉપલકીયા ત્યાગથી ઘણી વખત પોતાને તથા જનસમાજને બહુ તુકશાન થાય છે. માટે યાદ રાખજો કે જેમ ખરા ત્યાગના ફાયદા બેહદ છે તેમજ ખોટા ત્યાગથી થતી ખરાબીઓ પણ અતિશય છે, માટે ત્યાગમાં ન સપડાઈ જવાય એ બહુજ ધ્યાનમાં રાખવાની જરૂર છે કારણકે હાલના વખતમાં અપણા દેશમાં ખોટો ત્યાગ અતિશય વધી ગયેલો છે તેને લીધેજ દેશની ખરાબી થાય છે, માટે ખોટા ત્યાગમાં ન ફસી પડાય એ વાત બહુજ સંભાળવા જેવી છે.

ત્યાગના પ્રકાર.

સાચા ત્યાગમાં બેહદ ફાયદા છે અને ખોટા ત્યાગમાં અતિશય ખરાબી છે, માટે હવે આપણે ત્યાગના પ્રકારો જાણવાની તબવીજ કરવી જોઈએ; કારણકે જગતમાં કાંઈ

એકજ પ્રકારનો ત્યાગ ચાલતો નથી, પણ જુદા જુદા ધર્મવાળા માણસો જુદી જુદી ભતના ત્યાગ ઉપર ભાર મૂકે છે અને જુદી જુદી પ્રકૃતિના માણસો જુદા જુદા પ્રકારના ત્યાગનો સ્વીકાર કરે છે, માટે ત્યાગના પ્રકારો આપણે જાણવા જોઈએ.

નાના નાના તો ત્યાગના અનેક ભેદો છે, પણ મહાત્માઓએ ખાસ કરેલા એવા ત્યાગના મુખ્ય ત્રણ ભેદ છે, તે એ કે—

(૧) વસ્તુઓનો ત્યાગ.

કેટલાક લોકો એમ કહે છે કે જગત્ની બધી વસ્તુઓનો તથા બધા વિષયોનો ત્યાગ કરવો જોઈએ, અને તે એટલે સુધી કે વસ્ત્રનો, ખોરાકનો, તથા પાણીનો પણ ત્યાગ કરવો જોઈએ. જ્યારે આવો ત્યાગ હોય ત્યારે પછી ધરખાર કે સગાંવહાલાનો ત્યાગ થાય, તેમાં તો કાંઈ નવાઈજ નથી. આવી રીતે જગત્ની બધી વસ્તુઓને તજ દેવી અને ઘણા પ્રકારનાં કષ્ટ સહન કરવાં તથા છેવટે પોતાના દેહને પણ તજ દેવો તેવું નામ ત્યાગ કહેવાય છે, એમ કેટલાક લોકો સમજે છે; અને કાંઈ કાંઈ તો એ પ્રમાણે વર્તવાને પણ કાશીષ કરે છે કારણકે તેઓ એમ કહે છે કે આવી રીતે વસ્તુઓનો તથા વિષયોનો ત્યાગ કર્યા વિના મન વશ થઈ શકે તેમ નથી. અને એવા આકરા ત્યાગ વિના કર્મના બંધનમાંથી છુટી શકાય તેમ નથી. આમ સમજીને તેઓ જાંદગીને જરૂરની ચીજોનો પણ બહુ હઠ કરીને ત્યાગ કરે છે, અને એવો અતિશય ત્યાગ કરવો તેનેજ તેઓ પુરુષાર્થ માને છે.

(૨) માનસિક ત્યાગ.

બીજા પ્રકારના ત્યાગીઓ કહે છે કે મનુષ્યના શરીરની રચનાજ એવા પ્રકારની છે કે તેઓ કદીપણ જગત્ની સંપૂર્ણ વસ્તુઓનો સંપૂર્ણ રીતે ત્યાગ કરી શકેજ નહિ, અને જો કદી એવો ત્યાગ કરવા જાય,

તો તેઓનું શરીર ટકી શકેજ નહિ; કારણકે કાષ્ઠપિણ માણસ એક ક્ષણ પણ કાષ્ઠપિણ ભતની ક્રિયા કર્યા સિવાય રહી શકતુંજ નથી. માટે બહારની વસ્તુઓ તજવાથી કાંઈ ખરો ત્યાગ થઈ શકતો નથી, પણ ખરો ત્યાગ પાળવા માટે તો તત્ત્વ ઓળખવું જોઈએ. દેહ એ શું વસ્તુ છે ? ઇન્દ્રિયોની સત્તા કેટલી છે ? મન અને બુદ્ધિ ક્યાંસુધી કામનાં છે ? અને આત્માનું સ્વરૂપ કેવું છે ? ક્યા મૂળ કારણને લીધે જન્મ લેવો પડે છે? અને એ બધાં કારણોથી કેવી રીતે અલગ થઈ શકાય, એ બધી વસ્તુઓ યોગ્યપે યોગ્યપી રીતે સમજી લેવાથી જગત્નો મોહ ઓછો થઈ જાય છે અને જાંદગી ટકાવવા માટે જે ચીજો જરૂરની હોય તે ચીજોનો ઉપયોગ કરતાં છતાં ત્યાગી રહી શકાય છે. કારણ કે સત્ય જ્ઞાનને લીધે જગત્ની બધી વાસનાઓ બળી જાય છે, અને આશાતૃષ્ણા મટી જાય છે. તેથી કાષ્ઠપણ વસ્તુમાં ખાસ ચાહીને જીવ આશક્ત થતો નથી, એટલે એવા જ્ઞાનીઓથી સાચો ત્યાગ બની શકે છે, અને જેને જ્ઞાન જ્ઞાનદષ્ટિથી આવી રીતે યોગ્યપે યોગ્ય પરમતત્ત્વ સમજાઈ ગયું હોય. તેને પછી બહારની નાની નાની વસ્તુઓ નડી શકતી નથી, માટે એવી વસ્તુઓના ત્યાગ સારૂ મહેનત લેવાની જરૂર નથી. એ વસ્તુઓ તો પ્રારબ્ધના ભોગ પ્રમાણે માત્ર થોડોકજ વખત થયા કરવાની છે. એમ સમજીને તેઓ બહારના ત્યાગ ઉપર ભાર મૂકતા નથી, પણ અંતરની યોગ્યપી સમજણ ઉપરજ વધારે આધાર રાખે છે અને એ પ્રમાણે વર્તવાવાળા માણસો પણ કાંઈ કાંઈ નીકળી આવે છે.

(૩) ઈશ્વર પ્રણિધાન.

ત્રીજા પ્રકારના ત્યાગને ઈશ્વર પ્રણિધાન કહેવામાં આવે છે. એ ત્યાગની રીતિ એવી છે કે તેઓ એમ સમજે છે કે અમે જે કાંઈ કામકાજ કરીએ છીએ તે કાંઈપણ અમારે

પોતાને ખાતર કરતા નથી, પણ પ્રભુની ઇચ્છાને આધીન થવા સાર તેના હુકમ પ્રમાણે કરીએ છીએ. અને તેને અર્થેજ આ દુનિયામાં અમે આવેલા છીએ, તેને અર્થેજ જીવવાનું છે, તેને અર્થેજ મરવાનું છે, અને તેને અર્થેજ જગતના બધા વ્યવહારો ચલાવવાના છે. એમાં અમારું કાંઈ પણ નથી. અમે તો તે દોરવે તેમ દોરાયા કરીએ છીએ. આમ સમજીને તેઓ પોતાનાં બધાં કર્મો કરે છે. અને એમ સમજે છે કે આવી રીતે ઇશ્વરને આધીન રહીને જીવન ગાળવું અને તેના ધક્કા અંતરમાં લાગવા દેવા નહિ તેનુંજ નામ સાચો ત્યાગ છે. કારણકે જગતની બધી વસ્તુઓનો કેાઈપણ માણસથી કદીપણ પૂરેપૂરો ત્યાગ થઈ શકતો નથી, તેમજ આ એક જાંદગીમાં ખરેખરું છેવટમાં છેવટનું જ્ઞાન પણ પ્રાપ્ત થઈ શકતું નથી, અને જે થોડું ધણું જ્ઞાન થાય, તે પણ કાંઈ બધે વખતે અને બધી સ્થિતિમાં ટકી શકતું નથી, એમાં વધઘટ થયાજ કરે છે; માટે એકલા વસ્તુઓના ત્યાગને ભરોસે રહેવું અગર શુદ્ધિને ભરોસે રહેવું તે કરતાં પરમાત્માને ભરોસે રહેવું એ અમને વધારે સારું લાગે છે. આમ સમજીને કેટલાક ભગતો ઇશ્વરના હાથમાં પોતાની લગામ સોંપી દે છે અને તેની ઇચ્છા પ્રમાણે પોતાનો સંસારવ્યવહાર ચલાવ્યા કરે છે, અને પોતાના દેહના નિર્વાહને અર્થે ધણી જાતનાં કર્મો કર્યા કરે છે, છતાંપણ તેઓ ત્યાગનો કાંઈક આનંદ ભોગવી શકે છે, અને એવી રીતે વર્તવું તેને સાચો ત્યાગ માન્યા કરે છે.

આવી રીતે આ દુનિયાની અંદર મુખ્ય ત્રણ પ્રકારના ત્યાગ અનાદિકાળથી ચાલ્યા આવે છે અને એ દરેક પ્રકારના ત્યાગીઓને બીજાઓનો ત્યાગ અધુરો લાગ્યા કરે છે. આ ત્રણે પ્રકારના ત્યાગમાંથી અનેક વિદ્વાનોએ

અનેક બાબતો લખેલી છે, અને તેનાં ધણાંએ ખંડન મંડનો થયેલાં છે. પણ એ બધી બાબતો સાથે હાલમાં કાંઈ આપણને કામ નથી, કારણકે આપણે તો ત્યાગનું નવું સ્વરૂપ જાણવા ઇચ્છીએ છીએ અને હાલના વખતમાં આપણને કઈ જાતના ત્યાગની જરૂર છે, તે બાબત સમજવા ઇચ્છીએ છીએ પણ તેમાં વચમાં આ બધી બાબતો કહેવાનું કારણ એ છે કે ત્યાગને લગતી આસપાસની ધણી હકીકતો જાણતા હોય, તો આપણે કાંઈક વધારે સારા નિર્ણયપર આવી શકીએ, અને વધારે ભેરથી આપણા વિચારો જાણવા શકીએ, તે માટે આ બધી હકીકતો જાણવાની જરૂર છે.

ઉપર જે ત્રણ પ્રકારના ત્યાગ કહ્યા, તે ત્યાગ એવા ને એવા રૂપમાં હાલના વખતમાં ધણા લોકોને કામ લાગી શકે તેમ નથી, કારણ કે હાલના વખતનું વાતાવરણ કાંઈક જુદીજાતનું છે, અને હાલના વખતની જરૂરીઆતો ધણી વધારે પડતી છે, તેમજ આ શુદ્ધિબળનો અને કર્મચોગનો જમાનો છે, એટલે બધી વસ્તુઓનો ત્યાગ કરવો અને દિગંબર બની જંગલમાં એકાદ ગુફામાં કે એકાદ મંદિરમાં પહ્યા રહી અન્ન પાણી વિના મરી જવું, એવો ત્યાગ હાલના લોકોને પરવડી શકે તેમ નથી, તેમજ જ્ઞાન-યોગ વડે, સાંખ્ય યોગવડે તત્ત્વ સમજવાથી જે ત્યાગ થાય છે તેવો ત્યાગ પણ આજના પ્રવૃત્તિના જમાનામાં નભી શકે તેમ નથી. કારણ કે આપણે કાંઈ શ્રદ્ધાના જમાનામાં નથી અને આપણે કાંઈ અસુક એકજ જાતના વિચારોમાં ઉછરી શકીએ તેવા સંજોગોમાં નથી, પણ આપણે તો અનુભવ-સિદ્ધ જ્ઞાન માંગીએ છીએ, અને આપણે તો અનેક પ્રકારનું જ્ઞાન મેળવવા ઇચ્છીએ છીએ, એટલે અસલના લોકો શ્રદ્ધાથી અને એકજ જાતના અભ્યાસથી જેમ તત્ત્વ સમજી

જતા અને એજ સ્થિતિમાં સંતોષ રાખી ખેસતા તેમ હાલના વખતમાં આપણાથી બની શકે તેમ નથી. એટલે એ જ્ઞાનનો ત્યાગ પણ સર્વને ખરેખરો ઉપયોગી થઈ શકે તેમ નથી.

ધૃશ્વર પ્રણિધાનનો ત્યાગ બહુ ઉંચો છે છતાંપણ એ ત્યાગ પણ હાલના વખતમાં બધા લોકોને કામ આવી શકે તેમ નથી. કારણ કે જૈન તથા બુદ્ધ વગેરે ધર્મવાળાઓ ધૃશ્વરને જગતકર્તા તરીકે માનતા નથી, તેમજ યુરોપ, અમેરિકામાં હાલમાં કેટલાક મતના લોકો પણ ધૃશ્વરને માનતા નથી. એ સિવાય ધૃશ્વરને માનવાવાળા લોકોમાં પણ ઘણા માણસો એવા હોય છે કે જેઓ જરૂર જેટલો પૃથુ બહારનો ત્યાગ પાળતા નથી. અને જ્ઞાનની આબતમાં તો સાવ મોટું મીઠુંજ હોય છે અને તેમ છતાં અમે અંતુ ધૃશ્વરને અર્થે કરીએ છીએ એટલે અમને પાપ પુન્ય લાગે નહિ એમ સમજી ઠગાયા કરે છે કારણકે પાપપુણ્ય લાગે નહિ અને કર્મ કરતાં છતાં ત્યાગી ગણી શકાય એવી તેઓની સ્થિતિ હોતી નથી અને એ પ્રમાણે બનવું હાલના વખતમાં બહુ મુશ્કેલ છે એટલે ધૃશ્વર પ્રણિધાન જમાનાને બંધ ખેસતો થઈ શકે તેમ નથી.

આવી રીતે ત્રણ જાતના જે મુખ્ય લાગ જગતમાં ચાલે છે તેથી સમજી લોકોને સંતોષ થતો નથી. માટે હવે આપણે એવો વિચાર કરવો જોઈએ કે જે ત્યાગ દુનિયાના બધા વર્ણવાળાઓને, બધા દેશવાળાઓને અને બધી જાતવાળાઓને કામમાં આવી શકે એવો ત્યાગ કયો એ માટે હાલના વખતમાં સમર્થ સંતો તથા વિદ્વાનો કહે છે કે—

પોતાના સ્વાર્થને છોડી દેવો અને પરમાર્થમાં જીવન અર્પણ કરવું તેવું નામ ખરો ત્યાગ છે.

(અપૂર્ણ.)

બહેનોની મીટીંગ.

(લેખક:—શ્રીમતી કંકુબ્દેન-સોલાપુર.)

હરકોર બહેન:—બહેનો ! આજે રાતના મીટીંગ ભરવાની છે માટે જરૂર આવજો હો !

પરસન:—શાને માટે ?

હરકોર:—હવે આપણે શું કરવું જોઈએ ? તેનો વિચાર કરવા માટે; કારણ પુરુષ વર્ગ આપણી તરફ જાણું જોતો નથી અને જેટલા દરજ્જે જુએ છે, તેટલાને આપણે માનતા નથી, તથા આપણો ગુજરાતી વર્ગ ઘણાંજ અંધ અવસ્થામાં ગુંચવાઈને હીનદશામાં ડુબવા લાગ્યો છે, તેનો સુધારો કરવાની જરૂર છે. જો આપણે પગ થંડા થઈને બેસી રહીશું, તો ભાવી સંતાનને પણ સુધરવાનું માન નહીં રહેશે.

જીવકોર:—મીટીંગ એટલે શું ? પરસન ! ત્હને એનો અર્થ કેમ સ્વર પડ્યો ?

પરસન:—મહારા ઘરમાંથી હમેશાં જાય છે. તેઓ દિગંબર જૈનોની પાંચ છ સંસ્થાઓના મેમ્બર છે. તે જઈ આવ્યા એટલે વાત કરે છે અને એક બે વચ્ચે શ્રીમતી મગન-બહેનોની મીટીંગમાં હું પણ ગઈ હતી, તેથી મીટીંગમાં શું હોય છે અને શું શું થાય છે, તે હું જાણું છું.

जीवकोरः—बैराओनी मीटींगमां वळी शुं होय ? कांइ पैसा कमावानी के छोकरा-छोकराओना विवाह करवाना होय छे ?

हरकोरः—मीटींगमां पैसा कमावानो तथा विवाह करवानो विचार थतो नथी, परंतु जातिउन्नति अने व्यवहार सुधारवानो विचार करवामां आवे छे. केम परसन बहेन ! श्रीमती मगनबहेननी मीटींगमां शुं शुं विचार थाय छे ते आपणा जीवकोर काकीने समजावो वारु !

परसनः—हुं गया बुधवारें त्यां गई हती, त्यारे ते त्रण—चारे बहेनो मळी विचार करती हती के, कई कई जग्याए पाठशाला नथी. ज्यां न होय त्यां ऊघाडवानी तज-वजि करवी. ज्यां ज्यां पाठशालामां भणानार अध्यापिका—(स्त्री शिक्षक) न होय त्यां मोकलवी. आपणी गुजरात तरफनी बहेनोमां ज्ञाननो प्रसार करवो, दीन दुःखी बहेनोनुं दुःख जेम बने तेम दुर करवा कोशिष करवी अने आपणामां जे अंधश्रद्धा वधी पडी छे तेनो नाश करवाना उपाय शोधवा, पुस्तको छपावी भेट मोकलवा, विगेरे अनेक प्रकारना विचार करी ठराव नकीं करतां हतां. एक बीजानी सलाहथी ते बहेनो काम करे छे; वळी वनिताविश्राममां पण चार पांच बहेनो बेसीने विचार करे छे अने केवी मोटी संस्था चलावे छे. तेमज 'भारतवर्षीय जैन महिला परिषद्' दर वर्षे भराय छे.

जीवकोर काकीः—ठीक, पहेलां तो चार भायडाओ एकठा थाय एटले पंच भेगुं थयुं कहेतां. आ मीटींग बीटींग तो अमारा पुरुषोज कोई भण्या नहोता तो बैरां भणेज क्यांथी ?

चंचळः—हमणां पण क्यां एटला पुरुषो आपणामां भणेला छे के, जेटला दक्षणी, बंगाली, विगेरे भणेला छे ? एक कहेवत छे के—

जे न भणे न भणावता, जंगलमांना शूर; हरनिश स्त्रीओने वखोडता, उतरे तेनुं नूर.

परसनः—हरकोर बहेन ! अत्यारेज मिटींग थवा घोने, वळी रातना कोई आवेके न आवे ! बैरांओनुं काम; हमणां बधां सहेज भेगां थयां छीए. बधाना मत पण लेवाशे. केम बहेनो ? एक कलाक बधा बेसशो ? (बधाए हा कही.)

हरकोरः—हालना वखतमां अल्पमृत्यु घणां थाय छे, तेथी आपणुं केटछुं नुकशान थाय छे तेनो विचार करी, तेम नहीं थवा देवाना उपाय योजवानी जरूर छे. पहेलां आपणे अल्पमृत्यु थवानां मूळ कारणो शोधी काढीए. एक तो बाळविवाह; बाळ विवाह करवाथी छोकराओनो न्हान-पणथीज वीर्यपांत थाय छे अने तेथी आयु क्षीण थतुं जाय छे. वर्तमान आयु विरुद्ध निमित्त मळवाथी क्षय पामे छे तथा अनेक प्रकारना रोग उत्पन्न थई पीडीत करे छे. पछी परणेली बिचारी

નહાનકડી સ્ત્રીને વૈધવ્યનું અનિવાર્ય દુઃખ વેઠવું પડે છે, તે ભોગવતાં કુટુંબીજન કોઈ પ્રિતીથી ધીરજ આપી સાહ્ય કરતું નથી. કહેવત છે કે, “ઘર ફર્યું ઇટલે ઘરના વાંસા પળ ફરે છે” તેને મીઠા બોલ સંભળાવવા પળ મોંઘા થઈ પડે છે. વિધવા સ્ત્રીઓનું મન ચાર ઉપાયથી કેળવાય તો શાંત રહે છે.

જીવકોર:—તે વઢી ચાર ઉપાયો કયા કયા ? તે સમજાવો તો સરા !

હરકોર:—(૧) મીઠાં વચન બોલી મનને થંડુ કરવું. (૨) થંડી નજરથી તેમને ધાકમાં રાખવા. (૩) કાંઈ ચીજ—વસ્તુ માંગે તો તેને યોગ્ય જોઈ પ્રસન્નતાથી આપવી, અને (૪) વિદ્યા મળાવી ધર્મોપદેશ આપવો. તેમનું મન વૈરાગ્યની તરફ દોરાય તેવાં પુસ્તકો લાવી આપવા, પરોપકારમાં તેમનું મન સ્વેચ્છાએ તેવાં કૃત્યો બતાવવા અને દૃષ્ટાંત સંભળાવવા, ઇટલે સુખેથી તેઓ ધર્મમાં દૃઢ રહી નિતિથી વર્તન કરી, શાંતિમાં પોતાની પર્યાયનું ગુજરાન કરશે, નહિ તો કુમઢી વયમાં ઉપર કહેલા નિમિત્તો નહીં મળવાથી તેમને પોતાની પર્યાય રક્ષરસીત લાગે છે અને પંચેન્દ્રિયોના વિષયોમાં તિ-ત્રેચ્છા સંતપ્ત કરે છે, તેથી તેઓ અહીંઆ લ્યાં ફાંફા મારતી ફરે છે, તેટલામાં જો તેમને કુસંગતિનો સહવાસ થયો કે તુરત અનિતિ કરવા માંડે છે, તેમાં વઢી નવ-યુવક માર્દો હામી ભરે છે.

ચંચલ:—હા, મ્હેં પળ એક વાત સાંભળી છે કે, કાઠીયાવાડમાં જૈન વિધવા ઢેનો આમ તેમ રખડે છે અને અમળ અવસ્થામાં સ્વાવાપીવાની જોગવાઈ નહીં હોવાથી પુનઃ વિવાહ (નાનહું!) કરવાની સ્વટપટ ચલાવી રહી છે, અને એક બે કરી પળ તુકી છે; માટે ઢેનો ! આનું મૂઢ કારણ બાઢ-વિવાહ; તે ઉસેડી નાંસવું અને પહેલા જે અવિચારથી થયેલાં છે તેનું, ઉપર કહેલા યોગ્ય ઉપાયથી રક્ષણ કરવું. ચારે તરફ ઉપદેશક તરીકે ફરી તેમને સમજાવવા, અને એક ફંડ ઉમું કરી તેમાંથી મદદ આપવી, તેમજ આશ્રમમાં કેઢવળી માટે દાસલ કરાવવી, જ્યાં તેઓ કેઢવાઈને પોતાનું ગુજરાન સારી પેટે કરી શકશે. બાઢલમ્થી બીજું નુકશાન—છોકરા તથા છોકરઓ મળવાનું છોડી દે છે અને અમળ રહી જેમતેમ કરી મહામહેનતે ગુજરાન ચલાવે છે અથવા તો તેટલું પળ ન બને તો દેવાદાર બની, કેટલીકેવાર હલ્યા કરી મરવું પડે છે, વઢી અલ્પ મૃત્યુનું બીજું કારણ શરીરનું સ્વાસ્થ્ય રાસ-તાં નહીં આવડવું; પ્રકૃતિ વિરુદ્ધ સ્નાનપા-ન કરવું, અયોગ્ય વસતે શયન કામસેવન કરવું વિગેરે ઘળી બાવતોમાં અજ્ઞાનપણું હોય છે માટે આપણે હવે સુજ્ઞ માર્દોની મદદથી આવી ઘાતક રીતો માંગવા તથા દુઃસી ઢેનોનું દુઃસ દુર કરી હઢીમઢીને ધર્મોન્નતિ તથા જાત્યોન્નતિ કરવા વઢગીળે તો સારું થાયને ?

જીવકોર કાકી:—જુઓ બહેનો ! તમે કરો તે સરું, અમે તો ઘરડા થયા, આમાં અમે શું જાણીએ ? આજ સુધી આવી વાતો અમે જાણતા પળ નહોતા !

પરસન:—ઠીક, હવે તો જાણવામાં આવીને? તમારાથી બીજું કાંઈ નહીં થાય અને કાંઈ નહીં આવડે, તો જે કરીએ અને કહીએ તેમાં હા તો કહેશો કે નહીં ? અને વિધવા અથવા ગરીબ બહેનોના આશ્રમની સંભાલ રાખવી, બહેનોને સારે માર્ગે દોરવી, તેમને શાંતિ રાખવાની શી-સ્વામણ દેવી, તેટલું તો બનશે કે નહીં ?

જીવકોર:—હા, એટલું તો કરીશ.

હરકોર:—તમારા જેવી દશ-વીસ વૃદ્ધ માતાઓ જો સામેલ થાય અને આવી ઉત્તેજક બહેનો જો દશ-વીસ મદદ કરે, તેમ ચંચલ જેવી ઉત્સાહી છોકરીઓ જો ષાંચ-દશ નિકલે તો સહજમાં જાતિ-સુધારાનું કામ સફલ થાય, તેમાં શક નથી.

માનકોર:—યોગ્ય કામ સોંપવાથી અમે પણ સામેલ થઈશું, તેટલામાં પંદર બહેનોએ હામી ભરી.

ચંચલ:—આવી મીટીંગો તો મહિનામાં બે વખત થવી જોઈએ, જેથી બધાને સમજ પડે.

હરકોર:—બહુ સારું, તેમજ કરીશું. ચાલો હવે.

કેળાં:—કેળાં ધણાં પુઠીકારક છે અને ખચવવામાં પણ સહેલાં છે કેમકે એ પોણાબે કલાકમાંજ પચી જાય છે. વળી એની છાલ જાડી હોવાથી એમાં બહારનાં ઝેરી તત્ત્વો પ્રવેશ કરવા પામતાં નથી.

વિદ્યાભ્યાસ (કોલેજની ડુંચી કેલવણી) પછી શું કરવું?

(લેખક:—હરજીવન રાયચંદ શાહ-આમોદ.)

અમદાવાદમાં શેઠ પ્રેમચંદ મોતીચંદ દિગંબર જૈન ઓડિંગ સ્કુલ સ્થાપન થયાને દશ વર્ષ થયાં છે અને મુઆઇમાં શેઠ હીરાચંદ ગુમાનજી જૈન ઓડિંગ સ્કુલ સ્થાપન થયાને તેથી પણ વધારે વર્ષો થયાં છે. આ બેઉ સંસ્થાઓના વિદ્યાર્થીઓના પ્રત્યક્ષ અનુભવ થયો છે તે ઉપરથી અને એ સંસ્થાઓના રીપોર્ટો વાંચવા ઉપરથી એમ નક્કી થાય છે કે આપણા (દિગંબર જૈન) વર્ગમાંથી જેટલા વિદ્યાર્થીઓ ઈંગ્રેજ ભાષાની ઉચ્ચ ક્લેવણી લે છે, તે પૈકીના સેંકડે પંચોતેર ટકા ઉપરાંત ખાનગી અથવા સરકારી નોકરીમાં કે પછી જેમાં શારીરિક પરિશ્રમ વધારે કરવો પડે નહીં, એવા ધંધામાં જોડાય છે અને બાકીના થોડા ટકાનું શું થાય છે તે ઝાઝું જાણ્યું નથી. જે થોડું જાણ્યું છે તે લખવાની જરૂર નથી.

આ વિષયનું મથાળું જે પ્રશ્નાર્થક ચિન્હથી કરવામાં આવ્યું છે તે પ્રશ્ન કેટલાએક વિદ્યાર્થીઓને આ લેખકે જાતે પૂછેલો છે અને તેના જવાબમાં સેંકડે નેવું ટકા તરફથી કોઇ પણ પ્રકારની નોકરી કરવાનોજ જવાબ આપવામાં આવેલો છે; અને તેનું કારણ પુસ્તકોની મુજબ જવાબો વાળવામાં આવેલા છે.

૧ નોકરીમાંજેવું પ્રમાણિકપણું અને સત્ય સચવાય છે, તેવું ઇતર ધંધામાં જોડાવાથી સચવાય તેમ લાગતું નથી.

૨ કોલેજમાં જે સાહિત્યનું જ્ઞાન સંપાદન કરેલું હોય છે, તે નોકરી સ્વીકારવાથી

જેટલું સચવાઈ રહે છે, તેટલું કાષ ધંધામાં જોડાવા પછી સચવાઈ રહેતું નથી.

૩ નોકરીને અંગે ધણે લાગે શહેરમાં જ રહેવાનું મળે છે, નિયમીત વખતે આવવાનું મળે છે, કોલેજ અને સ્કુલના ટાઇમના જેવોજ બધો આહાર વિહાર સચવાઈ રહે છે, અને ધંધામાં એમ બનવું મુશ્કેલ છે.

૪ સારાં કપડાં પહેરવાં, વિદ્વાન વર્ગની સોખતમાં ફરવું અને બીજાઓ એટલે સાધારણ જનસમાજ કરતાં પોતે કાંઈક અધિક છે એમ જાણવાનું મળે છે, તે સઘળું ધંધામાં મળશે કે નહિ તે નક્કી નથી.

૫ કાંઈપણ મુંડી રોક્યા સિવાય નોકરી થઈ શકે છે, અને ધણા લાભલાભોની પાસે મુંડીને અભાવ હોય છે, તેથી નોકરી મેળવી દરમહીને મળતા રોકડ પગારથી જીંદગી ગુનરવી સુગમ પડે છે.

૬ કુટુંબ કલેશમાંથી ધણે લાગે દૂર રહેવાનું મળે છે અને એક પ્રાચિન કહેવન પ્રમાણે “હુતો અને હુની x x x x” એ પ્રમાણે દ્વિપત્ય સુખ સ્વતંત્ર રીતે અનુભવાય છે.

૭ વિદ્યાભ્યાસથી નબળાં પડી ગયેલાં શરીરોને નોકરી કરવી સુલભ જણાય છે, કેમકે નોકરીમાં ‘રડશે તો રૂવાળો’ એ કહેવત પ્રમાણે અને “પરભાર્યાના પોણાખાર” જેવું નબે જાય છે; જે ધંધામાં નહીં શકે જ નહીં. ઉપરનાં મુખ્ય અને બીજાં નાનાં કારણો જણાવવામાં આવે છે અને સાધારણ દૃષ્ટિથી હાલની કેળવણી અને દેશકાળ પણ હુનર ઉદ્યોગ કરતાં નોકરીને વધારે અનુકૂળ જણાય છે.

ઉપરની બધીવાત એકવાર આપણે કદાચે ક્યુલ કરીએ, પણ આજસુધીના અનુભવથી એ રીતે વર્તવાથી આપણા ઉપર જે અસર થઈ છે, તે તરફ જોતાં, દુનિયાના ઇતિહાસનું અવલોકન કરતાં, અને બીજા દેશોની પ્રગતિ

કયે રસ્તે થઈ છે, તેનો વિચાર કરતાં ઉપરની સઘળી દલીલો ક્યુ માત્રમાં રદ ખાતલ કરીને દેશના અથવા આપણા સમાજના લવિષ્યના સંગીન હીતની ખાતર તે આપણા ઉચ્ચ કેળવણી પામેલા વગે નોકરી તરફથી પોતાના વિચારોને પાછા વાળી હુનર ઉદ્યોગ તરફ વળવા તેજ સર્વેકૃષ્ટ છે. એટલું તે આપણે ક્યુલ કરવું પડશે કે તેમ કરવાં જતાં આપણા એ વર્ગને તતકાલમાં જાતી-સુખનો એટલે તન, મન અને ધનનો કેટલોક ભોગ આપવો પડશે, પણ ખરેખર લવિષ્યની પ્રગતિ અનહદ સુખ તરફ વિચાર કરતાં એ આપણે ભોગ લવિષ્યના સુખવૃક્ષોનાં બીજ વાવવાને માટે કરેલા વ્યય જેવોજ જણાશે.

ત્યારે એ પણ નક્કીજ છે કે આપણા કેળવણીનો વર્ગ એટલો બધો સ્વાર્થપરાયણ કે સ્વાભિમાન રહિત નથી કે તે માત્ર પોતાની જાતનું સુખ તો કે અને પોતાની પ્રગતિ માટે કાંઈજ દરકાર ના કરે.

આપણા વર્ગના વંશપરંપરાના સંસ્કારો તે એવાજ છે કે જાતે દુઃખ વેદીને કરકસર કરીને પણ લવિષ્યની પ્રગતિ સુખને માટે મુકી જવું. ત્યારે હવે કર્તવ્ય માત્ર એટલુંજ છે કે કાર્યની દિશા બદલવી, અને હાલની કેળવણીમાં શ્રમપ્રિયતાની જે ખામી જણાય છે, તે આપણે દૂર કરવી. જે દેશની સ્થિતિ ચઢતી હોય છે તેનું અનુકરણ કરવાની સાધારણ રીતે સર્વેને ઇચ્છા થાય છે અને તે વળી બ્યાજબી પણ છે, પણ તે અનુકરણ કરવામાં કેટલીકવાર ભારી ભૂલ થાય છે; અને તે ધણીવાર આપણા અનુભવમાં આવતું પણ આપણે જોઈએ છીએ. જનસ્વભાવજ એવો હોય છે કે તે શરૂઆતમાં થોડી સમજણ અને ઉપલક્ષ અનુભવથી બાહ્ય અનુકરણ કરી શકે છે અને આજ સુધી

આપણે પણ તેમ કયું છે; તેથી અભાર સુધીનું આપણું એ વર્તન ક્ષતવ્ય ગણાય, પણ હવે જ્યારે આપણે ઉંડા ઉતરીને જોઈએ છીએ, ત્યારે સમજાય છે કે, ઈંગ્લાંડ, ફ્રાન્સ, જર્મની, બ્રિટિશ, અને અમેરિકાના મહાન ગણતા સઘના મોટા પુરુષો, વિદ્વાનો, કોડાધિ-પતિઓ, દાનેશ્વરીયો અને ઇતરજનો ઉદ્દેશ અને હુનરનેજ પ્રાધાન્ય પદ આપીને જાતેજ મહેનત કરી એ સ્થિતિને મેળવી શક્યા છે.

આપણી પ્રાચીન કાળની જે ઉત્તરિને માટે આપણે મગરો ધરાવીએ છીએ, તે તરફ નજર કરશો તો તેમાંથી પણ એવાં ધણાં દર્શાવેલાં મગી આવશે કે તેઓ જાતેજ હુનર ઉદ્દેશ કરતા અને તેનેજ પરિણામે ઉત્તરિને પામ્યા હતા. તે કાળમાં આપણો ધંધો વા-ચિન્યનો એટલે ખેતી, પશુપાલન અને વ્યા-પારનો હતો, એ વાત સુપ્રસિદ્ધ છે અને તે ધંધો કરતાં તે વખતે આપણે લક્ષ્મીપુત્ર નો મોટો જાહેર ઇલકાબ (ટાઇટલ) મેળવ્યો હતો, એટલુંજ નહીં પણ રાજ્યદ્વારમાં જેવી લક્ષ્મી વસે છે તેવીજ વ્યાપારમાં પણ વસે છે, એવું દેશના વિદ્વાનોને મોટેથી પરાક્ષપણે કહે-વડારી શક્યા હતા.

હવે શરૂઆતમાં વ્યાપાર અથવા ખેતી તરફ નહીં વળતાં નોકરી તરફ વળવાનાં જે કારણો બતાવવામાં આવ્યા છે—તેનો ઉત્તર હુંકારમાં આપતાં જણાવવું જોઈએ કે પ્રમા-ણિકપણું નોકરીમાં સચવાય છે, તેવું ધં-ધામાં સચવાતું નથી એમ કહેવું અનુભવવિનાનું અને ભૂલભરેલું છે, એ વાત તો તે તે કાર્ય માં જોડાવાર માણસના જ્ઞાન ઉપર આધાર રાખે છે. વગી સંપાદન કરેલું જ્ઞાન અથવા સાહિત્યસેવા પણ સાચવી રાખવા હોય તો તે વ્યાપાર કરતાં કે ખીજે હુનર ઉદ્દેશ કરતાં નથી સચવાતાં એમ કહેવું એ પણ

યોગ્ય નથી. એ બધાનું કારણ તો વિદ્વાનો નોકરી સિવાય ખીજાં કાર્યોમાં જોડાતા નથી તેથીજ હાલ એમ જણાય છે.

એક ખાસ મુદ્દો મુંડીનો અભાવ અને સામાજિક તથા રાજકીય ઉત્તેજનનું ઓછા-પણું એ છે, અને એનો ઉત્તર આપવો કઠીન છે ખરો, પણ તે બાબતમાંએ જેણે પ્રયત્ન ઇચ્છાપૂર્વક જે દિશામાં અર્થમ્ સાધવામાં કિંવા દેહમ્ પાતયામિ એવા નિશ્ચયપૂર્વક પ્રયાણ કયું છે અથવા કરે છે કે કરશે, તેઓ તો ભાગ્યેજ નિષ્ફળ જાય છે. હવે કુટુંબ-કલેશ અને જ્ઞાતિકલેશથી દુર રહેવાનો સવાલ ઉભી દૃષ્ટિથી તપાસવાનો છે. જાતિ સુખની ઇચ્છા રાખી કુટુંબ અને જ્ઞાતિથી દુર રહેવું, એમાં કાંઈપણ ઉહાપણ સમાયલું નથી. કુટુંબ અને જ્ઞાતિમાં હળીમળી રહેવું, તેમના તરફથી પડતો મારો સહન કરવો, તેમના-માં યોગ્ય સુધારો કરવો અને તેમને સુખે સુખ અને તેમને દુઃખે દુઃખ એમ માનવું તેમાજ ધૈર્ય, સ્નેહ અને સ્વાર્થ સાથે પ-રમાર્થ સમાયલો છે.

હવે રહ્યો વિચાર કરવાનો માત્ર એટ-લોજ કે હાલની કેળવણી અને દેશકાળ. તે પણ ધંધા કરતાં નોકરીને માટે વધારે લાયક છે. આ વાત ખરી છે, અને તે કબુલ કર્યા વિના ચાલે તેમ નથી, પણ તે સાથે તેનો જવાબ પણ આપણે તેટલોજ ખરો આપી શકીશું. કેળવણીની બાબતમાં માત્ર સર-કાર કરે તે ઉપરજ આધાર રાખવો, અથવા તેનેજ અનુસરીને નવી સંસ્થાઓ સ્થાપન કરવાને બદલે, હાલમાંજ ‘સસ્તું સાહિત્ય વર્ધક મંડળ’ તરફથી બહાર પડેલા “યુકર-ટી-વૈ-શીંગ્લન” નામના પુસ્તકમાં બતાવેલી હેમ્પટન સંસ્થા અને ટસ્કેજ સંસ્થા જેવાં ખાતાંઉલાં કરવાની જરૂર છે. એ પુસ્તક દરેક વિદ્યાર્થી

અંધુને આઘંત વાંચી જવાની હું ખાસ લલા-
મણુ કરું છું. આપણી હાલની સ્થિતિને માટે
એ પુસ્તક ધણું જ યોગ્ય પ્રદ યજ પડે એમ છે,
અને છેલ્લા એક પ્રશ્નોનો જવાબ એ પુસ્તક
આપે છે. વળી જનસમુહ ધારે તો દેશકાળ
બદલી શકે છે. સમાજનું વલણ જેવા પ્રકાર-
ની કેળવણીથી જે તરફ વળે છે તેવો જ દેશ-
કાળ આવીને ઉભો રહે છે, એ વાત ચોક્કસ
જ છે. પાછળ પડેલા સમાજના ધનવાનોએ
અને વિદ્વાનોએ તથા પ્રેમએ શું કરવું અને
ઘતર સમાજ સાથે તેની શી શી ફરજ છે
તે સઘળું ઉપરનું પુસ્તક બરાબર શીખવે છે.

હવે એક છેલ્લો સવાલ માનમરતબો
અને આબરનો રહે છે. તેનો જવાબ તો હું
પણ મારા અનુભવપૂર્વક દઢતા
સાથે આપી શકીશ કે જેવું સુખ, સ્વતંત્રતા
અને માન વિદ્વતા સાથે પ્રમાણિકપણે ધંધો
કરવામાં સચવાય છે તેવું નોકરીમાં લા-
ગ્યે જ સચવાતું હોય.

વિદ્યાર્થી અંધુઓનું મન નોકરીમાં લ-
લચવાવાતું મને પોતાને વિચાર કરતાં ખાસ
એજ એક કારણ લાગે છે—કે તેઓ સમજ-
શક્તિ ધરાવે છે, ત્યારથી તે કોલેજ કે સ્કુલ
છોડતાં સુધી અથવા સરકારી નોકરી, પ્રોફેસરો
કવિયો અને એવાજ માણસોને પ્રત્યક્ષ દ્રશ્ય
તરીકે જુએ છે અને જન્મચરિત્ર વિગેરે
પુસ્તકો અને ઇતિહાસો પણ તેવાજ વાંચે છે.
હુન્નરી, ઉદ્યોગી અને વ્યાપારી માણસોના સ-
હવાસમાં તેઓ અહુજ થોડા આવે છે. તેમાંના
મહાન પુરુષોને જેવાનું અથવા તેમના સહ-
વાસમાં આવવાનું તો ખીલકુલ અનર્થજ નથી,
એટલે પછી “જેવું દેખે તેવું શીખે” એ
સાધારણ જનસ્વભાવ તેમનામાં પણ
જણાઇ આવે, તો તેમાં આપણે તેમનો
આજો દોષ કાઢી શકીએ તેમ નથી, અને એ
દોષ ટાળવાનો ઉપાય જો ધારે તો તેમના

શિક્ષકો અને પ્રોફેસરો દુર કરી શકે
તેમ છે.

વિદ્યાર્થીવર્ગને આવા પ્રકારના લાંબા લે-
ખો વાંચવાનું ફાવે તેમ નથી, એ હું સારી
રીતે જાણું છું અને તેથી હવે આ લેખ
આટલેથી જ ટુંકાવીને તેમને ઉપરનું પુસ્તક
વાંચ્યા પછી આ લેખથી અને તે પુસ્તકના
વાંચનથી જે અસર થાય તે જો તેઓ મને
જણાવશે, તો હું તેમનો ધણોજ આભારી
થઇશ. માત્ર આ લેખ તેઓ વાંચે અને આ
સવાલની તેઓ માંહોમાંહે તથા મારી સાથે
મોઢેથી ચર્ચા ઉઠાવે.

કેટલાએકના મનની દિશા બદલાય, તો
આ પરિશ્રમ સાર્થક છે એમ માની સંતોષ
ઉપજે. મારા બહાલા જુવાન અને ઉછરતા
પણ મારા કરતાં અભ્યાસમાં આગળ વધેલા
વિદ્યાર્થી અંધુઓના ઉપર મને સંપૂર્ણ સ્નેહ
અને ભરોસો છે કે તેઓ મને થોડા પણ
સંતોષ આપશે.

મૃત્યુ પછી અવયવો જીવે છે!—

સાધારણ રીતે એમ મનાય છે કે માણસના
મૃત્યુ સાથે તેના અધા અવયવો પણ મૃત્યુ પામે
છે. ડૉ. કેરલ કે જેણે નોબલ પ્રાઇઝ
(Noble Prize) મેળવેલું છે. તેણે વળી
એમ સાબીત કર્યું છે કે મરેલાં શરીરનાં
યકૃત (Liver) હૃદય (heart) વગેરે અવયવો
લઇને તે અવયવોને અનુકુળ પરિસ્થિતિમાં
મુકવાથી તે અવયવો કેટલાંક અડવાડીયાં સુધી
પોતાનો વ્યવહાર ચલાવે છે. ડૉ. કેરલે મનુ-
ષ્યની ચામડીને ધણા દિવસ સુધી સજીવ
રાખીને પછી ખીજ પ્રાણીની ચામડી સાથે
એકરૂપ કરી નાખેલ છે. માણસ મરણ પામ્યા
પછી તેના અવયવો કેટલાક સમય સુધી સજીવ
રહે છે, પણ તેમાંથી કાર્ય કરનારી ચિત્તિ-
શક્તિ એટલે ચૈતન્ય જાય છે.



सांझका समय है, मंद सुगन्धि पवन चल रही है, निशाकर (चन्द्रमा) का प्रतिबिंब वृक्षोंमें होकर अपनी प्रभा (चांदनी) यत्र तत्र फैला रहा है। इसी समय जयचन्द 'सुमेरुचन्द दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस-प्रयाग' से सम्बन्ध रखनेवाली उसीके सन्मुख जो आनन्दबाटिका (छोटासा बाग) है, उसमें नीबूके वृक्ष तले कुंडके किनारे आसनी डाले बैठे हैं। हाथमें एक हिन्दीकी पुस्तक लिये पढ़ रहे हैं। इतनेमें इनके परम मित्र और हमारे पाठकोंके चिरपरिचित महाशय टेकचन्दजी पता लगाते हुवे आ पहुंचे और मधुर मुस्क्यानयुत बोले-“जयचन्द भाई, जुहारु”

जयचन्द:- (चौककर) ओहो ! टेकचन्दजी हैं ! जुहारु भाई, आवो आवो। भला यह तो बतावो, तुमको यहांका पता किसने दिया ?

टेकचन्द:- भाई ! दशरुक्षण पर्व बीत गया और आपसे श्री मंदिरजीमें भेंट एक भी दिन नहीं हुई, तब चित्तमें अनेक शंकायें उठने लगीं। इधर गृहजंजालके मारे छुट्टी नहीं मिली, इसलिये घर तक पहुंचा नहीं, परंतु संतोष कहां ? तब कल प्रातःकाल धनदासजीके यहां जाते हुवे

घरपर ठहर गया, तो मातारामसे विदित हुवा कि आप इलाहाबाद पर्युषणसे पहिले ही पधार गये हैं। मुझे भी यहां आना ही था। सुनते ही हर्ष हुवा और रात्रिको गाड़ीमें बैठकर यहां आ गया, धर्मशालामें पहुंचा और वहां श्री जिनमंदिरमें यहांके सेक्रेटरी बाबू बच्चूलालजीसे आपका पता मालूम हो गया। बस, दिन भर कामकाज करके इक्का भाड़े करके यहां चला आया। कहिये कुशल तो हैं ? यहां क्या क्या नवीनता पाई ?

जयचन्द:- नवीनता तो कुछ नहीं। यहां चार मंदिर और ९ चैत्यालय हैं, सो प्रत्येक जगह दो दो एक एक आदमी और स्त्रियां दिखाई देते थे। केवल अनन्तचतुर्दशीको पंचायती मंदिरमें अनुमानिक ९० मर्द और इतनी ही स्त्रियें दो पहरके बाद दिखाई दीं थी। इनमें कई महाशय ऐसे भी थे कि जो केवल इसी दिन दर्शन करने आते हैं।

टेकचन्द:- तब क्या नित्य सब दर्शन तकको नहीं आते हैं ?

जयचन्द:- अज्जी नित्य? कितने तो इस दिन भी नहीं आये होंगे ऐसा सुना है।

टेकचन्द:- आपने यह कैसे जाना कि बहुतसे और भी घर जैनियोंके हैं जो आज भी मंदिर नहीं आये और न प्रायः आते ही हैं ? और फिरभी उनकी संख्या जैनियोंमें हैं ?

जयचन्दः—भाई, बिरादरीमें गिदौड़ा (लहणा) बांटा जाता है, उससे पता लग जाता है—गिन्ती हो जाती है।

टेकचन्दः—अच्छा, यह बात रहने दो और बतावो कुछ विशेष बात हुई है ? ये बात तो प्रायः सभी जगह देखी जाती है।

जय०—जी हां, यहांपर सुगन्धदशमी (रविवार) को दोपहरके समय इसी बोर्डिंग के वाचनालयमें “जैन भ्रातृमंडल” (जो कि अनुमान एक वर्षसे यहां के छात्र-गणोंने खोल रक्खा है) का जल्सा था। उसमें आवश्यक प्रस्तावोंके अनन्तर ‘हिन्दी भाषाकी उन्नति कैसे हो’, इस विषय पर विवेचन हुआ। सुनते ही अनेक प्रकारके विचारोंका संचार हृदयमें होने लगा; इतना ही नहीं, उपस्थित सदस्योंने यह प्रस्ताव भी पास कर दिया कि—प्रत्येक सदस्य कमसे कम एक पुस्तक हिन्दीमें चाहे तो अपने ही मनसे, चाहे किसी अन्य भाषासे भाषान्तर करके ऐसी लिखे, जो वर्तमान समयानुसार समाजको उपयोगी हो। वाह ! क्या ही अच्छा प्रस्ताव है !

टेक०—प्रस्ताव तो किया सो ठीक है, परन्तु इससे प्रयोजन क्या सिद्ध हुआ ? धर्मवृद्धि व अर्थवृद्धि इससे क्या हुई ? आपको यह इतने महत्त्वका क्यों जान पड़ा ? आदमीको अपने विचारों, हिसाब व इतिहासादि समाचारोंको कालान्तर न भूलने व चिट्ठीपत्री आदि लिखने पढ़नेके लिये किसी भी एक भाषाका जानना

बस् है ! और धर्मशास्त्र संस्कृतमें हैं सो उसे व राजभाषा अंग्रेजी। बस इन्हींसे कुल काम निकल सकता है। व्यर्थको कहीं हिन्दी, कहीं नागरी आदिके झगड़ोंमें माथा पीटनेमें क्या रक्खा है ?

जय०—भाई साहेब ! आपने कहा सो सब ठीक है, परन्तु आप जल्दी न करके इस पर विचार करेंगे तो इस प्रस्तावकी शतमुखसे प्रशंसा किये बिना न रह सकेंगे। आजकल पाश्चिमी हवा चल रही है। लोग भी इसीके झोंकमें झुक रहे हैं। हमारी आवश्यकताएं और इच्छाएं, दिनोंदिन बढ़ती जाती हैं। यह स्वाभाविक बात है, कि यह अनादिकाल विषय-लोलुपी जीव जब अपने साम्हने अपने ही द्रव्यसे अन्य किसी जीवको संसारिक पदार्थोंका भोगोपभोग करते देखता है, तो उसे भी देखादेखी स्वयं भोगनेकी इच्छा हो उठती है, और फिर वह इच्छा इतनी प्रबल हो उठती है, कि कभी कभी मर्यादाको भी उलंघन कर बैठती है। ऐसी दशामें समाजके नेता समाजको गिरते हुवे देख कर यथातथा उन्हें स्थिर करनेका प्रयत्न करते हैं। यद्यपि सर्वोत्तम तो यही है, कि यदि हो सके तो सबको वैराग्यरूपी उपदेश सुनाकर इन विषरूप विषयाभिलाषाओंसे विमुख करके सच्चे सुखका मार्ग बताया जाय, परन्तु ऐसा होना एक प्रकारसे असंभव ही सा दिखता है, क्योंकि चतुर्थकाल (चौथा आरा) में

जब साक्षात् तीर्थंकर भगवान अपनी केवलज्ञानरूपीवाणीसे उपदेश करते थे, तब भी सब मनुष्य इन दुर्निवार विषयोंको नहीं छोड़ सके हैं, तब आज छोड़कर साधु बन जावेंगे यह कैसे संभव हो सक्ता है ? हाँ, कदाचित् कोई “सौमें सती लाखमें यति” होवे तो कह नहीं सकते हैं। तब ऐसी अवस्थामें गिरते गिरते जो बचे उसीको लाभ समझना पड़ेगा, अर्थात् हमको समयके अनुसार लोगोंको उसी प्रकारसे स्थिर करना पड़ेगा, ताकि वे समझें कि ये हमारी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें सहायक हो रहे हैं। और उनके सहायक रहते हुवे भी उन्हें सत्मार्गपर स्थिर और आरुढ़ करते रहें। दिनके पीछे रात्रि और रात्रिके पीछे दिन होता है, इसी प्रकार इच्छायेंभी बदलती रहती है। विषयसेवन करके उसके द्वारा उत्पन्न हुई हानि लाभका विचार करके जो बुद्धिमान उन्हें त्याग करता है, वह उन लोगोंसे सब प्रकार अच्छा है, जो इच्छाओंके रहते हुवे उनकी प्राप्तिके अभावमें (प्रमाद व कायरतासे उपार्जन करके न भोगने) त्यागी बन बैठते हैं, कारण पिछले प्रकार अनुभवहीन पुरुषोंके गिरजानेका भय है। विषयान्तर होनेके डरसे इस बातको यहीं छोड़ देता हूँ।

तासर्थ यह है, कि इच्छाओं व आवश्यकताओंकी पूर्ति यदि न्यायानुसार हो जावे तब तो ठीक है, नहीं तो लोग स्व-

तंत्र होकर जिस तिस प्रकार मृगतृष्णाकी भांति दौड़ने लगेंगे, फिर आपकी कोई नहीं सुनेगा। जब कोई आदमी भूखसे व्याकुल हो रहा हो, या रोगसे पीड़ित हो और यदि उस समय उसे भोजन व औषधि दिये बिना ही तत्त्वोपदेश करने बैठ जाओ, तो क्या उस समय उसे उपदेशका प्रभाव पड़ सकेगा ? कभी नहीं, कभी नहीं पड़ेगा। वह उपदेश और उपदेशक दोनोंकी उपेक्षा कर डालेगा और यदि उसे कुछ भोजन या औषधि देकर कुछ शांत होनेपर उपदेश कीजिये तो निसंदेह थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य ही पड़ जावेगा। इसी तरह इस समय हमारे देशमें अविद्या और प्रमादके कारण व्यापारकी कमी हो गई है। विदेशी लोग अपनी विद्याकला और कौशल्यसे हमारे यहांसे द्रव्य कमा कर ले रहे हैं और हम लोग अपने ही दोषसे निर्धन हुवे उनका मुंह देखते और भाग्यको कोसते हैं, गाली देते हैं। ऐसी दशामें हमारा कर्तव्य यह होगा कि हम कुछ समय तक अपने वैराग्यमय सच्चे उपदेशको गौण (कम) कर दें और पुरुषार्थ (उद्योग) के उपदेशको मुख्यता देवें तभी कल्याण होगा। कहा है—“कम्मे शूरा ते धम्मे शूरा” पुरुषार्थी पुरुष ही धर्मशूर हो सक्ता है, इसलिये अपने देशमें व्यापार द्वारा अर्थ (द्रव्य=धन) वृद्धिके लिये विद्या और कलाकौशल्यके फैलानेकी

अतीव आवश्यकता है ।

टेक०—(बीचही में) भाई साहेब, यह तो सब कुछ ठीक है, मैं मानता हूँ, परंतु इन बातोंसे और हिन्दीसे क्या सम्बन्ध ?

जय०—जल्दी न कीजिये । मैं आपको यही सम्बन्ध बताता हूँ, सुनिये । जब कोई नवीन आविष्कार सुननेमें आता है, तो हमारे भारती भाई चटसे कह उठते हैं, कि यह सब विद्या हमारे शास्त्रोंमें भरी पड़ी है । जिस बातको आज उन्होंने पाया है, उसे हमारे महर्षि हजारों वर्ष पहिले लिख गये हैं । हमारे पूर्वज भी तो पहिले विमानोंमें चलते थे इत्यादि, परंतु यदि उनसे पूछा जाय कि मान लो शास्त्रपुराणोंमें सब कुछ लिखा है और पूर्वज ऐसा करते भी होंगे, परंतु तुम भी कुछ करके बता सक्ते हो ? बस, इसी प्रश्नसे मानो उनकी नानी मर गई हो ऐसा मुंह उतर जायगा । देखा “ दादाने घी खाया था, मेरा मुंह सूंघ लो ” जैनियोंको देखो, ज़रा येभी क्या कहते हैं कि हमारे आचार्योंका कथन है कि—विषय कषायोंको कम करो, अधिक तृष्णा मत करो, परिग्रह कम करो इत्यादि । इसीसे हम लोग अपने बापदादोंसे चला आया हुआ धंधा करके आजीवका चला लेते हैं और शेष समय धर्मचर्चा, स्वाध्याय, पूजा व सामायिकमें बिताते हैं । आत्मिकविचार करते

हैं, पौद्रलिक पदार्थोंकी चर्चामें समय नहीं बिताना चाहते हैं इत्यादि । अब यदि इनसे भी पूछा जाय कि तुम सच बतावो, सामायिकमें किसका ध्यान, पूजा-में किसका कीर्तन, स्वाध्यायमें किसका विचार और धर्मचर्चामें किसका समर्थन करते हो ? तो उत्तर विषम हो जायगा । मैं भी इसका उत्तर यहां न बताऊंगा । आप स्वयम् अपने उपरसे विचार लीजिये । तात्पर्य—प्रमादी कायर पुरुष अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेके लिये ऋषियोंकी ओट लेकर अपना दोष उनपर मढ़देना चाहते हैं । हाय भारत ! इसीसे तू आरत हुआ गारत हो रहा है ।

टेक०—भाई, आप तो और और बातें कहते हैं । अपने विषयपर चलिये क्यों-कि मुझे सबेरेकी गाडीसे कलकत्ते जाना है ।

जय०—घबराइये नहीं, जाना तो है ही, परंतु कुछ साथ भी ले जाना है । अच्छा सुनिये—मुझे अभी इससे कुछ वादविवाद नहीं है कि हमारे देशमें कलाकौशल्याता थी या नहीं । मान लो कि थी; परंतु इस समय तो नहीं हैं और कहीं हो भी, तो वह इतनी बहुमूल्य है कि सुनते ही शिरमें पीड़ा (दर्द) होने लगता है, तब ऐसा कौन होगा जो अल्पमूल्य की दिखाउ चीज न लेकर बहु मूल्यकी भद्दी खरीदेगा ? कदाचित् तुम्हारे जैसे कुछ उंगलियोंके

गिने हुवे टेकी निकल आवें तो दूसरी बात है। अच्छा, ऐसी अवस्थामें जब कि हमारे देशका कलाकौशल्य एक तरह उठ-हीसा गया है और तद्विषयक शास्त्रोंका भी अभावसा ही है, तब क्या हमें यही उचित होगा कि हम औरोंका मुंह देखें, उनके आश्रित अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति करें, और क्रमसे अपने देशका द्रव्य खोकर विदेशोंमें टकराते फिरें ? नहीं नहीं, हमारा कर्तव्य होगा कि हम अपने पैरोंपर खड़े होवें और उद्यम करके द्रव्योपार्जन करें तथा उससे अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति करके इच्छाओंको कम करें। इस प्रकार न्यायपूर्वक भोगोपभोग करते हुवे शेष समय निराकुलतासे धर्मध्यानमें बितावें।

टेक०—भाई, यह बतावो कि इन बातोंसे हिन्दीका क्या सम्बन्ध है ?

जय०—यही बताता हूं कि हमको इन कलाकौशल्य सीखने, व्यापारकी वृद्धि करने, परस्परके विचार प्रगट करने आदिके लिये एक देशकी एक भाषा होना चाहिये और वह एक भाषा यदि हो सकती है तो इस सारे भारतवर्षमें केवल एक हिन्दी (नागरी) भाषा ही हो सकती है, क्योंकि इस भाषा प्रायः सारे भारतवर्षमें लोग किसी न किसी अंशमें समझ सकते हैं। यही भाषा सब भाषाओंसे सरल व सीधा है, जिसे हरएक प्रांतके लोग बिना प्रयास सहज ही सीख सकते

हैं। लिपि भी इसकी इतनी सुगम है, कि जो कुछ लिखा जाय वही पढ़ा जायगा और और भाषाओंके शब्दोंको भी इस लिपिमें लिखनेसे वैसे ही पढ़े जाते हैं। अन्य भाषाओं जैसी गड़बड़ी नहीं मंचती है कि लिखा तो कुछ जाय और पढ़ा कुछ जाय, यहांतक कि कभी कभी लिखनेवाला भी स्वयं उसे पढ़नेमें भूल करजावे, परन्तु यह (हिन्दी) भाषा ऐसे दोषोंसे रहित है। यही कारण है कि हमारे नेतागण इसी भाषाको देशभाषा बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं, और यह प्रयत्न कुछ २ सफलता भी प्राप्त कर रहा है। हमारी प्रजावत्सल सरकार भी इस ओर ध्यान दे रही है और एक दिन वह आवेगा, जब कि सब देशभरकी भाषा यही (हिन्दी) भाषा होगी। बहुतसे देशी रजवाड़ोंने भी उर्दूके स्थान पर हिन्दीको विठलाया है, परन्तु हां, अभी जैसा लोगोंका ध्यान इस ओर खिंचना चाहिए वैसा नहीं खिंच रहा है। अब हिन्दी भाषामें बहुतसे दैनिक पत्रोंने जन्म लिया है। बहुतसी पुस्तकें लिखी गई हैं व भाषान्तरकी गई हैं और की जा रही है, जब कि नेताओंकी दृष्टि इस ओर लगी है और लोगोंका चित्त भी यहां आकर्षित हुवा व हो रहा है, तब हमारा भी कर्तव्य है कि “शुभस्य शीघ्रम्” का ध्यान कर इन नेताओंको सच्चे मनसे सहायता करें। एक

भाषा हो जानेसे देशाटन करने, परस्पर पत्रव्यवहार करने, अपने उत्तमोत्तम विचार परस्पर प्रकट करने (सुनना व सुनाने) का सुभीता होगा। किसीभी प्रांत-का आदमी किसीभी प्रांतमें निसंकोच भावसे आ जा सकेगा, व्यवहार कर सकेगा, इत्यादि कारणोंसेही एक भाषाकी आवश्यकता है। जब हमारी एक भाषा हो जायगी तो इसका प्रभाव विदेशों परभी पड़ेगा और वहांभी हमारी भाषाका सन्मान होगा। हम लोगोंका कर्तव्य है कि व्यर्थके भेदभावको छोड़कर एक भाषाका ध्यान करें। उर्दू, बंगला, गुजराती, उड़िया, मराठी, कनडी, गोरखी, द्राविडी आदिकी खींचतानी न करें। जैसे मनुष्योंकी आपसी फूटसे धन और मान हानि होती है, वैसेही भाषाओंके झगड़ोंमें धन, व्यापार आदिकी हानि होती है और इस दशमें विदेश हमारी किसीभी भाषा को आदर नहीं कर सके हैं।

टेक०—यह तो ठीक है, परंतु ऐसा होना असंभव है।

जय०—नहीं, यह भूल है। होगा, अवश्य होगा। “उद्योगिनः पुरुषसिंहसु-पैति लक्ष्मी” अर्थात् उद्योगी पुरुषका द्रव्यकी कमी नहीं रहती है, उसी प्रकार धैर्य और उद्योगसे सब हो सकता है। असंभव कुछभी नहीं है।

टेक०—अच्छा बताइये, कैसे होगा ?

जय०—हां सुनिये, प्रथम हमको स-

माजके अन्दर इस विषयका घोर आन्दोलन करना होगा। लोगोंके चित्त इस ओर आकर्षित करना पड़ेगे। फिर छोटे-टूटे सरल भाषामें निकालना पड़ेगे, समाचार पत्रोंमें लेख लिखना पड़ेगे, फिर सामान्य विषयों पर व इतिहासिक कथाओं व उपा-न्यासोंको सरल भाषामें लिखकर प्रकाशित करना पड़ेगे, जिससे लोगोंको हिन्दी पढ़नेका अभ्यास बढ़े। हिन्दी लिपिको आन भाषामें और आन लिपियोंमें हिन्दीके लेख-समाचार पत्रोंमें लिखकर आन भाषा-भाषियोंको अभ्यास कराना पड़ेगा, जैसा कि “दिगम्बर जैन” पत्रके सुयोग्य सम्पादकने करके अपने गुजरात प्रांतवासी भाषियोंको हिन्दी पढ़ने, बोलने व समझनेका अभ्यास कराया है। फिर हमको पदार्थविज्ञानशास्त्र (साइन्स), अर्थशास्त्र (एकांनौमी), तत्वविज्ञान (फिलॉसफी), गणित (मैथमेटिक्स), भूगोल खगोल (जागरफी), राज्यनीति (ला), शिल्पशास्त्र (इंजीनियरिंग), चिकित्साशास्त्र (डाक्टरी) इत्यादिके विषयोंकी पुस्तकोंको सरल हिन्दी भाषामें लिखना पड़ेगी, ताकि पढ़नेवालोंको थोड़े ही व्यय (खर्च) से शीघ्र ही इन विषयोंमें प्रवेश हो सके। आप जानते हैं, आजकल इंग्रेजी साहित्य कितना बढ़ा चढ़ा है। उसमें सब प्रकारकी पुस्तकें असंख्य भरी पड़ी हैं, परंतु उनसे हमारे हिन्दुस्थानी बहुत कम भाई ही लाभ उठा

सके हैं, कारण जबतक ऊचे दर्जेका इंग्रेजी न पढ़े, वहां तक तो इन पुस्तकों को पढ़ ही नहीं सकता हैं, और इस प्रकार इंग्रेजीकी उच्च शिक्षा प्राप्त करने (ग्रेजुएट होने) के लिये बहुत समय तथा रूपायोंकी आवश्यकता है, इसलिये जनसाधारण तो पढ़नेसे रहे। उनके पास इतना द्रव्य कहां, जो पढ़ सकें ? वे तो पेट भरनेके अनुमान थोड़ा बहुत पढ़कर या विना ही पढ़े, नौकरी व मजदूरी करने लगते हैं। मध्यम दर्जेमेंसे जिनको सामर्थ्य है, यदि वे पढ़ते हैं भी तो आधी आयु तो प्रायः पढ़नेमें चली जाती है, पश्चात् गृहस्थी भार आ पड़ता है, तब लाचार होकर इधर उधर नौकरीकी तलाश करने लगते हैं। कदाचित् किसीने कुछ नवीन आविष्कार (विज्ञान) सोच कर प्रगट किया भी, तो द्रव्य के अभावसे उनकी वही दशा होती है, जैसे वन्द्याको पुत्रप्राप्तिकी इच्छा होने पर भी नहीं कर सकती, अर्थात् पासमें द्रव्य तो है ही नहीं और धनी सहायता देते नहीं हैं, तब मनके विचार मनहींमें रह जाते हैं। श्रीमानोंके लड़के पढ़ते ही नहीं और पढ़े तो भी वे अपने विषयोंमें ऐसे लोलुप हो जाते हैं, कि समुद्रके खारे जलके समान किसी कार्यके भी नहीं रहते हैं, इत्यादि। यदि हमारी देशभाषा एक होवे और सब पुस्तकोंका उल्था

उसी भाषामें हो जावे, तो देशका प्रत्येक बालक भी इन विद्याओं, कलाओं आदिसे वंचित न रहे।

अभी ऊपर कही हुई अङ्गुलीके सिवाय एक यह भी अङ्गुली है कि हमारे विद्यार्थियोंको दुहरी महिनत (परिश्रम) करना पड़ती है। एक तो विदेशी भाषा समझने व रटनेकी और दूसरे उन विषयोंकी, तब उनकी सारी शक्ति तो यहीं इतिश्री हो जाती है। फिर आगे विचारे क्या करेंगे ? देखते नहीं हो, इन वर्तमानके पढ़े लिखोंको ? कोईका मगज (शिर) बिगड़ रहा है, तो कोई मूत्र रोगसे पीड़ित हो गया है, कोई पाचनशक्तिके बिगड़नेसे दुःख पा रहा है, किसीको धातुविकार दृष्टिगत होता है और आंखोंपर चशमा (ऐनक) पहिरना तो अब सहज हो गया है, इसे तो कमजोरीकी गिनती ही नहीं दी जाती है इत्यादि अवस्था होती है, सो क्यों ? इसका कारण यह है कि परिश्रम तो अधिक करना पड़े और आराम कम मिले। खानपान आदि कठिनाइयां झेलनी पड़े, तब अवश्य ही यह दक्ष होगी। भला कहो, जिन विचारोंकी विद्यार्थी अवस्थामें ही यह दशा हो जावे, वे भविष्यमें कहां तक हमारे देशका भला कर सकेंगे ? यदि वे अपनी गुजर कर लें, तो भी कुशल है, ताकि उनका बोझ दूसरों पर न पड़े। और भी आप देखेंगे,

विदेशी नवयुवक वहांसे बहुत थोड़ी अवस्थावाले हृष्टपुष्ट हमारे यहां आकर हमारे उन विषयोंके आचार्य बनते हैं, जिनको सीखनेमें हमारी आयु ही पूर्ण हो जाती है। स्वास्थ्यकी तो कहना ही क्या है ? इसका क्या कारण है ? भाई, केवल एक यही है, कि सब प्रकार शास्त्र उनकी मातृ (देश) भाषामें हैं। उन्हें भाषा सम्बन्धी श्रम तो करना ही नहीं पड़ता है और देशमें कलाकौशल्यके अनेक अनेक कार्यालय खुल रहे हैं, सो खेलते कूदते ही कितनी बातें सीख लेते हैं। शेष किसी विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा प्राप्त करके आचार्य बन बैठते हैं। यहां न तो देशभाषा (हिन्दी) में वे पुस्तकें ही हैं न ऐसे कार्यालय ही हैं, तब कहिये कैसे सीखें ? ठीक, वही कहावत हो रही है कि "न राधा नाचें न नव मन तेल जले" न पुस्तकें देश भाषामें बनें, न देशवासी उनसे परिचित होवें, इसीलिये भाई, देश भाषाका हिन्दी होना और हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंका होना अत्यन्त आवश्यक हो रहा है। मुझे तो इन विद्यार्थियोंका यह प्रस्ताव बहुतही प्रिय व लाभदायक प्रतीत हुआ। यथार्थमें दूरदर्शितासे काम लिया गया है। जैब मनुष्य संसारी चिंतावोंसे कुछ रहित होता है अर्थात् पेटमें दाना पहुँचता है तब धर्म, कर्म, न्याय, नीति सब दीखने लगती है, अन्यथा सब उपदेशक

महाराजके ही मुंहमें रहती है या पुराणों व शास्त्रोंके पत्तोंमें बंधी रहती है। दूसरी बात जैनियोंके लिये हिन्दी भाषाके देश भाषा (प्रचार) होजानेसे विशेष लाभदायक यह होगी कि जैनियोंके शास्त्रोंका उल्था (भाषान्तर) प्रायः अधिकतर हिन्दी भाषा व हिन्दी लिपिमें ही हुआ है। जैनियोंके पूजा पाठ आदि भी हिन्दी भाषामें ही प्रायः अधिक है, तथा जैनी अधिकतर हिन्दी बोलते भी हैं, इसलिये इस दृष्टिसे भी हिन्दी भाषा ही के प्रचारकी आवश्यकता विशेष रूपसे है। श्रीजी इस कार्यमें हमें सफलता देवें यही प्रार्थना है और हमारे भारती भाइयोंको सद्बुद्धि देवें ताकि वे परस्परकी खैचतानी छोड़ कर हिन्दीको ही सर्वस्व मान कर अपना लेंवें।

टेक०—भाई, सत्य है, मेरी भी सग.ज्ञमें यह बात आ गई। यथार्थमें एक (हिन्दी)भाषासे देशका, धर्मका व व्यापारादिका बहुत अधिक सम्बन्ध है। मैंभी इस विषय में यथासाध्य प्रयत्न करूंगा। अच्छा, अब रात्रि बहुत हो गई है, फिर इक्का न मिलेगा, प्रातःकाल जाना भी है, इसलिये क्षमा कीजियेगा, जाता हूं। (उठ कर) जुहारू।

जयचन्द-ठहरिये, मैंभी चलता हूं, आपके साथ कलकत्तीकी शैर कर आऊंगा और वहां पर मौजिलालसे भी मिल आऊंगा।

बस, इस प्रकार बातचीत करते हुवे दोनों मित्र आनन्दवाटिकासे जैन बोर्डिंग हाउस—प्रयागसे प्रस्थान कर गये।

मा. दीपचन्द परवार, सुपरिन्टेन्डेन्ट
सु. दि. जैन बोर्डिंग हाउस—प्रयाग

નેત્રનગરીમાં ઘોઘ્યા પડી ગઈ, ચારે તરફથી ચાલે છે નીર, ઉઠી ગયો હમીર;—કાગળ-૨૬
 નવ નાડયોનો નાથ મરવા પડ્યો, સતીઓ પૂરમાં કરે નાશનાશ, પડ્યો બહુ ત્રાશ;—કાગળ-૨૭
 હસ્ત એ તો થયા હવે દુઝળા, માવતે મુકી ગયો નહીં આશ, જીવ્યાની શી આશ;—કાગળ-૨૮
 પેટલાવાદમાં માલ ખપે નહીં, આંખોધૃતિ આવે કરે અદેખાઈ, આવે પીડ ધાઈ;—કાગળ-૨૯
 ગુદા અવ્યયને ઇન્દ્રી ઉઠડ થયાં, અખર વીના કરે છે ખરાખ, ગમે નહીં રાખ;—કાગળ ૩૦
 ચરણદાસ તમારા એ જણા, તે તો થાઈ થયા બેહાલ, યુરા થયા હવાલ;—કાગળ-૩૧
 લગ્ન સૌની રાખે રૂડી લાકડી, એકલી કરે સહુનું કામ, એની ઘણી હામ;—કાગળ-૩૨
 ખાટલી એક ખૂણે પડી રહે, હાલ એને આધારે ગામ, આખર તો એ ઠામ;—કાગળ-૩૩
 જનરાજ પ્રભુ મારા નાથ છે, મને મુક્તિ દેખાડોને આજ, રાખો મારી લજ;—કાગળ-૩૪
 ધર્મ ભક્તિ, પીતા મતા મેળવો, લોકો કહે છે બહુ તારા ચાળા, હવે તો ઉધાળા;—કાગળ-૩૫
 નમોકાર મંત્રના આળા હું પાડતો, હવે વહલા મંત્ર મારા નાથ, અલો મારો હાથ;—કાગળ-૩૬
 મુરખ પહેલાં તું પાપી નવચેતીઓ, અમલમાં તેં કર્યો ઉધમાત, બગાડી છે વાત;—કાગળ-૩૭
 ગળાં તે તો ગરીબોનાં કાપીઆં, પ્રીતે પડ્યો નહીં શ્રાવકધર્મ, નડે તને કર્મ;—કાગળ-૩૮
 પ્રભુ વીરના હુકમ ઘણા લે પીઆ, કર્યાં કર્મ મિથ્યા કેમ જાય, હવે કેમ થાય;—કાગળ-૩૯
 મારા કરમે હતું ધન જહરે, ત્યારે સુખ્યું નહીં શુભ કામ, હુખાડ્યું મેં નામ;—કાગળ-૪૦
 ચીંતાને અંજિન મારા કામની, મને વડવાનું કહે છે નીત્ય, વરીશું ખચીત;—કાગળ-૪૧
 વેલ જોડી કાઠી સાથે આવશે, સુખપાલે શ્રીફળ આંધ્યા ચાર, જરૂર જનનાર;—કાગળ-૪૨
 પૂરમાં નાના મ્હોટા નાંખે કાંકરા, નરનારી કરે ધિસ્કાર, ભાગી ગયો ભાર;—કાગળ-૪૩
 એ પ્રમાણે ઉઠડ થયાં ગામડાં, હવે રાજના નોકર જેહ, ગયા જશે તેહ;—કાગળ-૪૪
 માનેજ દેશાઈ તો મરી ગયા, હતા હંકારજ ઠાટવળ, તેને કાણુ ભાળે;—કાગળ-૪૫
 મચ્છરાજની ફણુ વિષે રાજતા, દમરાજ હતા જે દિવાન, ગયા સમશાન;—કાગળ-૪૬
 ચાણુદાર કાયાના જે કાંજળ, તેમનું થણું થયું છે વિદાય, વિદેશ સંધ જાય;—કાગળ-૪૭
 કોષજ તો ધાયા છે કટારીએ, લેલજને લાગી ઘણી લાતો, ચાલી બધે વાતો;—કાગળ-૪૮
 એવી રીતે વહલા થઈ વેદના, કાંઈ પાળ્યો ન કોલકરાર, થયો ગુ-હેગાર;—કાગળ-૪૯
 પળપળનો ગુ-હેગાર રાજનો, ઉઘોઉઘા કર્યો રોજગર, આંધી ઘણી હાર;—કાગળ-૫૦
 દંડતરૂં ચોખું નથી લાંચ છે ઘણી, ઘણી શણું અચોખું હું રાંક, દયાલાલો કાંક;—કાગળ-૫૧
 પુન્ય પારસમણી પરખ્યો નહીં, પાપરૂપી અલ્યો મેં તો સાપ, ઉગારે શું આપ;—કાગળ-૫૨
 લાજ રાખજ્યો શ્રી જનરાયજ, સેવકની લેજેરે સંભાળ, તમે સદા કાળ;—કાગળ-૫૩
 યુવાવસ્થામાં^{૧૩} આ દુઃખ^{૧૪} સાંભળ્યું, માટે સત્યે ચલાવો ઓ સ્યામ,

રડું તુમ નામ;—કાગળ-૫૪

દશાહુ મડ, સોનાસણુ સ્થાન છે, પાયે લાગે હાથીચંદ્રદાસ, પૂરો પ્રભુ આશ;—કાગળ-૫૫

जैन धर्मका महत्व ।

[लेखक—बाबू दयाचंद्र गोयलीय जैन बी. ए.]



बसे बीस पच्चीस वर्ष पहले सर्वसाधारण को जैन धर्मका कुछ ज्ञान न था, हर्षकी बात है कि वर्त-

मानमें जैन अजैन प्रायः सब ही इस धर्म के विषयमें अधिकर ज्ञान प्राप्त करते जाते हैं और विशेष हर्षकी बात यह है कि आजकल अंग्रेजी राज्यमें लोगोंके हृदयोंसे पक्षपात निकलता जाता है। पहले फूट और पक्षपातके कारण प्रायः लोगोंका जैन धर्मके विषयमें अच्छा ख्याल न था, परंतु अब विचारस्वाधीनता और शिक्षाके समयमें बहुतसे मनुष्य इसकी मुक्त कंठसे प्रशंसा करते हैं। मेरे विचारमें यह धर्म संसारभरके धर्मोंसे उत्तम है। इस बातके देखनेके लिए कि अमुक धर्म कैसा है उस धर्म के तत्वों और सिद्धांतोंके देखनेकी आवश्यकता होती है। जो धर्म प्राकृतिक नियमोंपर स्थिर हो, जिस धर्मके सिद्धांत युक्ति और प्रमाणसे खंडित न हो सकते हों, जिनमें स्वपरविरोध न पाया जाता हो, जो जीवमात्रको शांतिदाता और हितकर हो, जिसके

द्वारा सम्पूर्ण जीवोंका कल्याण होता हो वही धर्म वास्तवमें सर्वोत्तम धर्म है। यदि कोई मनुष्य दीर्घदृष्टिसे जैन धर्मके सिद्धांतोंको देखे और समझे तो ये सब बातें इसमें पाई जाती हैं, इस कारणसे यदि हम इसको सर्वोत्तम धर्म कहें तो अनुचित न होगा।

सबसे बड़ा सिद्धांत जो जैन धर्मके महत्वको प्रगट करता है, अनेकांत धर्म है। जैन धर्ममें प्रत्येक पदार्थ अनेकांत रूप है। जो कुछ इस धर्ममें कहा गया है अनेकांत रूपसे कहा गया है। अनेकांत रूपसे वस्तु एकभी है, अनेकभी है, सत्भी है, असत्भी है। भावार्थ—प्रत्येक प्रश्नका उत्तर जैन धर्म अनेकांत रूपसे देता है, एकांतसे नहीं देता। अब प्रश्न यह होता है कि अनेकांत किसका नाम है? इसका उत्तर यह है कि अनेकांत वह धर्म है जिसके अनुसार पदार्थोंका स्वरूप उनके गुणस्वभावकी अपेक्षा मित्र मित्ररूप वर्णन किया जाता है अर्थात् जब कोई बात किसी पदार्थके विषयमें कही जाती है, तो वह उस पदार्थके उस गुण वा पर्यायकी अपेक्षा ही कही जाती है कि जिससे उसका सम्बंध है। गुणपर्यायकी अपेक्षाके बिना कोई बात पूर्णरूपसे किसी पदार्थके विषयमें नहीं कही जाती है। इसके विपरीत एकांत वह धर्म है कि जो किसी बातका जो किसी पदार्थके किसी गुण वा पर्याय विशेषसे सम्बंध रखती हो, उस गुण वा पर्यायकी अपेक्षाके बिना ही पूर्ण रूपसे

उस पदार्थसे सम्बंध कर देता है । एकांत अनेकांतके समझनेके लिए कुछ उदाहरण देते हैं ।



किसी समय एक ग्राममें ६ अंधे रहते थे । उन्होंने हाथी कभी नहीं देखा था । एक दिन दैवयोगसे कोई राजा हाथीपर चढ़कर उस ग्राममें आया । हाथीके आनेके समाचार सुनकर उन छहों अंधोंको हाथीके देखनेका शोक हुआ और वे हाथी देखनेके लिए गए । एक अंधेने जाकर हाथीकी पूंछको पकड़ा । दूसरेने हाथीके पेरोंको टटोला । तीसरा उसके पेट पर हाथ फेरकर चला आया । चौथेने केवल कानका स्पर्श किया । पांचवेंका हाथ हाथीके दांत पर पड़ा । छठेने हाथीकी सूंडको हाथ लगाया । जब छहों अंधे संध्याके समय एकत्रित हुए, तब उन्होंने हाथीका स्वरूप वर्णन करना प्रारम्भ किया । जिसने केवल पूंछको पकड़ा था उसने हाथीको एक रस्सेकी समान बतलाया । दूसरेने जिसने टांगको पकड़ा था, हाथीको एक स्तम्भकी समान बतलाया । तीसरेने जिसने हाथीके पेटको हाथ लगाया था, हाथीको एक बड़े मटकेकी समान बतलाया । चौथेने जिसने कानका स्पर्श किया था हाथीको सूपके समान कहा । पांचवेंने जिसका हाथ हाथीके दांत पर पड़ा था, हाथीको सींगकी समान बतलाया । छठेने जिसने सूंडका

स्पर्श किया था, हाथीको मूसलकी समान बतलाया । इसी प्रकार वे छहों अंधे आपसमें लड़ने झगड़ने लगे और एक दूसरेको झूठा बतलाने लगे । उनकी बातचीतको एक आंखवाले मनुष्यने सुनकर विचार किया कि वास्तवमें इनमेंसे हरएकने हाथीके एक अंगको देखा है और जैसा वह अंग है वैसा ही वह कुल हाथीको बतलाता है । यही इनमेंसे हरएककी भूल है । अतएव उसने उन छहों अंधोंसे कहा कि—तुम व्यर्थमें लड़ रहे हो । वास्तवमें अनेकांत सिद्धांतके अनुसार तुम सब सच्चे हो । तुममेंसे हरएकने हाथीके एक एक अंगको देखा है, कुलको नहीं देखा है । तुममेंसे हरएककी बात उस अंगकी अपेक्षा जो उसने देखा है, सच है । पूंछकी अपेक्षा हाथी रस्सेकी समान, टांगकी अपेक्षा स्तम्भकी समान, पेटकी अपेक्षा बड़े मटकेकी समान, कानकी अपेक्षा सूपकी समान, दांतकी अपेक्षा सींगकी समान और सूंडकी अपेक्षा मूसलकी समान कहला सकता है परंतु यदि तुम एकांत पकड़के हाथीको रस्से वा स्तम्भकी समान कहो तो ठीक नहीं है ।

अतएव इसी प्रकार एकांत धर्मवाले वस्तुके किसी गुण वा पर्यायविशेषको देखकर कोई सिद्धांत जो केवल उस गुण वा पर्यायसे सम्बंध रखता है, उस गुण वा पर्यायकी अपेक्षाके बिना ही कुल वस्तु

पर लगा देते हैं, परंतु अनेकांत धर्म उस सिद्धांतको उस गुण वा पर्यायकी अपेक्षासे ही उस वस्तुपर लगाता है। यही एकांत अनेकांतमें भेद है।

* * * *

दूसरा उदाहरण और लीजिए। अनुमान करो कि एक मनुष्यका नाम मोहन है और उसके बापका नाम राम है और उसके एक बेटा है, जिसका नाम सोहन है। अब यदि कोई यह प्रश्न करे कि मोहन पिता है या पुत्र, तो अनेकांतसे उसका उत्तर यही होगा कि मोहन पिता भी है और पुत्र भी है। अपने पिता रामकी अपेक्षा वह पुत्र है और अपने पुत्र सोहनकी अपेक्षा वह पिता है। एकांत पकड़कर उसको पिता ही कहना या पुत्र ही कहना ठीक नहीं है। भिन्न भिन्न अपेक्षासे पिता पुत्र दोनों हैं। इस अपेक्षाहीका नाम जैन धर्मकी परिभाषामें नय है। किसी नयसे कोई वस्तु कुछ है। किसी और नयसे वही वस्तु कुछ और है। इसीका नाम अनेकांत है।

अब इस अनेकांत धर्मको धार्मिक सिद्धांतोंमें घटाईये। जैसे प्रश्न है कि परमात्मा और आत्मा एक है या दो हैं? कई धर्मोंवाले आत्मा और परमात्माको एक मानते हैं और कई दो। परंतु जैन धर्मके अनुसार परमात्मा और आत्मा एक भी है और दो भी है। किसी नय विशेषसे

एक है और किसी दूसरी नयसे दो हैं। यदि उनके वास्तविक स्वभाव वा स्वरूपको देखा जाए तो एक हैं अर्थात् शक्तिकी अपेक्षा एक है और उस स्वभावकी व्यक्तिकी अपेक्षा दो हैं। भावार्थ-जैन धर्मानुसार दोनों सिद्धांत भिन्न भिन्न नयसे ठीक हैं। और जो धर्म परमात्मा आत्माको एकही या दोही बतलाते हैं, यदि अनेकांत रीतिसे किसी अर्थ व अपेक्षा विशेषसे एक वा दो कहें तो उनका कहना ठीक है, झूठ नहीं है, परंतु यदि एकांतको लेकर सर्वथा एक वा दो कहें तो ठीक नहीं है।

* * * *

दूसरा प्रश्न लीजिए कि द्रव्य एक है या अनेक। कुछ मतवाले सम्पूर्ण जगत्में एकही द्रव्य मानते हैं। कुछ दो और कुछ दो से अधिक मानते हैं। परंतु जैन धर्मके अनुसार द्रव्य एक भी है, दो भी है, दो से अधिक भी हैं। जैन धर्ममें द्रव्यका लक्षण सत् बदलाया गया है, अतएव द्रव्य जहां तक उसके सत् धर्मका सम्बन्ध है, एक है परंतु जब अन्य गुणोंकी अपेक्षासे देखा जाता है तो दो वा दोसे अधिक कह सकते हैं। जैसे जब ज्ञान वा चेतनाकी अपेक्षासे विचार किया जाता है तो द्रव्यके दो भेद हो जाते हैं—१ जीव, २ अजीव। फिर मूर्तीक व अमूर्तीककी अपेक्षासे जीवके दो भेद हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य गुणोंकी अपेक्षा अधिक अधिक भेद हो जाते हैं।

इसी प्रकार अनेकांत रूपसे जैन धर्म द्रव्यको एक वं अनेक मानता है। जैन धर्मानुसार एक, अनेकमें अविनाभावी सम्बंध है। एकके बिना अनेक नहीं हो सकता और अनेकके बिना एक नहीं हो सकता। ऐसा नहीं है कि एकका अस्तित्व अनेकसे बाहर कहीं पृथक् वा भिन्न है और अनेकका अस्तित्व एकसे बाहर कहीं पृथक् है किंतु एक अनेकमें है ओर अनेक एकमें।

* * * *

वास्तवमें जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है कि जो किसी धर्मसे बिरोध नहीं रखता, किसी धर्मके सिद्धांतोंको झूठा नहीं बतलाता है, किंतु सम्पूर्ण धर्मोंके सिद्धांतोंको अनेकांतसे सच्चा सिद्ध करता है। वास्तवमें देखा जाए तो अद्वैत व द्वैत आदि समस्त मत जैन धर्मके अंदर सामिल है। जैन धर्म एक समुद्रके सदृश है और अन्य समस्त धर्म उसके अंदर लहरोंकी समान है। यदि प्रत्येक लहर समुद्रके अंदर अपने यथेष्ट स्थानपर है, तो वह समुद्र ही है, परंतु यदि उस लहरको उसके उचित स्थानपरसे समुद्रमेंसे बाहर निकाल लिया जाए तो वह समुद्र नहीं कहला सकती। इसी प्रकार यदि प्रत्येक धर्मके सिद्धांत अनेकांत रूपसे जैन धर्मके अंदर है, तो जैन धर्मही है। यदि अनेकांतसे निकालकर उनको एकांत रूपसे विना किसी गुण वा अपेक्षाके माना जाए तो जैन धर्म नहीं हैं। जैन ध-

र्मका अनेकांत एक ऐसा सिद्धांत है कि जिससे समस्त धर्मोंके मतभेद और लड़ाई झगड़े दूर हो जाते हैं, आपसमें प्रेम और मित्रता बढ़ती है और समस्त मत सच्चे प्रतीत होते हैं। अनेकांत एक ऐसा चश्मा है कि जिसके लगानेसे ज्ञान और सत्यताका प्रकाश हो जाता है, पक्षपातका सत्यानाश हो जाता है और जगतभरके ऋषियों, मुनियों, महात्माओं और अवतारोंके वाक्य सच्चे ही सच्चे मालूम होते हैं।

* * * *

दूसरा सिद्धांत जो जैन धर्मके महत्वको प्रगट करता है,—कर्म सिद्धांत है। यों तो सनातनधर्मी, आर्यसमाजी आदि अन्य मतावलम्बी भी कर्मके सिद्धांतको मानते हैं परंतु उनके यहां कर्मका सिद्धांत अपूर्ण और अव्यक्तसा है। वे केवल क्रियाको कर्म मानते हैं। यह कुछ नहीं बतला सकते कि कर्मका बंध किसको कहते हैं। कर्मका आसव तथा बंध किस तरह होता? कर्म फल किस तरह देता है और कर्म आत्मासे पृथक् किस तरह होता? इन प्रश्नोंका उत्तर अन्य मतावलम्बियोंका कर्मसिद्धांत कुछ नहीं दे सकता। जैन धर्म इन सब बातोंको विशद रूपसे बतलाता है। जैन धर्ममें कर्मके दो भेद किए गए हैं:-
१. भावकर्म, २. द्रव्यकर्म। आत्मामें जो पुद्गलके समावेशसे राग, द्वेष, क्रोध, मान,

माया, लोभके विचार उत्पन्न होते हैं, उनका नाम भावकर्म है। संसारमें पुद्गलके सूक्ष्म परमाणु सर्वत्र भरे हुए हैं। आत्माके भावकर्मके कारण वे सूक्ष्म परमाणु आत्माकी ओर आकर्षित होते हैं। इसका नाम कर्पास्रव है। वे सूक्ष्म परमाणु जो आत्माकी ओर खिंचकर आते हैं, आत्माकी तीव्र वा मंद कषायके अनुसार एक समय विशेषके लिए आत्मासे बंध जाते हैं, इसीका नाम कर्मबंध है। यद्यपि ये सूक्ष्म परमाणु निर्जीव पदार्थ हैं परंतु आत्माकी कषायके कारण उनमें एक प्रकारकी शक्ति आत्माको सुख वा दुःख देनेकी पैदा हो जाती है। जो परमाणु शुभ विचारों, शुभ रागके कारणसे बंधते हैं वे आत्माको सुख पहुंचाते हैं और जो परमाणु अशुभ विचारों, घृणा, द्वेष आदि अशुभ योगसे बंधते हैं वे आत्माको दुःख पहुंचाते हैं। ये सूक्ष्म परमाणु ही द्रव्यकर्म हैं। जिस प्रकार वृक्ष पर फल समय आने पर पकते हैं, इसी प्रकार ये द्रव्य कर्म भी अपने समय पर आकर फल अर्थात् आत्माको सुख दुःख देते हैं। साधारणतया ये द्रव्यकर्म समय पर आकर फल देते हैं, परंतु कभीर ऋषि मुनि लोग अपने तप-ध्यानके बलसे कर्मको समयसे पहले ही पकाकर उदयमें ले आते हैं जिस प्रकार कि आम को पालमें दबाकर समयसे पहलेही पका लेते हैं। कर्मका फल देना ही उसका

उदयमें आना कहलाता है। जब आत्मा जीव अजीवके वास्तविक स्वरूपको जानता है और अपने शुद्ध स्वभावमें श्रद्धान करता है तथा रागद्वेषादिको छोड़कर निज स्वभावमें लीन होता है तो उससे कर्मका आस्रव रुक जाता है। उसको कर्मका सम्भ्र कहते हैं परंतु जब आत्मा कर्मके फल अर्थात् सुखदुःखको भोगता है उस समय क्लेश तथा अन्य प्रकारके कषाय भाव करता है जिससे आगेको नवीन कर्मका बंध हो जाता है। यदि आत्मा कर्मके फलको समता तथा शांतभावसे संतोषके साथ भोगे और रागद्वेष न करे तो आगामीमें कर्मका आस्रव रुक जाता है अर्थात् कर्मका सम्भ्र हो जाता है। कर्मका आत्मासे पृथक् होनेका नाम निर्जरा है। कर्म आत्मासे सदैव अपना फल दे देकर पृथक् होते रहते हैं अर्थात् साधारण रूपसे सदैव कर्मोंकी निर्जरा होती रहती है और नवीन कर्मोंका बंध होता रहता है। तप, ध्यान आदिके द्वारा भी कर्मोंकी निर्जरा होती है और जब सम्भ्र से नवीन कर्मोंका बंध नहीं होता तथा पिछले सम्पूर्ण कर्म पृथक् हो जाते हैं उस समय आत्माकी मोक्षावस्था हो जाती है अर्थात् भावकर्म तथा द्रव्यकर्म दोनोंसे मुक्त होकर आत्मा अपने वास्तविक शुद्ध स्वरूप अर्थात् अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य आदिको प्राप्त कर लेता है। [शेषमग्रे।]

थुइफं च अं ।

संसारमज्जे भममाणजीवा दुक्खादु काही बहुहा पलावं ।
 ता थाविआ जेण सुहस्स मग्गे णवेज्ज हं तं जिणरायरायं ॥१॥
 णसेज्ज तिव्वो वि अ कम्मबंधो अमुत्थ अप्पाण सुदुक्खआरी ।
 गुणेण कित्तेण पहुस्स जस्स णवेज्ज हं तं जिणरायरायं ॥२॥
 गयम्मि गब्भं पुढवीइ जस्स (जत्थ) हरिस्स आणाइ छमासपुवं ।
 कुणंति देवा रयणाण विट्ठिं णवेज्ज हं तं जिणरायरायं ॥३॥
 पंचिदियाणं विसयं विमोत्तुं तणव्व रज्जं च अणिच्चमाहो ।
 काही तवं कम्मविहेदणत्थं णवेज्ज हं तं जिणरायरायं ॥४॥
 अप्पाण सग्गभावमण तंणाणं सहंसणं तव्व चरित्तिमं च ।
 तिव्वाइ पत्तो तवं सत्तिए जो णवेज्ज हं तं जिणरायरायं ॥५॥
 कया थुइ सिरीलालजइ णेण सुभत्तिए ।
 पढिआ देज्ज सव्वेसि संव्वकालम्मि सग्गाइं ॥



कायाके कारेमें ।

गझल

काया गढ़ जीतनेका अब, कर तजर्वाज़ सोया क्युं ?
 षडरिपुंसे मिला हय तूं, उसिको दूर न करता क्युं ?
 बना हय मिट्टीका पूतला, उसीमें दिल लगाया क्युं ?
 अरे हरदम क्या कहेता हय, बनाता झूट सच अब क्युं ?
 पकड़ले नेकीकी अब राह, झूठेको मनाता क्युं ?
 एक दिन ऐसा आवेगा, जी काया छोड़ जावेगा !
 देंगा जब वहां सब कुच्छ, फीर पस्ताके रोता क्युं ?
 रुस्तम भी गया देख लो, बहेराम न जमीपे क्युं ?
 बड़े अफसर चले गये जब, एक ही तू रहेगा क्युं ?
 चले गये और भी कितने, तेरी निगाहके साम्हने !
 देखा नझरोंसे बंहोत ही खूब, अब तक तूं सोया हय क्युं ?
 कलजुग नहीं करजुग हय, ये हाथ दे और ये हाथ ले !
 क्या खूब सबदा नझरसे देख, गुमाना उम्र बाक़ी क्युं ?
 काया मट्टीकी मट्टीमें, मिलेगी एक दिन प्यारे,
 पुनसी अब ध्यान दे दे तूं, भला जीका न करता क्युं ?

दयामयी सुशिक्षा.

प्रिय सज्जनों! आप हम सभी चाहते हैं कि भारतमें अशांति दूर होकर सुख और शांति-की वृद्धि हो। यह वही भारतकी वसुंधरा है जहां पर बड़े ऋषिमहात्माओंने जन्म लिया और स्वर्गके देवादिक जिसमें जन्म लेनेकी अत्यन्त इच्छा रखते हैं, क्योंकि यह भारतभूमि एक ऐसा स्थान है जहांपर सब प्रकारके आनन्दोंका वास रहता है।

पहिले जब कि ऋषिमहात्मा इस भूमिपर विद्यमान थे, तो उनके द्वारा दयामयी सद् उपदेश रुपी अमृतवृष्टि होनेसे सर्व प्रकारकी शांतिही रहती थी, हिंसाके उपद्रव डांका, चोरी, व्याभिचार, आदिके जूलमोंका अभाव रहता था, असत्य तथा दगाबाजीका नाम नहीं जानते थे, एक दुसरेके साथ प्रेमका बर्ताव रखते थे, स्वप्नमेंभी किसीको बाधा पहुंचानेके ख्यालात (इच्छा, मंशा) नहीं होते थे, दुसरेकी आपत्तिमें मददगार रहते थे, सबको अपने भाई बंधुओंकी तरह समझते थे, स्वभावोंमें क्रूरता स्थान नहीं पा सकती थी, सरल स्वभावधारी रहते थे, मनुष्योंकी तो क्या बात, क्रूर स्वभावी सिंहादिक जानवर भी अपनी क्रूरताको छोड़कर रहते थे, यही सबब था कि सब प्रकारकी शांति और सुखका अनुभव होता था, कभी दुर्भिक्ष, महामारी आदि उपद्रवोंका सामना नहीं

करना पड़ता था, क्योंकि “ जैसी करणी वैसी भरणी । ” की कहावत प्रसिद्ध है। अर्थात् जैसी हमारी करणी होगी वैसा ही फल प्रगट होगा। जब अच्छे ख्यालात, अच्छे कर्तव्य होते थे, तो अच्छा ही फल, सुख और शांति मिलती थी और शासन-कर्त्ता (भूपति) को भी ज्यादा प्रबंधादि करनेकी तकलीफ नहीं उठानी पड़ती थी, ये सब दयामयी सुशिक्षा (Humane Education) का फल था। परंतु देखा जाता है वही भारत समयके फेरसे आज दुःख और अशांतिका स्थान हो रहा है। चहूं ओर बारदातें, डकैती व हिंसाके उपद्रव लड़ाई, झगड़े, चोरी, व्यभिचार आदि जुल्म सुननेमें आते हैं। झूठ, दगाबाजी की प्रचूरता हो रही है, एक दूसरेके साथ प्रेमके बर्तावका अभाव हो रहा है, स्वभावोंमें कठोरता, निर्दयता, क्रूरता, बढ़ रही है, खानपान भ्रष्ट हो रहा है, दिनपर दिन दुष्कालका सामना करना पड़ रहा है, अनेक बिमारियोंकी वृद्धि हो रही है इत्यादि। यह सब उस दयामयी शिक्षाका न होनेका ही फल प्रकट हो रहा है।

बस, प्यारे भारतवासीयों! यदि आप इन उपद्रवोंसे बचना चाहते हैं तो उसके लिये दयामयी सुशिक्षा (Humane Education) की बड़ी आवश्यकता है। जबतक दयामयी शिक्षाका प्रकाश न हो-

गा, सुख और शांति प्राप्त नहीं हो सकती ।

दयाधर्मकी शिक्षा बतलाती है:—

प्राणीमात्र किसीको मत सताओ, सब जीवोंको अपने मित्र समझो, दुसरेकी जानको अपनी जानके माफिक समझो, झूठ, कठोर, दुसरेको बाधा पहुँचानेवाले बचन कभी न बोलो, चोरी, डकैती मत करो, पर स्त्रीको माता पुत्री बहनकी दृष्टिसे देखो, एक दुसरेकी सहायता करो, सबके साथ प्रेमका बर्ताव रक्खो इत्यादि २ ।

जब इस प्रकारकी शिक्षाओंका मनुष्य मात्रके हृदयपर सिक्का जम जायगा तो फिर कभी उपर्युक्त उपद्रव नहीं हो सकेंगे और शान्ति ही शांति नजर आने लगेगी, साथ में हमारी ब्रिटिश गवर्नमेन्ट को इन उपद्रवोंके रोकनेके लिये इतिजाम करने वगैरहमें जो इतनी दिक्कतें उठानी पडती हैं, वह भी इस दयामयी शिक्षा होनेसे न उठानी पड़ेगी !

प्रिय बंधुओ ! अब आपकी सेवामें सादर प्रार्थना है कि यदि आप अपने हार्दिक भावसे सुख चाहते हैं तो सभाओं-द्वारा, उपदशोंद्वारा, टैक्टोंद्वारा, दयाधर्मकी शिक्षा फैलाईये और अपनी संतानको दयामयी शिक्षा लेनेके लिये उत्तेजित कर उनको दयालु करानेका पूर्ण प्रयत्न कीजिए ताकि ये आपकी संतान स्वयं दयालु हो कर दयाधर्मकी शिक्षा प्रकाश करनेमें समर्थ हो ।

साथमें मैं स्कूल इन्सपेक्टरान् व टीचरान्का भी इस तरफ चित्त आकर्षित करता हूँ कि यदि प्रान्त २ के हरएक स्कूलोंमें प्रारंभिक श्रेणीसे लेकर उच्च श्रेणी तक अन्य शिक्षाके साथ २ दयामयी शिक्षाका कोर्स प्रविष्ट हो जावे और मास्टर लोग अपने हार्दिक प्रेमसे दयामयी शिक्षाका उन सुकुमार बालकोंके हृदय पर अंकुरारोपन करें तो फिर देखिये थोडेसे ही समयमें क्यासे क्या तबदीली दिखती है यानी जो अशांति और उपद्रव सुने जाते हैं, उनका नाम निशान भी न रहेगा और सब प्रकारसे शांति और सुख ही दृष्टिगोचर होगा।

पश्चिमीय बहुतसे विद्वानोंने इस बातको अच्छी तरहसे मालूम कर लिया है कि विना ह्युमन एज्युकेशन यानी दयामयी शिक्षाके कभी शांति नहीं रह सकती है और नहीं मनुष्य इसके विना सभ्य बन सकता है अतएव अमेरिका इग्लंड के बहुतसे स्कूलोंमें दयामयी शिक्षाओंके कोर्स नियत होकर शिक्षा होने लगी है जिससे वहाँके लडकोंमें थोडेसेही दिनोंमें ही सभ्यता ज्यादा बढ़ रही है । शिक्षाकी पुस्तकें भी तय्यार हुई है अगर आप देखना चाहें तो वहाँसे मंगाकर देख सकते हैं ।

अब मैं ज्यादा कुछ न कहकर आशा करता हूँ कि आप सज्जन दयामयी धर्मके प्रकाश करनेके लिये पूर्ण प्रयत्नशील होंगे । और महोदय स्कूल इन्सपेक्टरान् व टीचरान् इसपर अवश्य विचार करेंगे और यदि उचित हो तो दयाधर्मकी शिक्षा होनेके लिये अवश्य शीघ्र प्रबन्ध जारी कर श्रेयके पात्र होंगे ।

प्रार्थी—अमोलखचंद्र उडेसरवाला (इन्दौर)

જૈન જીવન અથવા દૈવી જીવન.

(લેખક—વાડીલાલ મોતીલાલ શાહ-મુંબાઈ.)

લાંબા વખતથી આપણે ધર્મની વાતો કરતા આવ્યા છીએ અને સાંભળતા આવ્યા છીએ. ગુરૂઓની આજ્ઞાનો અમલ કરવામાં, દે'રાં-અપાસરા-જૈનશાળા આદિ બાંધવામાં, ધર્મ ગ્રંથો લખાવવા કે છપાવવામાં, યાત્રા અને સ્વામીભાઈઓને અપાતાં જમણોમાં, વરઘોડા અને મેળાવડાઓમાં અને એવી બીજી અનેક ધર્મને નામે થતી પ્રવૃત્તિઓમાં આપણે અત્યાર પહેલાં જોઈએ તે કરતાં વધારે દ્રવ્ય, સમય અને શક્તિનો વ્યય કરી નાંખ્યો છે; અને તે છતાં હજી આપણે જૈન જીવન અથવા દૈવી દીવ્ય જીવનના સીમાડા સુધી પણ આવી શક્યા નથી. ધાણીના બળદની માફક આંખે પાટા બાંધીને રાત્રીદિવસ ચાલનારા આપણે વર્ષો સુધીની પ્રવૃત્તિઓને અંતે એક ઈચ્છિ પણ આગળ વધવા પામ્યા નથી, જે કે એ નિષ્કળ પ્રવૃત્તિઓના થાકથી નિર્બળ તો અવશ્ય થયા છીએ.

આપણે નથી મેળવ્યું આરોગ્ય કે શરીરબળ, આપણે નથી કેળવ્યું બુદ્ધિબળ કે હૃદયબળ; આપણે નથી કરી શક્યા અધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાન્તિ, કે નથી કરી શક્યા લૌકિક ઉન્નતિ. શું 'ધર્મ'—તે પવિત્ર તત્ત્વ એટલું સત્વહીન થઈ ગયું છે કે તહેને પૂજનારા પતીત થાય ? શું જૈન જેવા જ્યવંતા ધર્મમાં પણ મનુષ્યોની ઉન્નતિ કરવાની શક્તિ રહી નથી ? કેવળ અસંભવિત ! આપણે ધર્મને-જૈન ધર્મને-પીછાન્યોજ નથી અને કોઈ ભળતેજ રસ્તે ચાલવા છતાં જૈન ધર્મને રસ્તે ચાલવાનો

દેખાવ કરીએ છીએ; તેથી શું કાંઈ આપણા મ્હેં ઉપર પ્રકાશ આવી શકે અગર આપણાં નેત્ર દીવ્ય બની શકે ? મડદાને ધાવવાથી કાંઈ પોષણ મળી શકે ? આપણે જીવતો ધર્મપથ શોધવો જોઈએ, આપણે ધર્મનું વ્યવહાર સ્વરૂપ સહમજવું જોઈએ, આપણે બુદ્ધિની પાછળ શ્રદ્ધાને દોરવી જોઈએ, આપણે જીવનનો ઉચ્ચ આશય શિખવે એનેજ ધર્મ માનવો જોઈએ.

જીવનને ઉચ્ચ બનાવે, એજ ધર્મ આપણને માન્ય હોવો જોઈએ. ધર્મને આંગે થતાં કાર્યો, ક્રિયાઓ અને ભાવનાઓ જે જીવનનું ઉચ્ચીકરણ કરવાના આશયથી વચ્ચિત હોય તો તે કાર્યો, ક્રિયાઓ અને ભાવનાઓથી શું લાભ ?—પછી તે ચાહે તેવા પ્રતિષ્ઠિત પુરૂષથી કે બ્રહ્માથી યોગ્યલી કહેવાતી હોય તોપણ શું ?

ધર્મના નામથી થતાં જે ફરમાનો આપણું આરોગ્ય સંરક્ષવાને મદદગાર થતાં હોય, જે ધાર્મિક ક્રિયાઓ આપણને દુનિયા પ્રત્યેનાં આપણાં કર્તવ્યો બજાવવામાં જોઈતું બળ ધીરતી હોય, અને જે ધાર્મિક ભાવનાઓ આપણને આધિ-વ્યાધિ-ઉપાધિના સાગરમાં અદ્ધર તરવાની કળા શિખવતી હોય તે ફરમાનો, તે ક્રિયાઓ, અને તે ભાવનાઓ આપણને માન્ય હોવીજ જોઈએ,—હરકોઈ વિચારશીલ મનુષ્યને માન્ય હોવી જોઈએ.

ઉપયોગ વગરની ક્રિયાઓ, ફરમાનો અને ભાવનાઓમાં વીર્ય કે સમય ખર્ચવો આપણને આજના સખ્ત જીવનકલહ વચ્ચે રહેતા પામર મનુષ્યને-પાલવે તેમ નથી. ઉપયોગ-utility-સાર્થકતા એજ આ જમાનાનું દૃષ્ટિબિંદુ છે.

અને એજ દૃષ્ટિ બિંદુથી હમણાં હું જૈન જીવન અથવા આત્મિક જીવન અથવા દિવ્ય જીવનનું સ્વરૂપ વિચારવા માગું છું.

જેન જીવન જીવવું એ ધારવામાં આવે છે એટલું મુશ્કેલ નથી.

આપણે દરરોજ સાંભળીએ છીએ કે ધર્મ પાળવો એટલે કે ધાર્મિક જીવન ગાળવું એ અતિ દુષ્કર છે. પરન્તુ આમાં કાંઈક અતિશયોક્તિ અવશ્ય થાય છે. આત્માએ આત્મિક જીવન જીવવું એ તો એને માટે સહજ અથવા સ્વાભાવિક હોવું જોઈએ અને એમજ છે. પરન્તુ ખીજા હાથ ઉપર, આત્માએ અભાર આગમય સ્વેચ્છા પૂર્વક જે જે શરીરો આંધ્યાં છે તે તે શરીરો પોતાનો સ્વભાવ પણ અહોનિશ લજ્યાં કરે છે, તેથી આત્મા કે જે તે તે શરીરોની અંદર નિવાસ કરે છે તેને તે ગાઠ સહવાસને લીધે તે તે શરીરોનો સ્વભાવ તે પોતાનો સ્વભાવ જણાય છે અને તેથી સ્વસ્વભાવનું સ્મરણ રહેતું નથી. 'સ્થૂલ શરીર' આમ-તેમ ભટક્યા કરે છે અગર જે તે કાર્ય કર્યા કરે છે, 'તૈજસ' કે ઇન્દ્રિયશરીર ભિન્નભિન્ન ઇન્દ્રિયોમાં દોડ્યાં કરે છે, 'કાર્મણુ' કે વિચાર-શરીર ગમે તે વિચારોમાં ભટક્યા કરે છે; અને આ ત્રણે શરીરોના અખંડ સહવાસવાળો આત્મા એ શરીરોના ધર્મોમાં પોતાનો ધર્મ માનવા લાગ્યો છે; તે એટલે સુધી કે સ્વસ્વભાવનું તો એને સ્મરણ પણ લાગ્યેજ થાય છે. જેમ એક ગણિકાના નિરંતર સહવાસમાં રહેનારા ફક્કડને આખ્યા દિવસમાં સ્વપત્ની લાગ્યેજ એકાદ વખત યાદ પણ આવે છે, તેમ આત્માને આ ત્રણ શરીરોના નિરંતર સહવાસને લીધે સ્વસ્વભાવનું સ્મરણ લાગ્યેજ થાય છે અને તે પણ પ્રયત્નેજ થાય છે.

આ ઉપરથી ત્રણ સિદ્ધાંતો ક્ષિત થાય છે. (૧) 'સ્વભાવ' અથવા સ્વસ્વભાવમાં રમણ કરવું એ મનુષ્ય માટે સ્વાભાવિક છે—અશક્ય નથી. (૨) પરન્તુ સરેરાસ મનુષ્ય

'વિભાવ' માં અથવા જડ ભાવમાં જીવે છે, પરપ્રદેશમાંજ અને સ્વભાવવિરુદ્ધ વાતાવરણમાં જ આખી જીંદગી અથવા જીંદગીનો મ્હોટો ભાગ ગુજારે છે. (૩) અને સ્વભાવવિરુદ્ધ વાતાવરણમાં રહેવાને પરિણામે કુદરતી રીતે તેને દુઃખ અનુભવવું પડે છે. જેમકે હવામાં ઉડવાના સ્વભાવવાળી કોયલ સરોવર અંદર માંછલાની સાથે રહેવા માટે તો દુઃખી થાય જ. અહીં જે કે માંછલાં કે પાણી એ પોતે 'દુઃખ' નથી (દુઃખ એ વસ્તુતઃ કાંઈ પદાર્થ નથી) પણ સ્વભાવવિરુદ્ધ વર્તનથી અનુભવાતી લાગણી એ જ 'દુઃખ' કહેવાય છે; તેમ શરીરો અને દુનિયાના પદાર્થોના કોઈ ભાગની અંદર 'દુઃખ' નામની કોઈ ચીજ ભરી રાખવામાં આવી નથી, કે જેથી તેનો સંગ કરનારને દુઃખ વળગી પડે; પણ આત્મા કે જેનો અમર્યાદિત સ્વભાવ છે, તે આ મર્યાદિત સ્વભાવવાળાં શરીરો કે પદાર્થોમાં વસવાટ કરે છે ત્યારે તે સ્વભાવ-વિરુદ્ધ કાર્યથી સ્વભાવતઃજ જે લાગણી અનુભવાય છે તેને આપણે 'દુઃખ' એવી સંજ્ઞા આપીએ છીએ. વસ્તુતઃ દુઃખ, સુખ એ સર્વ કલ્પનાઓજ છે, અસ્તીત્વ વગર નાં ખોખાં-નામ માત્ર છે અને તેથી 'દુઃખ' ને દુર કરવાનો માત્ર એક જ રસ્તો હોઈ શકે, તે એ કે, ભાવમાંથી મુક્ત થવા અને સ્વસ્વભાવમાં જોડાવા અને તેટલો ઉદ્ધમ સેવવો. અમુક સ્થળે બેઠા હોઈએ તોજ વિભાવને ભૂલી શકાય, અમુક ભતનાં વસ્ત્ર પહેર્યાં હોય તોજ સ્વભાવનું સ્મરણ થાય, અમુક મંત્ર કે પાઠ જપીએ તોજ સ્વભાવની સ્મરણતા થાય, અમુક ક્રિયા કરીએ તોજ આત્મસ્થિરતા થાય, એવું કંઈ છેજ નહિ, હોઈ શકેજ નહિ; કારણ કે સ્થળ વસ્ત્ર, પાઠ, ક્રિયા એ સર્વ પોતે પણ ભાવો-જ છે, જડ જ છે. જે પંથ સૌથી શ્રેષ્ઠ હોવાનો દાવો કરતો હોય તે પંથના ફરમાન મુજબનાં જ વસ્ત્ર પહેરવામાં આવે, તે મુજબનીજ ઉગ્ર તપશ્ચર્યા કરવામાં આવે, તે પંથનાં

પવિત્ર શાસ્ત્રો જીવંત કરવામાં આવે અને તે છતાં પણ વિભાવવૃત્તિનો છેડા છુટકો અને સ્વસ્વભાવરમણતા ન પણ થાય. સાધનો માત્ર આશયપૂર્વક કહેવામાં આવ્યાં હોય છે એ ખરું છે, પણ સાધનો જડ શરીર માટે નથી, આત્મા માટે છે અને જેટલા પ્રમાણમાં આત્મા વિમુખ વૃત્તિથી તે સાધનોનો ઉપયોગ થાય, તેટલા પ્રમાણમાં આત્મસ્મરણ અને આત્મા-રમણતા થવા શક્ય છે.

ઉપર જે ત્રણ સાદા સિદ્ધાંતો કહ્યા તે દરેક તહેમાંની સાદાઈ છતાં બહુ ગહન છે, ફરી ફરી વિચારવા યોગ્ય છે, માનસિક દેહ ઉપર કોતરી રાખવા યોગ્ય છે. ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે કે, સ્વભાવમાં રમણ કરવું એ મનુષ્ય માટે (જે કે લાંબા વખતના વિભાવપરિચયને લીધે દુર્ઘટ થઈ પડ્યું છે તો પણ) અશક્ય નથી. અને હવે હું આગળ વળીને કહીશ કે, સ્વભાવરમણતા અથવા ધાર્મિક જીવન કે પવિત્ર જીવન અથવા દૈવી જીવન એ, આપણે ધારી બેઠા છીએ એટલું બધું મુસ્કેલ પણ નથી. અભ્યાસ વગર, પ્રેક્ટીસ વગર, ટેવ વગર આપણને એક કામ અતિ દુર્ઘટ જણાય; પરંતુ એ કામ દુર્ઘટ નથી, પણ અભ્યાસ કે ટેવ પાડવાની દૃઢતાજ દુર્ઘટ છે. ટેવ પડી એટલે એ કામ સરળ-કહેા કે સ્વાભાવિક થઈ પડે છે. પાણીમાં ડૂબકી મરવી એ આપણને ગુંગળાઈ મરવા જેવું કામ લાગે છે, પણ ટેવ પડ્યા પછી એ કામ સ્વભાવ રૂપ બની જાય છે અને હજારો મનુષ્યો ડુબકીમાં મગ્નહ માને છે. તેમ આત્માની ઉપાસના અથવા આત્મરમણતા અથવા ધાર્મિક જીવન (કે જે સઘળા એક જ અર્થ સૂચવતા શબ્દો છે) નો બધો આધર ટેવ ઉપર-અભ્યાસ ઉપર રહે છે. દારૂ પીનારાઓ કહે છે કે, કલેરેટ નામના દારૂનો ખાલો પહેલીજ વાર મહોં આગળ લાવતાં તહેમને ઉલટી થવા જેવું થાય છે,

પણ ટેવ પડ્યા પછી એ દારૂ તહેમને બેહદ સ્વાદિષ્ટ લાગે છે. યોગી લોકોને શહેરના ભલકાઓમાં આવવું પણ ગમતું નથી અને જે એકાંત વાસથી આપણને કંટાળો આવે છે તહેમાં જ તહેમને સુખ લાગે છે. એક શહેરના મીનારામાંના ઘડીઆળની નજીકમાં રહેનાર એક ગાંડાના સમ્બન્ધમાં એમ કહેવાય છે કે તે ઘડીઆળમાં જ્યારે ડંકા વાગતા ત્યારે તે હમેશ એક-બે-ત્રણ એમ ગણ્યા કરતો, એક વખત ઘડીઆળ બગડી ગઈ અને ડંકા વાગતા બંધ થયા, તે છતાં તે ગાંડો બરાબર કલાકે ડંકા ગણતો! આસ્ટાઇલના કિલ્લામાં નિર્દોષ મનુષ્યને કેદ પુરવામાં આવ્યો હતો, તહેની સજા પુરી થતાં જ્યારે તહેને તહેના અધિકારમય આરડામાંથી બહાર કહાડ્યો ત્યારે તહેણે એ જ સ્થળે પોતાનું બાકીનું જીવન પુરું કરવા દેવાની માગણી કરી હતી; કારણકે ઘણા વખતના સહવાસને લીધે - અભ્યાસને લીધે - ટેવને લીધે તે સ્થળ જ તહેને સુખરૂપ થઈ પડ્યું હતું, અને તે છોડી પ્રકાશમાં આવતાં દુઃખ થતું હતું. બીડી પીવી અને તમાકુ ખાવી એ પ્રથમ તો અણુગમે ઉત્પન્ન કરે છે પણ ટેવ પડતાં એ બલાઓ ઉલટી મગ્નહ આપનારી જણાય છે. ડૉ. એટરબરી નામનો વિદ્વાન કહે છે કે, તહેને દક્તરો અને આંકડા તપાસવનું કામ કંટાળાભરેલી મજૂરી જેવું લાગતું હતું, પરંતુ કેટલોક વખત એ કામ કર્યા કરવા પછી-ટેવ અથવા અભ્યાસને લીધે-એ કામમાં માની શકાય નહિ એટલી મગ્નહ એને પડવા લાગી. આ સઘળાં દૃષ્ટાંતો ઉપરથી સહજ સ્હમજાય છે કે, મહાન વિચારક બેકનના આ શબ્દો તદ્દન સાચા છે કે, "જે ચીજ આપણને પ્રથમ નાપસંદ કે મુસ્કેલ લાગે છે તે ચીજ, જ્યારે આપણે તહેનાથી ટેવાયલા થઈએ છીએ ત્યારે જેટલી આનંદદાયક, સ્વાભાવિક અને સહેલી થઈ

પડે છે, તેટલી બીજી કોઈ ચીજ થતી નથી મનુષ્યસ્વભાવના અંધારણુનું આ રહસ્ય-આ છૂપી કળ જાણવા પામનાર મનુષ્યને એક પ્રકારનો દીલાસો-આશ્વાસન મળે છે. ધર્મમય કે પવિત્ર જીવન એ અતિ મુશ્કેલ છે, એવો ખ્યાલ તે દૂર કરી શકે છે અને 'દેવ' પાડવા યત્ન કરે છે. અને જગતના નિષ્કારણ અંધુઓએ તીર્થંકરોએ ધાર્મિક તહેવારો અને ક્રિયાઓની યોજના પણ આજ ઉદ્દેશથી કરેલી છે. તહેવારોમાં જે પ્રકારનું જીવન ગુજારવાનું દ્રરમાવવામાં આવ્યું છે તથા એ ક્રિયાઓથી જે પ્રકારની અસર મનુષ્યજીવન પર થવાની આશા રાખવામાં આવી છે તે એમ બતાવી આપે છે, કે ધર્મની સઘળી ક્રિયાઓ અને દ્રરમાનો દૈવી જીવન બનાવવાને અર્થેજ છે. અહીં અગત્યનો સવાલ ઉભો થાય છે. કે, શું દૈવી જીવન માનુષી જીવનથી ભિન્ન કે વિરોધી છે? ના; જેવું એક માણસનું મનુષ્ય તરીકેનું જીવન હોય છે, તેવુંજ તહેવું મૃત્યુ પછીની સ્થિતિમાં જીવન હોય છે, સ્થૂલ દેહનો અભાવ એટલો ભેદ હોય એ જૂઠી વાત છે. મનુષ્યની જેવી ઇચ્છાઓ, વિચારો, ભાવનાઓ, આશયો, પસંદગી કે નાપસંદગીઓ મનુષ્યજીવનમાં હોય છે, તેજ મૃત્યુ પછીની સ્થિતિમાં પણ કાયમ રહે છે. કુદરત 'તડ ને ફૂડ' અથવા ઓચીંતા ફેરફાર સહન કરી શકતી નથી. મનુષ્ય તરીકે જે માણસ સંકુચિત ભાવવાળો છે તે દેવ તરીકે વિશાળ દીલવાળી વ્યક્તિઓમાં કેમ બદલાઈ શકે? મનુષ્ય તરીકે જે શોકાતુર-ઉદાસ-ગમગીન આનંદરહિત છે, તે મૃત્યુ પછી આનંદમયજ ગણાતી સિદ્ધની સ્થિતિમાં કેમ કરી ફલંગ મારી શકે? હું કહી ગયો કે કુદરતમાં 'ફૂદકા ને ભૂસકા' જેવું કાઠજ નથી. આનંદ સ્વરૂપની ભાવના ભાવો, આનંદ અનુભવવાનો 'અભ્યાસ, કરો

અને સંકટો રૂપ ગણાતા બનાવો વચ્ચે પણ આત્મસ્થિરતા કે આનંદ અનુભવતાં શિખો, તો એવી દેવ પડીને છેવટે એ દેવ પ્રયજ થતી થતી ક્રમે ક્રમે ત્હમને અખંડ આનંદ રૂપજ મનાતી સ્થિતિએ લાવી મૂકશે. આત્મિક્ષ્ણ-ખીલવવાના આશયથીજ યોજાયેલી ક્રિયાઓ કર્યા કરવા સાથે રોતડ બનો, ઉદાસી બનો, સર્વત્ર દુઃખ અને પાપજ કલ્પ્યા કરો અને એક ખૂણે બેશી અર્થ વગરના પાક ગણ્યાજ કરો, તો એ કલ્પના પ્રમાણેજ ત્હમારું મૃત્યુ પછીનું જીવન ઘડાશે. બીજાઓ તો ભલે ગમે તેમ કહે, પણ આપણે જૈનો તો ગળથુથીમાંજ આ જ્ઞાન પામ્યા છીએ કે, આકાશમાં કોઈ એવો રાજ બેઠો નથી કે જે પ્રાર્થનાની ખુશામતથી પ્રસન્ન થઈ સ્વર્ગ કે મોક્ષ આપી દેતો હોય, કે અમુક ક્રિયાઓનાં ખોખાં તરફ બહુમાન બતાવવાથી રીઝીને સિદ્ધશીલાનિવાસ બક્ષતો હોય. આપનાર કોઈ છેજ નહિ તો પછી એમજ માનવું વધારે યુક્તિપુરઃસર છે કે, જે જે ઇચ્છાઓ, વિચારો ગુણો, ભાવનાઓનું અંધારણુ અંધાય તેવુંજ જીવનું નવું સ્વરૂપ અંધાય; એટલે કે, દેવો એ સ્થૂલ (જૈનાદારિક) દેહના અંધન વગરના મનુષ્યોજ છે, માટે જ્યહારે દૈવી જીવનની ભલામણ કરવામાં આવે છે, ત્યહારે ઉચ્ચ માનુષી જીવનનીજ ભલામણ કરવામાં આવે છે.

ત્યહારે એ ઉચ્ચ માનુષી જીવનના અંગ કયાં? 'ઉચ્ચતમ મનુષ્ય' મહાવીરે એ અંગો ગણાવેલાં ચાર નામો આજે એટલા બધા જૈનોના મુખે અને એટલી બધી વાર ઉચ્ચારાય છે કે, એનું અત્રે સ્મરણ કરાવતાં કેટલાકોને આ કથનજ નીરસ લાગશે, એ ચાર અંગો જો કે દરરોજ ઉચ્ચારાય છે, પરંતુ એનું રહસ્ય સહમજવામા નથી આવ્યું; તેથીજ જૈનોનો વ્યવહાર અથવા જીવન શુષ્ક,

અનુદાર અને કેટલેક અંશે ધૃણા ઉત્પન્ન કરાવે એવું દેખવામાં આવે છે. એ ચાર અંગનાં નામ જ્યારે હું ડરતો ડરતો જાહેર કરી દઉં છું ત્યારે મહારા વાંચકોને એટલી પ્રાર્થના કર્યા વગર રહી શકતો નથી કે એ નામોના અતિ પરિચયને લીધે એમની સુંદરતાને ખાંડી થવા દેશો નહિ. દાન, શીલ, તપ અને ભાવના એ ચાર અંગો ઉચ્ચ માનુષી જીવન રચે છે; એજ ચાર અંગોની કસરત માટે સમસ્ત પર્વો અને ક્રિયાઓની યોજના કરવામાં આવી છે.



મનુષ્ય જન્મે છે તે વખતથીજ એને 'સહાય'-દયા-દાનની ગરજ પડે છે. કુદરત એને હવા અને પ્રકાશની સહાય આપે છે, માતા એને દૂધનું દાન કરે છે, પિતા એને વસ્ત્રાદિ પુરાં પાડી દયા ખતાવે છે, સ્વજનો એને ચાલતાં-બોલતાં શિખવે છે. સહાય-દયા-દાન વગર માણસ જીવી શકેજ નહિ. જે તત્વ માણસ ખીજાઓ પાસેથી મેળવીનેજ જીવી શકે છે, તે તત્વ ખીજાને આપ્યા વગર જીવવું એ શું માણસાઈ છે? એક ક્ષણ પણ ખીજાની મદદ વગર જીવી ન શકે એવો ઉપકૃત મનુષ્ય ખીજા મનુષ્યો પ્રત્યે અનુદાર રહે, માત્ર પોતાની ઇચ્છાઓની તૃપ્તિમાં રચ્યો પચ્યો રહે, એ શું ઓછું અસહ્ય છે? -ઓછી પાશવ વૃત્તિ છે? મનુષ્યપણાનું પહેલામાં પહેલું કોઈ લક્ષણ હેમ, ધર્મનો પહેલમાં પહેલો મૂળ સિદ્ધાંત કોઈ હોય તો તે 'દાન' અથવા 'કાર્યમાં મૂકાતી દયા' અથવા 'વ્યવહારમાં મૂકાતી સહૃદયતા' જ છે. જ્યાં આવી સહૃદયતા નથી-જ્યાં આવી આર્દ્રતા નથી-જ્યાં દાન નથી-જ્યાં હૃદયનું ઔદાર્ય નથી, ત્યાં ધર્મનો અંશ નથી, મનુષ્યત્વનો છાંટો પણ

નથી એમ ખુલ્લે અવાજે કહેવું જોઈએ છે. હરકોઈ ધર્મની સખ્તમાં સખ્ત ક્રિયાઓ ચોવીશે કલાક અને સો વર્ષ સુધી કરનારો માણસ જો એક યા ખીજા રૂપમાં સહાય-દયા-દાનના તત્વથી વિમુખ્ત રહેતો હોય તો એ મનુષ્ય કે મહાત્મા નામથી પોતાને ઓળખાવતી આકૃતિ પણ શિવાય ખીજા કોઈ નામને લાયક ઠરતી નથી. જ્યાં પાવો નથી ત્યાં ઇમારતની વાતજ શી કરવી? જ્યાં હૃદયજ નથી ત્યાં હૃદયભૂમિએજ વસતા દેવતા દર્શનની આશા શી કરવી? જ્યાં સ્વાર્થનીજ સંકુચિત હૃદ લોખંડી સાંકળોથી બંધાયેલી છે ત્યાં અમર્યાદિત દેવનો નિવાસ કેવી રીતે થઈ શકે? જ્યાં પાશવ વૃત્તિઓનું જ રટણ થયા કરે તે ત્યાં દૈવી પ્રકૃતિ દેખા શી રીતે દર્શ શકે? ટુંકમાં જ્યાં આર્દ્રતા-દયા-લાગણી-સહાય કરવાનો ઉમંગ-એક યા ખીજા રૂપમાં ઉલ્લાસથી થતું દાન-નથી, ત્યાં ધર્મ કે મનુષ્યત્વ સંભવેજ નહિ. ઇજ્જત ખાતર, મ્હોટાઈ ખાતર. બદલા ખાતર, સ્પર્ધા ખાતર કરાતું દાન કે દયા એને આત્મિક ધર્મમાં કોઈ સ્થળ નથી. ધર્મમાં-આત્મામાં-મનુષ્યત્વમાં માત્ર તમારા આશયની કિમત છે, નહિ કે બાહ્ય રૂપો કે દેખાવો કે કૃત્યોની. માણસ એ હૃદય છે, શરીર નથી; શરીર માત્ર હૃદયની આજ્ઞાઓનો અમલ કરનાર યંત્ર છે, માટે કૃત્યોની પરીક્ષા મનુષ્યના હૃદયના ભાવ આધારેજ થાય છે, અને એ હૃદયજ શુદ્ધાશયપૂર્વક કરાયલાં શુભ કર્મોની કસરતથી વધારે વિકસાતું વિકસાતું આખરે અમર્યાદિત બની જાય છે અને દેવ કે સિદ્ધસ્થિતિમાં આત્માને મૂકી આપે છે, એક સભા વચ્ચે એક માણસને મ્હોટો બનાવી એને ખુબ ચહાવવામાં આવે અને તે દશલાખ રૂપિયા કહાડી આપે, તેથી તહેણે દયા કરી-દાન કર્યું-આર્દ્રતા ખતાવી

એમ સ્હમજવાનું નથી; એનું હૃદય એથી વિકસવાનું નથી, એનો આત્મા એથી પ્રકૃ. સ્વીત થવાનો નથી. અલબત્ત એણે કરેલા દાનનો ઉપયોગ નથી એમ તો નથીજ. જે ભોક્ષિનો તે એક યા બીજા સમયમાં ઋણી બન્યો હતો, તે લોકોનું તહેણે આ સ્થળે ઋણ ચૂકવ્યું, અને તે લોકો એથી ક્ષયદો પણ પામ્યા; પરન્તુ તહેને તો જે ઇચ્છાથી રકમ અપાઈ તે ઇચ્છા તૃપ્ત થવા રૂપ ક્ષણ સિવાય બીજો કોઈ લાભ નથી; દૈવી લાભ નથી. જે માણસનું હૃદયજ આર્દ્રતાવાળું છે, જેનામાં દયા-દાન-સહાયના અંકુર હયાતી ધરાવે છે તે માણસ, જ્યાં પણ આર્થિક; શારીરિક કે જ્ઞાન સમ્બન્ધી સહાયની જરૂર જુએ છે, ત્યાં યથાશક્તિ સહાય માત્ર હૃદયના ઉમ્મજકથીજ કરે છે અને તે સહાય ગુપ્ત રીતે કરાઈ હોય યા ચાહન રીતે (જેવા તે વખતના સંયોગો) પણ તહેનું હૃદય તેથી ઉલ્લસે છે-વિકસે છે-આનંદ અનુભવે છે, કે જે આનંદ સિદ્ધત્વનો સ્વભાવ હોઈ સિદ્ધત્વને આકર્ષે છે-નજદીકમાં લાવે છે. આ પ્રમાણે દાન ગુણ એ આત્મિક જીવનનો-આત્માની ઉપાસનાનો-પરમેશ્વરની ભક્તિનો પહેલો મંત્ર છે, પ્રથમ સોપાન અથવા પગથીઉં છે, મૂળ સિદ્ધાંત છે. દ્રવ્યના લાગવાળા યોગીઓ દ્રવ્યથી રહીત છે એટલાજ માત્ર કારણથી કાંઈ આ દાનગુણથી વિમુખ રહી શકે નહિ; કારણ કે દ્રવ્ય દાન એજ કાંઈ દાનનું માપ નથી એ તો અગાઉ કહેવાઈ ગયું છે. હૃદયની આર્દ્રતા, આંતરની લાગણી એજ દાનની જનેતા ગણવાની હોવાથી, દયામૂર્તિ સંતો તો ઉલટા ગૃહસ્થો કરતાં અનંતગણું દાન કરી શકે, અનંતગણું ઉપકાર કરી શકે. જીવનને સહ્ય બનાવે-દીલાસામય બનાવે અને મનને ઉત્સાહ પ્રેરે-શાંતિ આપે એવા એમનાં વચનો અને મુખમુદ્રા લાખખો કરેડો રૂપિયાનાં દાન કરતાં વધારે કિમતી છે. જ્ઞાનનાં સાધનો પૂરા પાડ-

વામાં એક યા બીજી રીતે મદદગાર થવાની શક્તિ છતાં જે સાધુઓ તે આખતમાં ઉદા-સીનતા-લાગણીરહીતપણું ખતાવે છે (અને જે કેટલાકો તેથી આગળ વધીને તેમાં પાપ ખતાવી ઉસ્કેરણીઓ કરે છે) તથા જેઓ પોતાની કીર્તિ-પૂજા કે પ્રસિદ્ધિ માટે ભકતો પાસે અર્ચ-શ્રમ અને પ્રવૃત્તિ કરાવે છે અને એને 'ધર્મ'ની પ્રભાવનાનું નામ આપે છે એમનામાં ધર્મનું પહેલું અને મૂળ તત્વ દાન (દયા) મુદ્દલ નથી એટલુંજ કહીને ન અટકતાં એમને નરકના પરમાધારી કે યમદૂત કહેવામાં હું માત્ર દયાનુંજ મિશન બળવું છું એમજ મ્હારે આ સ્થળે ખુલ્લા શબ્દોમાં કહેવું જેઈએ છે.

જ્યાં 'દાન' નથી ત્યાં 'શીલ' એટલે

ચારિત્ર હોઈ શકેજ

શીલ.

નહિ, જ્યાં હૃદયની

વિશાળતા નથી ત્યાં

ક્ષમાશુદ્ધિ, સહનશીલતા, ઇન્દ્રિયનિગ્રહ, વૃત્તિ-સંક્ષેપ હોઈ શકેજ નહિ. પુરૂષોમાં ઉત્તમ એવા શ્રીમહાત્મીરે દાન પછી જે શીલ ફર-માવ્યું છે તે શીલ માત્ર બ્રહ્મચર્યપાલનમાંજ સમાપ્ત થતું નથી પણ ચારિત્ર (character)-ના અર્થમાં સ્હમજવાનું છે. એ ગુણના સ્પષ્ટ જ્ઞાન માટે ખારવતો યોજ-વામાં આવ્યાં છે. આ વ્રતોના પાલનમાં શીલનું સંગોપાંગ પાલન સમાઈ જાય છે. એ વ્રતોનું મ્હારી સ્હમજ પ્રમાણે સ્વરૂપ આ નીચે આપીશ:-

(૧) એવી યતના પુર્વક (guardedly-thoughtfully) કાર્ય કરો, વચન બોલો અને વિચારો કરો, કે જેથી કોઈ ભૂતને-જીવને ઇજા થવા પામે નહિ, અથવા ઓછામાં ઓછા ભૂતોને ઓછામાં ઓછી ઇજા થાય.

(૨) જે વાત ત્હમને જેવા રૂપમાં જાણતા હો-માનતા હો તે વાત તેવા

રૂપમાંજ કહેા; લાલ કે ડરને લીધે એને ઉદનભેદન કે ફારફેર કરશો નહિ. લોકભય, નૈતિક નિર્બળતા, લોકેષ્ણા એ સર્વને ઉંડા કૂવામાં ફેંકેા. તેમજ હાંશીમસ્કરી, પરનિંદા, ખાલી ગપ્પાં વગેરે હાનીકારક કે અનુત્પા-કદ પ્રવૃત્તિમાં વાચાનો દુરપયોગ કરશો નહિ

(૩) જે ચીજ ઉપર, જે મનુષ્ય ઉપર, જે હક્ક ઉપર, જે યશ ઉપર ત્હમારો વાજબી રીતે હુકક ન હોય તે ચીજ-મનુષ્ય-હક્ક અને યશ ઉપર દાઢ રાખશો નહિ. કાઈના હક્ક ઉપર તરાપ મારશો નહિ.

(૪) ત્હમને મજેલું વીય ત્હમારી અને બીજાઓની અનેક પ્રકારની ઉન્નતિ સાધવા માટે પહેલામાં પહેલું અને અનિવાર્ય સાધન છે; ત્હને પાશવવૃત્તિઓ સંતોષવામાં ઉડાડી દેશો નહિ. ઉચ્ચ આનંદોને ઓળખવાનું શિખો અને જે તેમ બની શકે તે અખંડ બ્રહ્મચારી રહો. તેમ ન બને તે ત્હમારા વિચારોને વિદ્ધ રૂપ ન થય એવી સહચારિણી શોધીને-મેળવીને ત્હનાથી સંતુષ્ટ રહો. એક બીજાને અનુકૂળ અને સહાયકારી થઈ શકાય એવું પાત્ર ન જડી આવે કે જડવા છતાં પ્રાપ્ત થાય તેમ ન હોય તે અવિવાહીત રહેવાનેજ કાશીશ કરો. વિવાહિત સ્થિતિ કે જે ચોતરફ ઉડતી વૃત્તિઓને અટકાવવા માટે - સંકોચવા માટે છે, તે સ્થિતિ જે ઉભયને કે ઉભય પૈકી એકને અસંતોષનું કારણ થઈ પડે તે ઉભટી બેવડી હાનીકારક છે; માટે ત્હમારી શક્તિ, ત્હમારા વિચારો, ત્હમારી સ્થિતિ, ત્હમારાં સાધનો, અને પાત્રની યોગ્યતા: એ સર્વનો ઉંડો વિચાર કરીનેજ પરણો અથવા કુંવારા રહો. પરણવું એજ માણસનો મુખ્ય નિયમ અને કુંવારા રહેવું એ અપવાદ મનાય ત્હને બદલે કુંવારા રહેવું અને સઘળી અથવા મુખ્ય બાબતોની અનુકૂળતા હોય તોજ પરણવું એ મુખ્ય નિયમ

મનાવો જેમજે. અને વિવાહિત સ્થિતિને વિષયવાસનાની અમર્યાદયથેચ્છ સ્વતંત્રતા તરીકે ભૂલેચૂકે પણ માનતા નહિ, વાસનાનો સંક્ષેપ કરતાં અને આત્મિક ઐક્ય કરતાં શિખો. અશ્લીલ શબ્દોથી, અશ્લીલ દેખાવોથી, અશ્લીલ કલ્પનાઓથી દુર રહો. કોઈના લગ્ન ત્હમે જેડી આપતા નહિ; ત્હમને લેતો હક્ક કોઈએ બક્ષ્યો નથી. લગ્નના આશયને નહિ સ્હમજનારાં-સહચારીપણાના કર્તવ્યને નહિ પીછાનનારાં પાત્રોને એક બીજાની ફરજ્યાત ગુલામગીરીમાં નાખનાર માણસ ચોથા વ્રતનો લંગ કરે છે, દ્યાનું ખુન કરે છે, ચોરી કરે છે.

(૫) પરિચ્છ અથવા માલકીતી ઇચ્છાનો સંકોચ કરો. 'હું' બધું ભોગવું, 'હું' કોડોપતિ થાઉં, 'હું' મહેલનો માલીક બનું એવા હું મય-સ્વાર્થમય-સંકુચિત વિચારોને જેમ અને તેમ ઓછા કરો. તમે નાગાજ ફરો, ધરખાર વગરના બાવજ બનો, ભૂખ્યા મરો, કુટુંબનું ભરણપોષણ ન કરો અને એને મસ્વા દો, એમ આ આરાનો ઉદ્દેશ નથી. પણ લોભપ્રકૃતિ, મોહપ્રકૃતિ, મમત્વ ભાવ, જડ પદાર્થોની પ્રાપ્તિમાંજ આનંદ માનવાપણું-એ ચીજોને છોડો અને પ્રમાણિક, બુદ્ધિપૂર્વક-ખંતપૂર્વક યવસ્થાપૂર્વક કરાતા ઉદ્યમથી મળતું દ્રવ્ય ત્હમારી અને ત્હમારા આશ્રીતોની આવશ્યકતાઓ પુરી પાડવામાં ખર્ચવા ઉપરાંત, એ દ્રવ્ય પર મમત્વ ન રાખતાં બાકીનો ભાગ બીજાઓની જરૂરીઆતો પૂરવામાં ઉદ્દાસપુર્વક ખર્ચો. પરિચ્છ પર જેટલા પ્રમાણમાં મુર્છા ઓછી, તેટલા પ્રમાણમાં ચિત્તશાન્તિ—equilibrium of mind -વધારે.

(૬) આશય વગરનું-ઉપયોગ વગરનું-પરમાર્થ વગરનું બ્રમણ જેમ અને તેમ ઓછું કરો.

(૭) ઉપભોગ અને પરિભોગની લાલસા મર્યાદિત કરો. ત્હમારી ટેવોમાં સાદા, આત્મસંયમી, નિયમીત અને મિતાહારી બનો. ત્હમારી તંગીઓ જેમ થોડી હશે, તેમ ત્હમારી ચિંતાઓ, ઉપાધિઓ, લાલસો ઓછી થશે અને વધારે મહત્વની પ્રવૃત્તિ તરફ લક્ષ આપવાને વધારે અવકાશ મળશે. દેખા-દેખીથી, ખાનદાનીના ખોટા ખ્યાલથી, મહોટા દેખાવાની મૂર્ખ લોલુપતાથી, ફાંકડા દેખાવાની લાલસાથી અને ગુણુ-દોષ સ્હમજવાની બુદ્ધિના અભાવથી અનેક બીનજરૂરી તંગીઓ ઉત્પન્ન થાય છે અને તેઓ શારીરિક નિર્બળતા, માનસિક અધમતા અને બુદ્ધિહીનતાને જન્મ આપે છે. માટે ઉપભોગ-પરિભોગના પદાર્થો જરૂર પુરતાજ—ઉપયોગના સિદ્ધાન્તને જવાબ આપે તેવાજ—રાખો.

(૮) અર્થ વગરના 'વ્યાપાર' માં પ્રવૃત્તિમાં મન-વચન-કાયાને પ્રવર્તાવો નહિ. ખટપટ, નિંદા, દુઝ્ઘ્યાન, ચિંતા, કુતર્ક, ખેદ અને ભયમાં શરીરસંપત્તિ, ધનસંપત્તિ, સમયસંપત્તિ તથા સંકલ્પસંપત્તિને ઉડાવી મારો નહિ. આર્તધ્યાન અથવા ચિંતા અને રૌદ્રધ્યાન અથવા ક્રોધના ઉપર ક્રોધમય વિચારો કરવા તે હીચકાર્શં કામ છે, આનંદમય-વીરત્વમય આત્મપ્રભુનો દ્રોહ કરવા સરખું કૃત્ય છે. મનુષ્યત્વ એથી ક્ષીણતા પામે છે.

(૯) પ્રતિદિન નિયમિત સમયેજ અને તેટલા વખત સુધી સમતોલવૃત્તિ શિખવાનો અભ્યાસ અથવા મહાવરો પાડો.

(૧૦) સ્વદેશ બહારથી મગાવેલી ચીજ બનતાં સુધી ન વાપરો; સ્વદેશપ્રેમ અને સ્વદેશાભિમાન રાખો; સ્વદેશને ભૂખે મરતો કરવામાં સાધનભૂત ન થાઓ.

(૧૧) દરમહીને એક વર—જેહારે પણુ પુરસદ કે સગવડ અને અનુકૂળ શારીરિક-માનસિક સ્થિતિ હોય તેહારે ભુખ્યા રહો. કે જેથી શરીર નિરોગી અને સહનશીલ બને;

અને એ સ્થિતિમાં ૨૪ કે ૧૨ કલાક આત્મ-રમણતામાં ગુળરો.

(૧૨) ઉપકારી પુરૂષોની લક્ષિત-સેવા કરવાનો પ્રસંગ મળે તેહારે ત્હેમની સેવા ઉદ્ધાસથી બજવો. જે પુરૂષો જગતના ઉપકારમાંજ જીવન ગુળરતા હોય, જેઓ પોતાના શરીરાદિની સારસંભાળ કરવા જેટલી કુરસદ ન લઈ શકતા હોય, ત્હેમના અસ્તીત્વ, આરોગ્ય અને પ્રવૃત્તિની જગતને ધણીજ જરૂર હોવાથી, ત્હેમની તંગીઓ જાણવી અને તે પૂરી પાડવાની તત્પરતા બતાવવી એ ઉપકૃત વર્ગનું કર્તવ્ય છે. એમણે ઉઠાવેલાં મિશનેને નીલાવવામાં પોતાના શરીરબળ, દ્રવ્યબળ, લાગવગ, સમય, બુદ્ધિ આદિને કાળો આપવો, ત્હેમની મુશ્કેલીઓ અને દુઃખો તથા સંકટોમાં દીલસોજી ધરાવીને તે દૂર કરવા માટે પોતાથી બનતું કરવું અને ત્હેમના જયમાં પોતાનો જય-સમાજનો જય-માનવો.

આ બાર વ્રતોના પાલનમાં 'શીલ'નો સમાવેશ થાય છે. વ્રતોનું આ સ્વરૂપ જ્યવહારૂ ધર્મ છે, કે જે આરોગ્યને, દેશને, ગૃહસંસારને અને બુદ્ધિ તેમજ આત્માને ઉન્નત કરે છે.

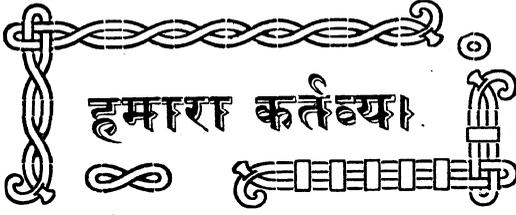
(અપૂર્ણ)

(તપ અને ભાવના તથા ધાર્મિક ક્રિયાઓના સહસ્ય સંબંધી મનન કરવા યોગ્ય વિવેચન આવતા અંકમાં આવશે.)

વિધવાઓની સંખ્યા—૧૯૧૧ના વસ્તી પત્રક પ્રમાણે એક વર્ષ ઉંમરની અંદરની ૮૫૯ વિધવાઓ હિંદુસ્તાનમાં છે !

ઐદ્યો-આખી દુનિયામાં ઐદ્ય ધર્મ વાળાઓની સંખ્યા ૫૧ કરોડની છે.

અજબ આયુષ્ય:—અમેરિકાના યુનાઇટેડ સ્ટેટ્સમાં ૧૨૦ વર્ષથી વધુ ઉંમરનાં ૮૬ મનુષ્યો છે.



[लेखक:—जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी
संपादक “ जैनमित्र ”—वम्बई।]



संपादक ' दिगम्बर जैन ' के उत्साहवर्द्धनके लिये मेरा भी यह कर्तव्य आन पड़ा है कि अपना कुछ विचार इस पत्रके पाठकोंकी सेवामें भेट करूं। यद्यपि विद्वतापूर्ण विषयों पर लिखना ही लेखकोंका महत्व हुआ करता है तथापि मैं उस कर्तव्यपथसे विमुख हो आज यही प्रगट करूंगा कि हम दिगम्बर जैनियोंका कर्तव्य क्या है।

निर्ग्रन्थ—वस्त्रादि परिग्रहसे दूर, बालकके समान लज्जा, व भयकषाय रहित, अपने सम्पूर्ण तनको समदृष्टिसे हाड़, मांस, रुधिर, चामका भांड कल्पना करनेवाले, शीत—उष्ण आदि परिषर्होंके विजयी, जैसे हम लोग निरन्तर अपने मुखको सदीमें भी खुला विना वस्त्र ढके रखते हुए आरामके साथ शीत—उष्णका असर मुख पर नहीं मालूम करते, इसी तरह निरन्तर सर्व देहको सर्व ऋतुओंमें खुली वस्त्ररहित रखते हुए किसी भी

परिषहसे होनेवाली आकुलतासे दूरवर्ती, आकाशकी दिशाओंको ही वस्त्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्रमय रत्नमई धर्मोंको ही आभूषण, और द्वादश तपको ही अपने संगी माननेवाले महात्मा ही अनादिसे अशुद्ध चली आई आत्माको ध्यानके पत्थर पर रगड २ भेद विज्ञान साबुन लगा शुद्ध करते हुए उसे अरहंत परमात्मा वा जीव मुक्त आत्माकी अवस्थामें बदल देते हैं—वे महात्मा इस भरतक्षेत्रके अंतर्गत आर्यखंडमें वर्तमान प्रवर्तनेवाली अवसर्पिणीकी समयावलिमें विराजित श्री ऋषभ, अजित आदिसे ले महावीर पर्यंत चतुर्विंशति तीर्थंकरों व इस कालमें हुए अनंत मुनियोंके रूपमें प्रथम गृहस्थ अवस्थामें भी दिगम्बर महात्माओंके अनुयायी होनेसे दिगम्बर जैन थे, त्यागावस्थामें भी दिगम्बर जैन थे और निर्वाण अवस्थामें भी दिगम्बर जैन हुए।

उन्हींके अनुयायी अब हम दिगम्बर जैन कहलाते हैं। अतः हमारे पूर्वजोंके जीवनचरित्र हमारे लिये आदर्श हैं। इस लिये हमारा कर्तव्य उन्हींके समान सुजीवन बिताना है। हमारे परमपूज्य तीर्थंकरोंमें पांच तीर्थंकर केवल निर्वृत्ति मार्गके ही अवलम्बी हुए—अर्थात् उन्होंने कुमारावस्थासे विना स्त्रीके जंजालमें पड़े हुएही त्याग अवस्थामें पग धारण किया और अपने आत्माको विशुद्ध करके लक्षों आ-

स्माओंको विशुद्धताके प्राप्त करनेका उपदेश दे भवजालसे संरक्षित किया—शेषोंने कुमारावस्थासे गृहस्थावस्थामें, फिर त्यागावस्थामें जा अर्थात् धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थोंको सफल कर अपने पुत्र पौत्रादिको राज्यभार सौंप मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धि करी ।

यहीं द्विविध जीवन हमारे लिये आदर्श हैं । जिनका चित्त प्रारम्भसे ही वैराग्यकी उत्कटतामें भरा हुआ रहता है और विषय कषायोंके आक्रमणोंसे रक्षित होता है वे भव २ साधन किये हुए अर्थ और कामकी ओर उदासीन होकर मोक्ष पुरुषार्थकी ही सिद्धिमें दत्तचित्त हो जाते हैं । इस पवित्र अखंड ब्रह्मचर्यमय जीवनको परमप्रिय आदर्श मानकर श्री जम्बूस्वामीजी महाराज अंतिम केवली, श्री भद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवली, श्री अकलंक निकलंक विद्वद्वरोंने भी इसीको धार इस पंचमकालमें अपना जन्म सफल किया । द्वितीय आदर्शके पालक अनेक हुए और होते रहते हैं ।

जब अज्ञान, मिथ्यात्व और अन्यायका बहुत प्रचार इस दृश्यमान निकटवर्ती लोकमें होता है, तब परोपकारी आत्माओंमें अपना संसारिक सुख बलिदान कर देनेकी तीव्र भावना उमड़ आती है और वे विद्यालाभ कर चारित्र्य धार ब्रह्मचारी रह स्वपरोपकारमें श्री अकलंककी भांति जीवन बिताते हुए उन तीन दोषोंके मलको दूर

फेंक देते हैं । बौद्धोंकेद्वारा म्लानताको प्राप्त यह जैनधर्म श्री अकलंकस्वामीके पूर्णजीवनके परिश्रमसे ही स्याद्वादरूपी किरणोंको लिये हुए सूर्यकी भांति जगमगाने लगा था । वर्तमानमें भी इन्हीं तीनों दोषोंका अधिक प्रचार है जिसके विस्तार फैलानेमें कारणभूत नास्तिकताके विचार व हिंसादि असत्कर्मोंको धर्म माननेवाले मतोंका प्रसार है । खासकर भारतमें सूक्ष्म तत्त्वोंका ज्ञान लुप्त हो गया है—अध्यात्मचर्चा स्वप्नवत् हो गई है, रुठियों व मिथ्या श्रद्धाओंका जोर बल पकड़ गया है, तथा मदिरापान, मांसाहार, द्यूतरमन, वेश्या व परस्त्री सेवन तथा पशुवध व रोगवर्द्धक अशुद्ध भोजन व चर्मादि हिंसाको बढ़ानेवाले पदार्थोंके व्यवहार अतिशय प्रचारमें आ गए हैं । धर्मके नामसे करोड़ों पंचेन्द्री पशु प्रतिवर्ष वध किये जाते हैं । विचार करके देखा जाय तो यह जमाना आचरणमें गिरता चला जाता है जिससे बहुत भय है कि जो पाशविकवृत्ति श्वान आदि पशुओंमें है, वह मनुष्योंमें भी फैल जाय और जैसे श्वान आदि पशु जो चाहे खाते, जिसे चाहे सेवते उसी तरह यह मनुष्य समाज भी स्वतंत्र हो जो चाहे खाने, जिसे चाहे भोगने, यहां तक कि विवाहके बंधनमें ही न पड़नेमें लौलीन हो जाय । इस हीन दशाको देखकर जिनके अंतरंगमें यह भाव जगता है कि हम अपने आत्मा-

रूपी बाक्—सको खोलें, उसके भीतर भरे हुए अनंत गुणरूपी रत्नोंको देखें, और प्रत्येक रत्नके निदर्शनमें लौलीन हों, तथा यकायक अपना उपयोग सर्व जगत्से हटा केवल मात्र अपने शुद्ध आत्मस्वरूपमें ही जोड़ दें ताकि उस निज स्वरूपमें भरा हुआ अतीन्द्रिय आत्मानुभव रूपी परमा-मृतका आनन्दरस भोगनेमें आ जाय—जिस आनन्दके विलासमें मुग्ध होते हुए निज अमलधामके रसिक रत्नत्रयकी त्रिपुटि औषधको पाकर अनादि भावकर्मरोगको दूर करते हुए परम स्वास्थ्यताका लाभ करते हैं—आत्मगंगाको ही सच्ची गंगा जान उसीमें ही निरन्तर कल्लोल करते हैं और उसीमें ही अकथनीय सुख पा परम तृप्त हो जाते हैं। इसके सिवाय यह भी विचारते हैं कि हम साधक और साध्यकी सफलताके मध्यमें जो काल है उसमें जगत्के दोषोंको हटाने व स्वकर्तव्य पलवानेका उपदेश देवें। उन महान् आत्माओंको कुमारावस्थासे ही विषय कषाय जीत ब्रह्मचारी रह जन्मभर स्वपरसेवा करना योग्य है। परन्तु जो स्वपरहितकी इच्छा रखते हुए भी विषय कषायोंको जीतनेमें असमर्थ हैं, उनको अनेक उपयोगी विद्याओंका लाभ कर युवावस्थामें स्त्री—गृहमें पड़ धन अधिक संग्रहकी लालसा त्याग अपने निर्वाहके लिये समाजसे द्रव्य लेते हुए उपर कहे हुए दोषोंको इस समाजसे हटा-

नेके प्रयत्नमें लग जाना चाहिये और जब विषयेच्छा दमन हो जाय व पुत्र समर्थ हो जाय तो गृहवास छोड़ कमसे कम ब्रह्मचारी हो देशाटन कर उपर कहे दोषोंके भेटनेका विशेष उपाय करना योग्य है। विना प्रभावशाली और सुआचरणी धर्मोपदेशकोंके जगत्के जीव न सच्चे धार्मिक तत्त्वको ही जान सकते और न उद्योगी बन हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और असन्तोषके पापोंसे बच सकते हैं। दि. जैन डाइरेक्टरी-द्वारा प्रगट ग्रामोंमें विना धर्मोपदेशकोंके नाम मात्र धर्म व उसके सेवक पाए जाते हैं। मुख्यतासे उपदेशका अभाव ही १० वर्षमें जैनियोंकी संख्याको ८६००० कमती करनेमें अपराधी है।

यदि इस अपराधका प्रायश्चित्त करना हो, तो प्रत्येक प्रान्तके वासियोंको मोह-जाल त्यागना चाहिए और विद्यासम्पन्न हो पवित्र जीवन बिताने व समाजसेवामें जीवनको सफल करनेका उद्देश्य धारण करना चाहिए। यही हमारे पूर्वजोंके आदर्श मार्ग हैं।

उपरका कर्तव्य केवल धर्म प्रचार व अधर्म निषेधके उद्देश्यसे ही बताया गया है। परन्तु इसमें सहायक वह गार्हस्थ्य मंडली है, जो धनोपार्जन करती और जिसका मुख्य धर्मसेवन, पूजा और दान है, उनका क्या कर्तव्य इस वर्तमान कालमें है इसका विचार भी उपादेय है।

श्री सोमदेव कृत 'यशस्तिलक' ऐसे प्रसिद्ध काव्य ग्रंथमें कहे हुए नीचे लिखे श्लोक गृहस्थ मंडलीको ध्यानमें रखना योग्य है:-

शरीररक्षा ।

संसारवार्धेस्तरणैकहेतुम्,

असारमप्येन मुशान्ति यस्मात् ।

तस्मान् निरीहैः अपि रक्षणीयः,

कायः परं मुक्तिलता प्रसूत्यै ॥ १२९ ॥

भावार्थ—विद्वानोंने इस असार मनुष्य देहकोही संसार समुद्रसे तिरनेका एक मात्र कारण कहा है, इसलिये मुक्तिकी वेलको फलवती बनानेके लिये शरीरसे उदासीन लोगोंको भी इस देहकी रक्षा करनी योग्य है । इसलिये शुद्ध खानपान, व्यायाम, शुद्ध साफ वस्त्र, समय पर आहार विहार निहार निद्रा, शुद्ध स्थानमें शयनासन आदिके नियमोंको जान कर व शरीरमें रोगवर्द्धक कारण क्या हो सक्ते है तथा उन कारणोंके होते ही कौनसा अति शीघ्र उपाय कर लेना इत्यादि हवा, पानी—वगैरह स्वास्थ्य सम्बन्धी बातोंका ज्ञान बड़ोंके अनुभव व वैद्यकीय पुस्तकोंके द्वारा हरएक गृहस्थको होना जरूरी है । इसके लिये इन बातों पर पूरा ध्यान रहे कि सदा शुद्ध साफ दुर्गन्ध रहित हवा श्वांस लेनेमें आवे, शुद्ध, साफ असली नदी व कूवेका छना हुआ पानी व्यवहारमें आवे; शुद्ध अन्न, घी, दूधसे बनी ताजी चीजें

भूखसे कम खानेमें आवें और समयपर कुल काम किये जावें ।

शुद्ध घी, दूध, दधिके लिये गृहस्थ गाय, भेंस पशु पालें और उनसे प्राप्त दूधसे शुद्ध घी, दही, खोया बनाकर खावें। बाजारसे घी इत्यादि लेना त्याग देनेसे न ग्वाले पेशेवाले गायदिको रक्खेंगे और न दूधविहीन होनेपर द्रव्यलोभसे कषाईओंके हाथ बेचेंगे । गृहस्थका धर्म है कि दूध विहीन व असमर्थ होनेपर भी पशुओंकी अपने वृद्ध मातापिताके समान रक्षा करें ।

कर्तव्य ।

जीवितं कीर्त्तये यत्र दानाय द्रविणां ग्रहः।

वपुः परोपकाराय धर्माय गृहपालनम् ॥९॥

वात्स्यं विद्यागमैर्यत्र यौवनं गुरुसेवया ।

सर्वसंग परित्यागैः संगतं चरमं वयः ॥१०॥

भावार्थ—गृहस्थ अपने जीवनको यशके लिये, द्रव्यको दानके लिये, तनको परोपकारके लिये व गृहधर्मके लिये घरका पालन करे ।

अर्थात्—गृहस्थीको चाहिए कि हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, जुआ, नशा आदि पापोंसे बचे, क्योंकि यही पाप अपयशरूपी कीचड़में लपेटनेवाले हैं । द्रव्यका उपार्जन भी आवश्यक जान सन्तोषपूर्वक सर्व कार्योंकी सिद्धिके लिये अपने २ पदके योग्य व्यापारादिसे करे, जिन २ रीतियोंसे जापान, अमेरिका आदि देश समृद्धिशाली हुए उन २ वाणिज्यकी रीति-

योंका व्यवहार करें। इस द्रव्यको पैदा कर अपने स्वर्चमें थोड़ा लगावे परन्तु समाजके अन्दर विद्याप्रचार, औषधिसेवन, आहारदान व पशुरक्षामें विशेष स्वर्च करें।

जो लाखों करोड़ों कमाकर लाखों करोड़ोंका धन शुद्ध मनसे विचारपूर्वक उपयोगी परोपकारमें लगाते हैं वही सच्चे धनी गृहस्थ और वही लक्ष्मीको अपने साथ मानो बांध ले जाते हैं। शरीरसे परोपकार करना उचित है—जो शरीरको आलसी बनाकर उसकी सेवा औरोंसे कराते वे कर्तव्यविहीन हो जाते हैं परन्तु जो अपने हाथ, पैर व वचनोंसे परजीवोंका भला करते, उन्हींकी देहप्राप्ति सफल है। गृहके वसनेवाले कुटुम्बियोंकी रक्षा अपने धर्म व उनके धर्मको बढ़ानेके लिये करना योग्य है न कि मात्र अपनेही स्वर्थाधमय विषयसेवनरूप प्रयोजनके वास्ते। जो लोग अपनी विवाहिता स्त्रियोंको मात्र दासी, रसोइबनाने व संतान पैदा करनेकी यंत्रिका समझते हैं वे निर्दयी कर्तव्यच्युत हैं। स्त्री, पति व उसके पुत्रोंके आत्मा और शरीर दोनोंकी रक्षिका है, वैसेही पति स्त्रीपुत्रोंके आत्मा और शरीरका रक्षक है। दोनोंमें सखावत व्यवहारही श्रेयरूप है। मित्रभाव होते हुए चाहे स्त्री गृहके लिये नीचसे नीच काम करे व पति स्त्री आदिके लिये चाहे जितना आजीविकार्थ परिश्रम करे, कोई हर्ज नहीं किन्तु करनाही चाहिए। एक दूसरेके धर्मकी रक्षा करें।

गृहकी बाल्यावस्था धार्मिक और लौकिक अनेक विद्याओंके लाभसे, युवावस्था गुरुकी सेवासे, व अंतिमआयु सर्व परिग्रह त्यागसेही बीते तो न्याययुक्त है।

इस बचनपर ध्यान देकर सर्व गृहस्थी अपने बालकोंको योग्य शिक्षा देवें, पुत्र और पुत्रीयोंको समान समझकर हरएकके योग्य ज्ञानदान करें। युवावय प्राप्त होने पर लग्न करें जबतक वे ब्रह्मचर्य पालें—युवावयमें अर्थ व कामको सिद्ध करते हुए देव, गुरु, व बड़ोंकी भक्तिमें लीन हों। और अंतवयमें निर्वृत्तिमार्ग ले उदासीन हो ब्रह्मचारी रहें व क्षुल्लक, ऐलक व साधु हो स्वपर हित करें।

परोपकारियों। यथार्थ आत्मधर्म समझ कर निज हित करो, यही एक दिगम्बर जैनीका धर्म है।

भेषज मार्तण्ड

यह एकही दवा अलगर अनोपान करनेसे सर्व प्रकारके बाह्याभ्यन्तर रोगोंमें जादूकी तरह फायदा करती है। शिरदर्द आधाशीशी दाढदर्द कानदर्द पसलीदर्द आंख दुखना नपुंसकत्व आदिसे जलना दाद खान फोड़ा फुन्सी घाव चोट कटी हुई जगह तैतिया विच्छ्र आदिसे जहरीले जानवरोंके काटनेपर चमड़ेके अनेक प्रकारके रोगोंमें सिर्फ मलने तथा लगाने मात्रसे आराम होता है। हर प्रकारका बुखार हैजा प्लेग के दस्त तिळी हरप्रकारका पेटदर्द अजीर्ण जी मिचलाना मन्दाग्नि बवासीर जुकाम पुंहुके छाले स्त्रियोंके सर्व रोग बच्चोंके सर्व रोग जलोदर आदि सर्व प्रकारके अभ्यन्तर रोगोंमें तीन बूंद पानीमें डालकर खाने मात्रसे आराम होता है। यात्रामें साथ अवश्य २ लेजाना चाहिए। आराम नहोतो दाम वापिस कर देंगे। एंजंटोंकी आवश्यकता है। नमूनेकी छोटी शीशी १।—(आना बड़ी शीशी १।) रुपया (जाडके बुखारको एक दिनमें शर्तिया दूर करनेवाली दवा फी पुडिया) ॥

पता—लट्टूरमल जैनाप्रवाल मालिक
आरोग्यरक्षक कार्यालय, फोसीकलां—(मथुरा)

॥ कर्मवीर ॥

१
देखकर जो विघ्न बाधाओंको घबराते नहीं ।
भाग्य पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं ॥
भीड पड़ने परभी चंचलता जो दिखलाते नहीं ॥
काम कितनाही कठिन हो परजो उकताते नहीं ॥
होते हैं एक आनमें उनके बुरे दिन भी भले ।
सब जगह सब कालमें रहते हैं वह फूले फले ॥

२

आज जो करना है कर देते हैं उस को आजही ।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदाँ सबकी कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगतमें आप ही ॥
भूलकर वह दूसरेका मुँह कभी तकते नहीं ।
कौन ऐसा काम है जिसको वह कर सक्ते नहीं ॥

३

जो कभी अपने समयको यों बिताते हैं नहीं ।
काम करनेकी जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं ।
यत्न करनेमें कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये ।
वह नमूना आप बन जाते हैं औरोंके लिये ॥

४

गगनको छूते हुए दुर्गम पहाड़ोंके शिखर ।
वह घने जंगल जहां रहता है तम आठों पहर ॥

गर्जते जल राशिकी उठती हुई ऊंची लहरा
आगकी भयदायिनी फैली दिशाओंमें लवर ॥
है कँपा सकती कभी जिसके कलेजेको नहीं
भूल कर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥

५

चिलचिलाती धूपको जो चांदनी देवे बन
काम पड़नेपर करें जो शेरका भी सामना ॥
हँसते हँसते जो चबा लेते हैं लोहेके चना ।
है कठिन कुछ भी नहीं जिनके है जीमें
यह ठना ॥
कोश कितने ही चलें पर वह कभी थकते नहीं ।
कौनसी है गांठ जिसको खोल वह सकते नहीं ॥

६

ठीकरोको वह बना देते हैं सोनेकी डली ।
रंगको करके दिखा देते हैं वह सुन्दर कली ॥
वह बबूलोंमें लगा देते हैं चम्पेकी कली ।
काकको भी वह सिखा देते हैं कोकिल काकली ॥
ऊसरोमें हैं खिला देते अनूठे वह कमल ।
वह लगा देते हैं उकठे काठमें भी फूलफल ॥

७

कामको आरम्भ करके यो नहीं जो छोड़ते ।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते ॥
जो गगनके फूल बातोंसे वृथा नहीं तोड़ते ।
सम्पदा मनसे करोड़ोंकी नहीं जो जोड़ते ॥
बन गया हीरा उन्हींके हाथसे हैं कारबना
काँचको करके दिखा देते हैं वह उज्जल रतन ॥

८

पर्वतोंको काटकर सड़के बना देते हैं वह ।
सैकड़ों मरुभूमिमें नदियां बहा देते हैं वह ॥

अगम जलनिधि गर्भमें बेड़ा चला देते हैं वह ।
जंगलोंमें भी महा मंगल मचा देते हैं वह॥
भेद नभ तलका उन्होंने हैं बहोत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तारकी सारी क्रिया॥

बीचमें पड़कर जलधि जो काम देवें गड़बड़ा।
तो बना देगें उसे वह क्षुद्र पानीका घड़ा॥
बन खंगालेगें करेगें व्योममें बाजीगरी ।
कुछ अजब धुन कामके करनेकी उनमें हैं भरी ॥

कार्य थलको वह कभी नहीं पूछते वह हैं कहां।
करं दिखाते हैं असम्भवको वही सम्भव यहां॥
उलझनें आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहां।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतनाही वहां॥
डाल देते हैं विरोधी सैकड़ों ही अड़ चले।
वह जगहसे काम अपना ठीक करके ही ठले॥

११

जो रुकावट डालकर होवें कोई पर्वत खड़ा।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियोंसे वह उड़ा॥

सब तरहसे आज जितने देश हैं फूलेफले ।
बुद्धि विद्या धन विभवके हैं जहां डेरे डले ॥
वे बनानेसे उन्हींके बन गये इतने भले ।
वे सभी हैं हाथसे ऐसे सपूतोंके पले ॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेगें कभी ।
देशकी और जातिकी होगी भलाई भी तभी ॥

‘ प्रेमी ’ हजारीलाल जैन—आगरा ।



जैन बंधुओंके संदेश.

(रचना:—शा. हाथीचंद भाण्डक्यचंद सोनासलु.)

मुञ्ज जैन अंधुओ वीर, अनी गंलीर, इया दुःख जणुओ,
केम करे ज्ञाति दुर्भाग्य, हीसे कांछ आणुओ—टेक.

ओ सुधरेवा नर नाम, सुधारे काम, काम हद राप्पी;
कुधारे दुअशे देश, अने शुं पाप्पी१

कारट छोटी अने प्रौढ,^२ अने नामुह,^३ सभा शोभावे;
कंभ धर्मतणुओ लघ पक्ष, लवादे^४ आवे.

सहु वीर प्रभूता आण ! माहोमाहे शो काण!! ह्यो साथ मणी स'लाण!!! नहि राग द्वेष केम आण!!!

सहु जैन हकाने माट, धडे कांछ घाट, मणी सौ आणे;

न्यां स'प तणुओ महीमाय, रंग लां राजे. मुञ्ज० १

जे होय हकाना काम, राअणे काम, काम देहेथी;

मणी कलमे^५ करणे काम, गणवे भोथी;

ગૌહત્યા અપરંપાર, ભૂમી શીર ભાર, સાર કંઈ શોધો;
 કેા જ્ય શાહની પાસ, હોય નર ભુષ્ઠો.
 પડી જ્ય ચર્ણુ મોઝાર, ખમે ના માર, પશુ દુઃખ ટાળે;
 બહુ કમી થાય હત્યાય, લક્ષ્મને ખાજે.
 કેમ દશા કરો પરતંત્ર! નહીં મળે મેળનો મંત્ર !! ભુષ્ઠો બન્ને બાહુરો જંત્ર !!! જઈ ભુષ્ઠો દેવનો ચંત્ર!!!
 થઈ ગયું સહુ નિર્માલ, અન્યા કંગાલ, નડયા સંજોગો;
 તન ધને ખરેખર ખવાર, જગીઆ રોગો. મુજ ૨

બહુભદ્રસ્વામીની વાર, પડેલા કાળ, પનોતી બેઠી;
 રે ! ગયો વીર મહાવીર, દશા થઇ માઠી.
 બહુ માંસાહારી થોક, ધરો તે શોક, મમત મત દાખો;
 ફેલાવા જૈન સિદ્ધાંત, ટેક તે રાખો.
 પણ માંહોમાંહે શીદ લડો, કારટે ચડો, ધાર્યું કરવાને;
 ધરમાં નહીં અંટી ઘેંસ, અરે ! દળવાને.
 કોઈ પુષ્પ ચઢાવે ભાવે! નૈવેદ લઈ કેા આવે!! કોઈ પરોક્ષ દર્શન કહાવે!!! કોઈ નીત્ય મંદીરે આવે!!!
 શું ? જ્ય તમારું વીર, પડી શી અધીર, હવે તો છોડો;
 આચાર્યે કર્યા બહુ ગ્રંથ, થયો નહીં જોડો. મુજ ૩

વટ મુકીને દો દોટ, જણાવી વોટ, ખાંટ કાં ખાઓ;
 પર અક્કલમાં અંજાઇ, થેંકસર ના થાઓ.
 અરે જ્ઞાતી દશાની હાણ, લુણની તાણ, પડયા પોકારો;
 દેઇ વિવિધ વિદ્યા દાન, દીન ઉગારો.
 કંઈ થયા અરે જરડીસ; આવધિપીસ, થયા કે' ફેલો;
 નહિ કરો ઐક્યનાં કામ, ગણારો બેલો.
 કોઈ જાઓ દેશ વિદેશ! ભણતર ભણી લવો બેશ!! વધરો હુનરથી એશ!!! શું! સંપ ટાળી કરો દ્વેશ!!!
 છે ભણ્યા ગણ્યાનું કામ, થાય શુભ નામ, પ્રભુજી રીઝે;
 રે ! તન મન ધનથી ધીર, દીલ્લ જો દીજે. મુજ ૪

૩ જૈનેત્તર જોઇ ગુણુ ગાય, હર્ષ બહુ થાય, દશા જગ જાણી;
 હા ! હા ! છે કુદરતનો ખેલ, રંક શું રાણી.
 રે ! થશે ગુલાખી રંગ, અંગ ઉમંગ, ચઢી હીડોળે;
 પછી સર્વ સુધરશે ઢંગ, રંક શું રોળે.
 કરો કૌલેજો બહુ બેશ, માણવી એશ, ભણાવા બાજો;
 નહિ ફૂલેકે ઉદ્ધાર, સંધ શું કાઠો !

મર કરો કોટી ઉપાય! ગિરિ ગુફા મધ્ય સંતાય!! તે ટળ્યા કોથી નવ જાય!!! પણ કર્મ સમા ફળ થાય!!!
 ઝટ કમર કસો મુજ બ્રાત, સુણી મુજ વાન, ધરોધર જઇએ;
 હાથીચંદ્ર ઐક્યતા કરી, મળીને રહીએ. મુજ ૫

भारतीय युद्ध अथवा कौरवपांडवांचा कालनिर्णय.

(लेखक:-भरमप्पा पदमप्पा पाटील, बेलगांव.)

आज पाश्चात्य विद्वानांमध्ये प्राचीन इतिहासाच्या शोधासंबंधीं अविश्रांत खटपट चालल्याचें दृष्टेस्तरीस येतें. व प्रत्यहीं त्यांचे नवे नवे शोध जगापुढें मांडण्यांत येत आहेत. जैनधर्मी पुराणांतून व हिंदुधर्मी ग्रंथांतून प्राचीन काळचीं जीं वर्णनें आढळतात त्यांत मनुष्यांची उंची व आयुष्य हीं फार होतीं व पुढें तीं कालदोषानें कमी कमी होत गेलीं व पुढेंही होतील असें प्रतिपादन केलेलें दिसून येतें. त्याच प्रमाणें जगाच्या अवाढव्य विस्ताराचीं वर्णनेंही पुष्कळ केलेलीं दृष्टीस पडतात, पण हीं सर्व वर्णनें व प्रतिपादन अशक्य कोटीतीलच आहेत असें आजपर्यंत पाश्चात्य महापांडितांचें म्हणणें होतें, परंतु अलिकडे तिकडील भूगर्भशास्त्रवेत्त्यांना व भूस्तरशास्त्रवेत्त्यांना मनुष्यप्राण्याचे हल्लींपेक्षां पुष्कळ पटीनें उंचीचे सांगाडे व फार प्राचीन काळचे अवशेष सांपडत असल्यामुळें व उत्तर ध्रुव व दक्षिण ध्रुव यांच्या पलिकडे हीं कांहीं प्रदेश आहे असें शोधकांच्या अथाग प्रयत्नांनीं सिद्ध होत असल्यामुळें आम्हां पौर्वात्य लोकांच्या पूर्वोक्त कल्पना शक्य कोटीतील होउं पहात आहेत, ही मोठ्या संतोषाची गोष्ट आहे. पाश्चात्य पांडितांमध्ये इतिहाससंशोधनासंबंधीं जे जिवापडि पारिश्रम चालू आहेत त्याची एक लट हिंदुस्थानांतही येऊन थडकली आहे; व या दृष्टीनें कांहीं हिंदी शोधक प्राचीन इतिहा-

साची सामुग्रीही जुळवीत आहेत, ही सुदेवाचीच गोष्ट आहे असें म्हटलें पाहिजे. आमच्या हिंदी बांधवांचे प्राचीन इतिहासशोधनेसंबंधी जे प्रयत्न चालू आहेत त्यांत प्रसिद्ध 'भारतीय युद्धाचा अथवा कौरवपांडवांचा काल' पांच हजार वर्षांपेक्षां कमी येतो असें त्यांना आढळून आलें असल्याचें बाहेर पडलें आहे व त्याप्रमाणें ग्रंथरूपानें व लेखरूपानें त्यांचे उद्गार आज प्रसिद्ध होत आहेत, परंतु आमच्या जैनधर्मी ग्रंथांवरून या भारतीय युद्धाचा अथवा कौरवपांडवांचा काल पाऊण लाख वर्षांपेक्षांही जास्त मागे जातो असें आढळून येत आहे. कित्येक पाश्चात्य व पौर्वात्य शोधकांनीं अनेक प्रमाणां वरून ठरविलेल्या सिद्धांतमध्येही कालांतरानें फेरबदल करण्याचे प्रसंग नवीन नवीन शोधांतनीं त्यांना येत आहेत, त्यावरून सदरहू कालनिर्णयासंबंधीं आमच्या ग्रंथांतील खाली दिलेल्या आधाराच्या योगानें त्यांच्या मतांत कांही फरक झाला तर होईल असें जाणून मी ते खाली लिहिल्या प्रमाणें मांडीत आहे.

कौरवपांडव व त्यांचें व्याही (आप्त) यदुवंशोत्तम श्री कृष्ण हे जैन लोकांचे वर्तमानकालचे २२ वे तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान यांचे समकालीन होते; इतकेंच नव्हे तर श्रीकृष्ण यांचे वडील 'वसुदेव' व श्री नेमिनाथांचे जनक 'समुद्रविजय' हे सख्खे बंधु होते. या वरून श्रीकृष्ण व श्री नेमिनाथ हे चुलत बंधु होते हें उघड आहे. या प्रकारची हकीकत 'हरिवंश' इत्यादि जैन पुराणांतून स्पष्टपणें नमूद आहे, ही गोष्ट आमच्या जैनबांधवांत सर्व प्रसिद्ध आहे. तेव्हां श्री नेमिनाथ तीर्थंकरांचा कालनिर्णय केल्यास कौरवपांडव व श्रीकृष्ण यांच्या अथवा प्रसिद्ध भारतीय

युद्धाचा कालनिर्णय सहज होतो, हें स्पष्ट आहे. या कालनिर्णयासंबंधाची सांखळी श्री रविषेणाचार्यकृत “पद्मपुराण (जैन रामायण)” ग्रंथांत उत्तम रीतीने देण्यांत आली असल्यामुळे ती मी येथें देत आहे.

श्री नेमिनाथ भगवान (जैन लोकांचे वर्तमानकालीन २२ वे तीर्थंकर) यांचें आयुष्य १००० वर्षे होतें. त्यांना मोक्षप्राप्ती झाल्यावर ८३७५० (पावणेचवव्याऐंशी हजार) वर्षांनी २३ वे तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ झाले. यांची आयुष्यमर्यादा १०० वर्षांची होती. यांच्या नंतर २५० वर्षांनी २४ वे तीर्थंकर श्री महावीर अथवा श्री वर्द्धमानस्वामी अवतीर्ण झाले. यांना फक्त ७२ वर्षांचें आयुष्य होतें. आज श्रीमहावीरस्वामी यांना मोक्षाला जाऊन २४४० वर्षे झालीं असें अनेक प्रमाणांवरून सिद्ध झाले आहे व त्याप्रमाणें ‘महावीर शक’ हल्ली जैन लोकांत चालू आहे, ही गोष्ट सर्वांना माहित आहेच. या वरून वर लिहिल्या प्रमाणें २४४०+७२+२५०+१००+८३७५० इतक्या वर्षांची बेरीज केल्यास ८६६१२ हा आंकडा येतो व तोच श्रीनेमिनाथ भगवानांचा काल होय अर्थात आजला श्री नेमिनाथ तीर्थंकर होउन स्याऐंशीहजार सहाशें बारा ८६६१२ वर्ष झाली असें म्हणण्यास कांहीच हरकत नाही. तसेंच श्री नेमिनाथ भगवान यांना १००० वर्षे आयुष्य होतें व यांच्याच हयातींत कौरवपांडव होते या वरून ८६६१२ व ८७६१२ या मधील एक हजार वर्षांच्या काळांत केव्हां तरी प्रसिद्ध भारतीय युद्धाचा घनघोर संग्राम झाला असावा असें अनुमान करण्यास कांहांच प्रत्यवाय नाही.

वरील आधारावरून श्री नेमिनाथ अथवा श्री कृष्ण किंवा त्यांचे जवळचे आस (पितृ-भगिनीपुत्र) कौरवपांडव यांचा काल सुमारे ८७००० वर्षांचा आहे हें उघड आहे. परंतु गेल्या फेब्रुवारी महिन्यांत भारतीय युद्धाच्या कालनिर्णया संबंधी पुणें येथील ‘ज्ञानप्रकाश’ पत्रांत कित्येक विद्वानांत चर्चा चालली होती तेव्हां आमच्या ग्रंथांतील ही माहिती मी त्याच पत्राच्या ता. ७-२-१४ च्या अंकांत ‘इतिहासप्रिय’ या सहीने प्रसिद्ध केली तेव्हां आमचे पुणें येथील विद्वान मित्र (दुदैवानें नुकतेच मृत्युमुखी पडलेले) मि. व्यंबक गुरुनाथ काळे यांनी ता. १३-२-१४ च्या ‘ज्ञानप्रकाश’ च्या अंकांत माझ्या लेखास उत्तर प्रसिद्ध केलें. त्यांत त्यांनी मी भारतीय युद्धा संबंधी व श्री नेमिनाथांच्या कालनिर्णया संबंधी दिलेला ८६६१२ वर्षांचा आंकडा हल्लींच्या पाश्चात्य शोधकांच्या मतानुसार ऐतिहासिक प्रमाणांस किंवा युक्तीस धरून नाही असा आपला अभिप्राय देऊन ते पुढें म्हणत की, “श्री कृष्ण व जैनांचे २२ वे तीर्थंकर श्री नेमिनाथ समकालीन होते, ही गोष्ट माझ्या पूर्वीच लक्षांत आलेली आहे. मात्र श्रीनेमिनाथ व २३ वे तीर्थंकर जे श्रीपार्श्वनाथ यांच्यांत जैन परंपरे प्रमाणें व्याऐंशी हजार सातशें पन्नास (८३,७५०) वर्षे गेलीं, हें मानण्यास मात्र मी तयार नाही. या बाबतींत जैनांची अतिशयोक्ति फार आहे ! जैनांचे चोवीसावे तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी हे इ. पू. ५२७ मध्ये निर्वाण पावले व त्या पूर्वी २५० वर्षे म्हणजे इ. पू. ७७७ वर्षे त्याचे २३ वे तीर्थंकर निर्वाण पावले या गोष्टी ऐतिहासिक कोटींत गणण्यास आज पुरावा सांपडलेला आहे,”

असें म्हणून त्यांनीं—“जैनांचे २४ वे तीर्थंकर जे महावीरस्वामी त्यां शिवाय बाकीचे तीर्थंकर झालेच नसून, ते ऐतिहासिक पुरुष नव्हते, असें मानण्याचीच युरोपियन पंडितांची आज पर्यंत प्रवृत्ति होती; पण पार्श्वनाथांच्या अस्तित्वाविषयी व त्यांच्या काळाविषयी बळकट प्रमाण—तेही प्रत्यक्ष महावीरांच्या वेळचेंच मिळाल्यावर ते तरी काय करणार ? त्यांना श्री पार्श्वनाथ मान्य करावेच लागले !” या प्रमाणें आपलें स्पष्ट व प्रामाणिक मत नमूद केलें आहे. शेवटीं ते म्हणतात, “युरोपियन पंडित कोणत्याही बळकट प्रमाणां शिवाय कोणतीही गोष्ट ग्रह्य धरीत नाहींत. आणि ही त्यांची पद्धत ऐतिहासिक सत्याचा निर्णय करण्यास फार उपयोगी पडते. सनातन धर्मीयांनीं आपल्या परंपरेवरून निर्णित केलेला श्री कृष्णाचा काळ इ. पू. ३१०० वर्षे (आज सुमारे ५००० वर्षे) व जैन परंपरे प्रमाणें ठरविण्यांत येणारा श्री कृष्णाचे समकालीन श्री नेमिनाथ यांचा काळ ८८००० वर्षे यांच्यांत मेळ कसा घालावयाचा ? पहिलीच परंपरा (हिंदुधर्मीयांची) जेथें युरोपियन पंडित योग्य कारणांनी अतिशयोक्तीची मानीत आहेत, तेथें या दुसऱ्या परंपरेचा काय टिकाव लागणार ? इ. पू. ३१०० वर्षे हाच काळ जेथें ऐतिहासिक दृष्टीला मान्य होणें शक्य नाहीं, तेथें ८८००० वर्षे हा काळ तरी कसा मान्य होणार ?” असें प्रतिपादन करून त्यांनी आपल्या पुराण ग्रंथांतील श्री कृष्णाच्या कालनिर्णयात्मक अर्शां पुष्कळ ऐतिहासिक प्रमाणें वगैरे देऊन आपल्या सनातनधर्मीयांनीं निर्णित केलेला इ. पू. ३१०० हा काळ सुद्धां युक्तीस व प्रमाणांस धरून नाहीं असें ठरवून श्री कृष्णाचा वास्तविक काळ इ. पू. १२००—१५०० च्या दरम्यान केव्हांतरी असावा असे ठरविण्याचा प्रयत्न केला

आहे. मि. काळे यांनीं जैनांचे २२ वे तीर्थंकर श्री नेमिनाथ व श्रीकृष्ण हे समकालीन होते अशा संबंधीं व जैनग्रंथांवरून त्यांच्या काळासंबंधीं निघणारीं अनुमानें यां विषयीं त्यांनीं स्वतः लिहिलेल्या ‘ भारतनिरीक्षण ’ या ग्रंथांत चांगलें विवेचन केलें आहे व तो लवकरच प्रसिद्ध होईल असेही सदरी लेखांत त्यांनीं म्हटलें आहे, परंतु हा त्यांचा ग्रंथ प्रसिद्ध होण्याच्या अगोदरच त्यांचा गेल्या जुलै माहिण्यांत अंत झाला ही फारच खेदाची गोष्ट आहे ! मि. काळे यांचा सदरहू ग्रंथ त्यांच्या चाहत्याकडून लवकर प्रसिद्ध होईल अशी मला आशा आहे.

या वरून ज्या श्री महावीरस्वामींच्या पूर्वीच्या एका तीर्थकरांचें—म्हणजे २३ वे तीर्थंकर जे श्री पार्श्वनाथ त्यांचें मुळीं अस्तित्वच कबूल करण्यास आजपर्यंत युरोपियन पंडित तयार नव्हते त्यांना बळकट अशा ऐतिहासिक पुराव्यांवरून श्री पार्श्वनाथांचें अस्तित्व आज कबूल करणेंच भाग पडलें आहे. शिवाय मि. काळे हे तर २२ वे तीर्थंकर श्री नेमिनाथांचें अस्तित्व सुद्धां बळकट पुराव्यानिर्शां कबूल करितात. तेव्हां आमच्या ग्रंथांतील व इतर प्रमाणें प्रगट करून आमचे विद्वान आपल्या प्राचीन इतिहासाचे दरवाजे खुले करतील तर आज नाहीं उद्यां—कालांतरानें कां होईना युरोपियन पंडितांना आमच्या बाकीच्या तीर्थकरांचें अस्तित्व ही कबूल करावें लागेल व त्यामुळें आमच्या धर्माच्या प्राचीनतेस—किं बहुना अनादि—निघनत्वास विद्वानां मध्यें जास्त बळकटी येईल अशी मला दृढ उमेद आहे. शिवाय मी दिलेल्या सदरी कालनिर्णयांतही अन्य जैन ग्रंथांवरून फरक आढळल्यास आमच्या जैन विद्वानांनी तो सप्रमाण प्रसिद्ध करावा अशी प्रार्थना करून व सदरहु महत्वाच्या विषयाकडे आणि मि. काळे यांचें म्हणणें कितपत खरें आहे यांकडे आमच्या जैन विद्वानांचें पुनः एक वेळ दृष्टी वेधून मी आपली रजा घेतों,

जैनदर्शनस्यानुवादः

इयं हि वार्ताऽविप्रतिपन्ना यद्विश्वस्य विश्व-
विद्यासु दर्शनविद्याया उच्चासनं विद्यते । न के-
वलं भारतवर्षीयमहामुनय एव किन्तु समस्तज-
गती तलवासिनस्तत्त्वदर्शिनोऽपि विद्यामसूख-
मेक्षया महनीयदृष्ट्या विलोकमाना आयान्ति ।
एतन्महर्षिणां तत्त्ववीथिपथिकानाञ्च वार्ता-
मनास्थाय कथनोपर्य्येवानिर्भरभूय यदावयम-
स्मिन् विषये स्वायत्तमत्यामीमांसा महे । तदा-
ऽमुष्मिन्सङ्गतसमये दर्शनविद्याप्रचारस्याती-
वावश्यकतादरीदृश्यते । साम्प्रतिकसंसार-
स्थितौ च यदादृष्टिं प्रसारयामस्तदा प्रगति सुख-
शान्तिप्रभृतीनां वार्तात्वास्तां केवलम-
भितः प्रभवन्तं हाहाकारं विहायान्यावैरव-
र्य्येव कर्णजाह्नैति इतो निपातनं जातं ततो
धूमशकटयोपरस्परमाघातप्रतिघातौ जातौ
पोतः स्फुटितः ज्वालामुखगिरिणा वह्निवृष्टि-
विहिता प्रवाहपूरा आपगा जाता नद्यानिगमाः
प्रवाहिताः ग्रन्थाविसर्पिणी (प्लेग) प्रसृतः
जन्यंप्रारब्धं सनिहतः सच विक्षतो भूतः नैता-
वतापूर्तिः किन्त्व नैतावदेव किन्तु तेन
पाणिगृहीतीपरित्यक्ता, साच पतिष्ठी जाता
इत्यादीन्भीतिदान् शब्दानाकर्ण्य कर्णपुटौ
विस्फुटत इव एषु आकस्मिकघटनास्तु जनता-
व्याकुलतमाऽस्त्येव किन्तु कृत्स्नं दुर्घटघटना
भिरपिमनाङ् न्यूनाऽऽधिमयीनास्ति अनवर-

तमिमानि हृदयकृन्त्या क्रन्दनान्याकर्ण्य तेभ्य
आत्मविमोचकोपायचिन्तनकाले भूयोऽपि सैव
दर्शनविद्याऽऽस्माकीनस्मृतिचिरेचित्रता-
मुपयाति यामवलम्ब्य (एकाकीनिस्पृहः
शान्तः पाणिपातो दिगम्बरः कदाऽहं स-
म्भविष्यामि कर्म निर्मूलनक्षमः ॥ इमां
पवित्रकामनां सततं स्वस्वान्ते सन्दधाना
एहिकसुखसंभूतिं भूतिचतुणमिव मन्वाना
विगलितावधिभूपालास्तां सार्वभौमसम्पत्तिं
पादेन संताड्य विविक्तवनगिरिगह्वराप्याश्र-
यन् । भवभूरुहं निर्मूल्य स्वशुद्धात्मस्वरूप-
निर्वाणनिगममार्गसरलञ्चाकुर्वन् । अलमा-
लापेन इमां दर्शनविद्यामसाधारणोपयोगिनी-
मवगम्य जैनदर्शनोपपादितसामान्यवस्तु
विषये स्वविचारं प्रचिकटिषामि । जैनाचार्य्यै
मूलपदार्थाविवेचनकाले इदमेवोदीरितं
यत्प्रतिक्षणं स्वगुणपर्यायैः परिवर्तमानस्या-
पियस्यानादिकालात्प्रारभ्याऽऽनन्तकालं कथ-
मपिसत्ता विद्यते तदेव मूलद्रव्यम् । अन्यथा
यदि मूलवस्तु अनादिकालिकं नोररीकृत्य
विवक्षितकालादेव तस्य प्रादुर्भूतिः स्वीक्रियते
तर्ह्ययमनिर्वाग्यानुयोगः समुपतिष्ठते । यदि-
दं मूलद्रव्यमुपादानकारणमन्तरैवोत्पत्पद्यते
तर्हि पटनिर्माणं यतन्तु वयनस्य काऽ-
वश्यकता मुद्राजनन्यै (टकसालकेलिण)
रजतस्य कथभावश्यकताऽऽपतति ?

असत्पदार्थोसत्तौ पञ्चाध्यायीकारपादा-
अप्येवमेवारिरोकि “ असतः प्रादुर्भावेद्रव्या-
णामिह भवेदनन्तत्वं कोवारयितुं शक्तः कूर्मो-

त्पत्तिमृदाद्यभावेपि ।” एवंमूलपदार्थस्यानन्त-
कालंयावत् स्थित्यस्वीकारे द्वितीयपर्यनुयो-
गोपि पूर्वप्रश्नवद् वस्तुस्वरूपमत्तुमास्यं
व्याददाति तथाहि—यदि अनादिकालिक-
मूलद्रव्यस्यापि कस्मिंश्चिद्विवक्षितेसमय
एकान्ततो निरन्वयनाशोजायते तर्हि वर्त-
मानपदार्थाअक्षताः कथमिवाद्यावध्वविष्टा
दश्यन्ते ? येनकेन चिद्रूपेणैषां कथं वा सर्वदा
सत्ता ?

क्षणिक पक्षवतां वारिवाहादि निरन्वय-
नाशस्याशङ्कापि सायन्सशास्त्रकोविदैर्मूला-
देवोप्ताटिता मेषस्प धूमज्योतिः सलिलमरुतां
सन्निपातेनोत्पत्तिस्तथातन्नाशसमये स्वस्वरूपे
निलीनता सायन्सशास्त्रतः सम्यक्सिद्धैव ।
अकारणकोत्पादनिरन्वयनाशयोर्बाधकप्रश्नानां
समुचितोत्तराभावैनेव मूलद्रव्यस्य सामान्य-
रूपतो नित्यत्वाङ्गीकारएव समुचित इति ।

साम्प्रतं मूलद्रव्यस्य नित्यत्वस्वीकारे
प्रश्नोयं प्रादुर्भवति यदि वस्तु नित्यं तदा तत्र
रूपान्तर प्रतिपत्तिः कथं घटेत ? यतः पर्य्याय-
परिवर्तनेन तत्रानित्यतैव न्याप्या नित्यताया
अनित्यतायाश्च परस्परंविरोधः तथाच
नित्यत्वाभ्युपगमेऽनित्यताद्योतक परिणामो
नस्यात् अथवा परिणामिपक्षस्वीकृतौ वस्तु-
नि नित्यता नस्यात् मैवं वस्तुनि नित्यता
सामान्यधर्मापेक्षयाऽङ्गीकृता अनित्यता च
विशेषधर्मापेक्षया ।

यथामानवः स्थूलदृष्ट्या बालतरुणवृ-
द्धावस्थाभिरथवासूक्ष्मदृष्ट्याप्रतिक्षणभा-

विभिर्निजप्रत्नपर्य्यायैः परिवर्तमानोऽपि म-
नुष्यत्वरूप सामान्य धर्मापेक्षया अपञ्चत्व-
प्राप्तेर्नपरिवर्तते तथैवमृत्तिकायाघटाद्यनेकाव-
स्थासुसतीष्वपिमृत्तिकाऽन्वयरूपेणानारतं
प्रत्येकावस्थासु विद्यमानैवास्ते । सामान्य-
रूपेणवस्तुनित्यत्वानङ्गीकारेमृत्तिका-
न्वयस्तदीयप्रत्येकावस्थासु न गच्छेत् एवमे-
वानित्यतासूचकपरिणामास्वीकारेमृत्तिका जा-
तुघढरूपानस्यात् । परन्तुभवतस्तूभावपि
अतोवस्तुनिद्रावपि नित्यत्वानित्यत्वधर्मास्वी-
कर्तव्यौ । अतएव वस्तुनोलक्षणं तत्रभवता-
माणिक्यनान्दिनोक्तं तथाहि सामान्यविशे-
षात्मकं वस्तु—इति । इदमेवनित्यत्वं जैन-
ग्रन्थेषुध्रौव्यशब्देनवर्णितम् । अनित्यस्यचो-
त्पादव्ययशब्देनकथनंकृतम् । अत्रेयदन्यत्कथ-
नमप्यावश्यकं वर्तते यद्द्रौव्यशब्दस्य
तात्पर्यार्थो गुणः उत्पादव्ययौचपर्य्याय-
बोधयतः अत्रच “ गुणपर्य्ययवद्द्रव्यम् ”
“ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तंसत् ” इतिमोक्ष-
शास्त्रस्यसूत्रद्वयंप्रमाणम् । अधुनाऽवशिष्टा-
चेयं विरोधवार्तानित्यत्वानित्यत्वयोः परस्परं
विरोधइति । अस्याविषय इयदेवकथनमुचितं
प्रतिभाति यद्विरोधस्य लक्षणं पूर्वमहर्षि-
भिरिदमेवकृतंमनुपलम्भसाध्योहि विरोधः
अर्थाद्येनयस्यानुपलब्धिःसाध्यतेतेनसह-
तस्यविरोधः । तस्यचवध्यघातक सहानवस्थान
प्रतिबन्धप्रतिबन्धका इतित्तयोभेदाभवन्ति
एतेषुनित्यत्वानित्यत्वयोर्वध्यघातक विरोधो-
नास्ति यतोवध्यघातक विरोध एकदैकत्वोप-

स्थितयोः पदार्थयोः संयोगेसत्युत्तरकालेबल-
वतानिर्बलघाते जाते जायते यथैकदैकत्रा-
हिनकुले समुपस्थिते सतिपश्चान्नकुलेन
सर्पविनाशेकृत एव वध्यघातक विरोधो-
भवेति। यदि तयोः संयोगमन्तरैव विरोधो-
जायेत तदातु विष्टपादाहि कुलसत्त्वनिवर्तते-
तिबल्लगुभावा अवयन्ति स्पष्टम् । नित्यत्वा-
नित्यत्वयोः परस्परविरोधमभ्युपगच्छद्भिर्म-
देच्छैरैकदैकपदार्थानित्यत्वानित्यत्वयोर्वृत्तिर्नाङ्गी-
क्रियते । पुनर्वध्यघातकविरोधः कीदृशः ।
यदिचाभैववस्तुनिद्रयोः सत्तामत्वा पुनर्विरो-
धोमन्यतेतर्हिद्रयोरपिसमबलत्वात् कोऽप्यन्य-
घातायनकल्पेत । तथा चैकपदार्थं युगपद-
थवा विभिन्नसमयेऽपितद्द्वयवृत्ति स्वीकारे
तयोर्वध्यघातक विरोधोऽसिद्धयति । सहा-
नवस्थानविरोधोऽपितदैवोभयत्र सिद्धयेत् ।
यदैकस्मिन्पदार्थे तद्द्वयसत्ता युगपदनङ्गी-
कृत्य क्रमपूर्विकैकावाङ्गीक्रियेत । यथारसा-
लफले पूर्वपूर्व कालिकीहरितां विनाश्या-
पीतता जायते । अतएव पीततायां-
हरितायाञ्चसहानवस्थानाहयो विरोधो-
भवति एवंयदि नित्यत्वं विनाश्या-
नित्यत्वस्याथवाऽनित्यत्वंविनाश्यानित्यत्व-
स्यजनिर्जायेत । तर्हिनित्यत्वानित्यत्वयोः
सहानवस्थानविरोधः सम्भवेत् । किन्तु
नित्यत्वं विनाश्यानित्यत्वोत्पत्तिस्वीकृतौ,
आहोस्विदनित्यत्वं विनाश्यानित्यत्वास्यप्रा-
दुर्भूत्यङ्गीकारे नित्यत्वं नित्यत्वमेव न स्यात् ।
उभयपक्षेऽपि नित्यत्वस्यपर्यवसानमनित्यत्व-
एव जायते । अतो न नित्यत्वानित्यत्वयोः
सहानवस्थानविरोधः कथमपिनिष्पद्यते
इदानीमवशिष्टाचप्रतिबन्धप्रतिबन्धक-

वार्तासापि तदैव सिद्धयेत् । यदामणिदा-
हवन्नित्यत्वधर्मोऽनित्यत्वस्यप्रतिबन्धकः
स्यादथवाऽनित्यत्वधर्मोऽनित्यत्वस्यप्रतिबन्ध-
कः स्यात् । किन्तुभयोरपिसमबलत्वात्तद-
स्यापिकेनाऽपिप्रतिरोधः सम्भवति ।
अतो न नित्यत्वानित्यत्वयोः कोऽपिविरोधो-
युक्तिपथप्रस्थायी अस्यमूलपदार्थस्यजैनदर्शने
जीवाजीवावितिभेदौ निगदितौ। जीवस्यलक्ष-
णंचेतना अजीवस्यचलक्षणमचेतनत्व-
मभ्युपगतम् । यतः सामान्यवस्तुपरिणा-
मि नित्यञ्चासिद्धयति ततस्तस्यजीवा-
जीवभेदयोरपि परिणामित्वं नित्यत्वञ्चावश्यं
माननीयमेव । एतर्हिप्रश्नोऽयंजागर्तिं यज्जी-
वस्यलक्षणंयदि चेतनाङ्गी क्रियते तर्हियं
चेतनासमेषु जीवेषु समांशतया कथन्नोपल-
भ्यते। कस्मिंश्चिज्जीवज्ञानं न्यूनं कस्मिंश्चि-
च्चप्राज्यं कथंसंलक्ष्यते । अथाचेतना लक्ष-
णस्य सर्वात्मसु समानतया सत्त्वेऽपिकस्मा-
त्मात्कालादुपदेश्योपदेशक शिष्योपाध्यायादि
सम्बन्धोजातः ! अत्रचैतावदेवसमाधानं
पर्याप्तं यत्सर्वसत्त्वेषुव्यक्तिभेदादथच
कालभेदाज्जायमाना सर्वदर्शनविश्रुतेयं
ज्ञानतरतमतस्तोतुजीवैःसह कस्यचिद्विजाती-
यपदार्थस्यसंयोगं द्योतयति । विजातीयका-
रणान्तरमन्तराहि कस्यापि पदार्थस्यस्वभावे
कदाचिद् भेदोऽभवति । निष्कृष्टकालिक-
चामीकरेकेनापिप्रेक्षावताभेदोऽदृष्टः । अ-
तोऽत्रापि विभावोत्पादकं हेत्वन्तरमवश्यं
माननीमेव । अयं विजातीयपदार्थोऽजीव
पदार्थस्यैकभेदे पुद्गलेगर्भितः। लक्षणाञ्चास्य-
स्पर्शरसगन्धवर्णवस्त्वमत्म् । साम्प्रतंविवे-
चनीयमिदमास्ते यदस्यविजातीयपदार्थ-

स्यसंयोगोऽपिकार्यत्वेन कारणान्तरमपेक्षते ।
कारणान्तरञ्च जीवस्य निजभावान् विदायान्य-
न्न सिद्धयति । यतोवाहिनातप्तोनिरान्तः पाति-
तायोगोलक एव निजाभ्यन्तरे पयः प्रवेश-
यति शिशिरायोगोलकस्तु प्रवेशयितुमप्रभुः ।
इवमेव यावत्कालं जीवोऽयंकषायाग्निना
तप्तायमान आस्ते वर्तमानाज्ञानादि विकृतभा-
वानां पूर्वबद्धकर्मकारणम् पूर्वबद्धकर्मणाञ्च
ततोऽपिपूर्वकषायः हेतुरितिबीजवृक्षवदयं
सम्बन्धः सिध्यति । यावत्कालं जीवोऽयं
कषायदवदाहेनदग्ध आस्ते तावत्पुद्गल
द्रव्यैकभेदस्वरूपाणि कर्माणिनिजेन सहा-
नारतं सम्बन्धयति । यथायथा चायंसुगुरू-
पदेशनिर्मलवारिवृन्देन स्वनिखिलदोषकुलं
प्रक्षालयन्—सम्यग्ज्ञानादिकोत्तमधर्मानधिग-
च्छन् निजकषायज्वालाजालं निर्वापयति ।
तथातथाभिनवकर्मबन्धनं विरतिमेति ।
पूर्वबद्धकर्मणिचशनैः शनैर्नश्यन्ति ।
एवम्प्रकारेणाशेषकर्माणि निर्मुच्य जीवोऽयं
परमात्मपदं ब्रजन् गलितावधिकालं स्वानुभूति-
सुधां पिबन् लोकालोकज्ञानलक्ष्मीं लालयन्,
निसर्गजशातसन्दोहसरस्वति निमग्नो
जायते । जैनदर्शने कर्मसम्बन्धकारण-
माश्रवशब्देन कर्मसम्बन्धञ्चबन्धशब्देन
व्याहरन्ति प्रत्यग्रकर्मबन्धविरामाय सम्बर
इति कर्मणामेकदेशक्षयाय निर्जरेति
सकलकर्म विप्रमोक्षायमोक्षइति शब्दं
प्रयुञ्जन्ति जैनसिद्धान्तकाराः जैनदर्शनस्यै-
कांशः समस्यमयालिखितः । विदुषांपरि-
तोषावहस्तु पारोगिरांवर्तते । तथाप्याशासे
यत्परस्यतुच्छेऽपि परानुरागवतामेतेनापि
कश्चन् लाभोऽवश्यं स्यात् ।

गोविन्दरायो गुप्तः

स्वाद्वादमहाविद्यालयश्चात्रः

जैनानां वर्तमानप्रगतिः ।

गत्यधीना समुन्नतिरिति वाक्यानुसारेण
निखिलजनानां प्रगत्यनुकूलमेव समभ्युदयः
समवलोक्यते इति प्रातीतिकसिद्धम् । साम्प्रतं
जैनानां प्रगतिः कीदृशीत्यपि विचारप्राप्तो-
वसरः खल्विदानीम् । दैगम्बरी येष्वपि
कियत्कालतोऽनेकमतभेदाः सञ्जातास्ते
चाऽखिला एव न समीचीनाः कश्चिदेवैकः ।

केचित्तु त्रयोदशपक्षमाश्रिताः सम्यग्दर्शन-
ज्ञानचारित्रमिव तमेव निःश्रेयसमार्गमभि-
वाञ्छन्ति, दर्पञ्चैतादृक् दधानाः दरीदृश्यन्ते
यद्वयमेव श्रावकोत्तमाः यतः श्रावकास्तु
द्वादश व्रतान्येव पालयन्ति वयन्तु तदति-
रिक्तमेकञ्चापि । न ते विदन्ति मुग्धाः
यत्कुत्र शास्त्रेऽयं विधिरस्ति योऽस्माभिः
समाश्रिता । श्रावकाणां व्रतानि द्वादशैव
त्रयोदशभेदाः कस्य सन्ति यतस्त्रयोदशमार्गः
तैः स्वीकृतः । शास्त्रज्ञैः समुद्बोधिता अपि
परं रूढिवशवर्तिनस्तन्मग्नाः सन्तः स्वां
पूर्वाचार्याप्रसिद्धामपि वृत्तिं न जहन्तीति
चित्रमेतत् । पक्षोयं खलु ईदृक् पुष्टोजातो
यत्परमर्षिप्रणीतमार्गमेव छिनत्ति । आर्षग्र-
न्थेषु यो विधिः सम्यक् वर्णितोऽस्ति तमेव-
मेऽभिनवानुसरणिशरणशीला अनभिज्ञा नि-
षिध्यन्तीत्येका प्रगातीर्भिन्नैव रूढितः प्राबल्यं
प्राप्ता जैनानाम् ।

इतरे एम्यः सप्तपादमग्रे गताः विजयी-
भवन्ति तेपि पक्षपातकुक्षिकक्षाकृता एव
नार्षमार्गानुगामिनः । न खलु शास्त्रेषु
कुत्रापि विंशतिरित्याख्यः पन्थाः कश्चिदस्ति ।
यद्यार्षग्रन्थानुकूलमेव विधिरयं स्यात्तदा
पूर्वाचार्येष्वपि मतभेदोऽवश्यमेवाऽभवत्,
तथा च तन्निर्मितशास्त्रेष्वपि गोम्मटसार-
तत्त्वार्थसूत्रयोर्मनःपर्ययज्ञानभेदस्वरूपोल्ले-
खवत् अथवा दिक्पटश्चेतपटवत् क्रिय-
माण आसीत् । नास्ति चातः पक्षपातवशप्रभव
एवोत्पत्तिमूलः ।

कैश्चित्तूक्तो भयपक्षविभिन्नैः सभिर्दमधु-
लिप्तासिवत् जनः प्रतार्यते । एतत्पक्षानुया-
यिभिरुपरितः आर्षग्रन्थमाद्रियमाणैरिव चेष्ट-
मानैः प्रतीतिः कार्यते तच्छास्त्रवसनाच्छत्रैस्तु
स्वीयानर्गला समीहितसिद्धिः साध्यते । सि-
द्धान्तश्चायमेतेषां “ यन्नास्माभिरार्षविधि-
विधानबन्धनवद्धैर्भाव्यं समयानुकूल्येन प्रव-
र्तयितव्यं शास्त्रकारा अपि समयप्रगतिमभी-
क्ष्य विधिविधानं विधीयन्ते स्म, तेपि चाल्प-
धीधारिणो न विश्वज्ञाः ” कथं पुनस्तैर्यदुक्तं
तदेव विश्वसनीयं नान्यदित्यप्येतेषामाधुनि-
कनव्यर्षाणां विवेकवारिधिरुद्वेल्लयति ।
अतएवयत्तद्विद्यां नायाति तन्नास्त्येव कल्पना-
शिल्पिनिर्मितं वा भवेत् । पाश्चिमात्य विप-
श्चिद्धिः सत्यमलीकं वा यत्किञ्चिदपि प्रका-
शितं तदासप्तवाक्यवदतीव श्रुद्धया स्वीकुर्वन्तीमे
स्वानुभवमान्याः । युक्तिसङ्गतमसङ्गतंवा
सर्वं प्रमाणात्मकमेव पाश्चिमात्याविदुषां-

प्रभाषितं न तत्र शंकितवृत्तिस्तदनुधाविनामत
एव जैनहितैषिप्रमुखपत्रे पूर्वं यल्लिखितमा-
सीत् यत्सञ्चमकालिकपाश्चिमात्यतीर्थकरा अ-
धुना अपि सन्ति तद्यथार्थमेवलिखितम् ।
पूर्वाचार्यानुभवतापि स्वानुभवं समाधिकुं
मन्यमाना नातिसूक्ष्मविचारका बुद्धिद्रविण-
दरिद्राः इमे कथं न बोधनीयाः सद्विचार-
चतुरचेतोभिस्ते ।

एतेष्वेव केचित् प्रथमानुयोगं दृष्टान्त-
स्थानीयमेव कल्पितं प्रभाषन्ते । समयानु-
सारेण साधयिष्यामोवयं यद्रव्याद्यनुयोगव-
त्प्रथमानुयोगोपि तत्त्वत एव, सोप्याप्तप्रति-
पादितः तत्प्रतिवादः प्रतीतिबाधित एव ।

अन्यैस्तु सनातनागतवर्णाचार एव प्रति-
विधीयते निर्माप्यते च अभिनवः सन्दोहेने-
तस्ततः समुन्मूल्य संग्राह्य चेति । एवंरीत्या
नानाभेदभिदा प्रगतिरियं न शास्त्रसम्मता ।
भो जैनबान्धवाः ! यदि भवतां समस्ति
कथंचिदपि स्वधर्मगौरवस्तदा कथं नार्षपथा
प्रगम्यते, अन्यथान्योन्यमेव प्रभज्जनेन जैन-
जातेः क्रियती क्षतिः प्रत्यहं प्रभवतीति
विद्वद्भिश्चिन्त्यम् । अन्यत्र प्रकाशस्तुं दूरे
आस्ताम् । सन्दोहेनैव सर्वाणि कार्याणि
सिध्यन्तीति विनिश्चित्य एकीभूयाभ्युदयः
सम्बर्धनीय इत्यलं पल्लवितेन ।

मखनलाल जैनः

मेरेनास्थः जैनसिद्धांतपाठशालायाश्चात्रः ।



जिणधम्मस्स उन्नइए

उक्काया ।

हो जइणधम्मस्स समुन्नइआ वांछआ वाचया ! जाणंति भवंता सव्वे जं पुव्वमासी बहुणो जिणकहिये आयमे णिवुणमइणो वादिगयाणं मयमंथणम्मि सीहा भिव सच्चतत्ताणं पयासणे भाणुव्व आयरिया इमम्मि भारए खेत्ते ।

चयासिअ तयां बहुहा जिणुवदिट्ठो मुक्खस्स मग्गो । उक्काही ते सव्वजीवाणं सीसाणं पसीसाणं य पाढणेण, अणेय-विहाणं सत्थाणं निम्माणेण, अप्पणो उवदेसदाणेण अण्णेण य बहुविहेण पयारेण ।

तया च्चेय होज्जा बहुओ विबुहा सहियस्स कारए वीअरायस्स धम्मे निच्चला, अण्णेहि मिच्छादिट्ठिहि परिचालिआ वि सइलव्व णियधम्माहि अचलिआ सावया ।

विहरिअ च तया विगयमोहा अप्पाणया जणा मोत्तुं महुअरिं य आसिरिऊणं पढ-माणा मुणिजणाणं चरणाणं अणुसेवणम्मि दिण्णमणा जइणनाअपमुत्तिविसयाणं अणुसीलणेण विसारअत्तणं पसा-तत्ताणं निण्णयस्स छिहाए संबदंता अण्णेण अप्पाणयेण दायायेण सह भायरा विअ समा-चरंता विज्जस्थिणो ।

परं इमम्मि काले क्खु पुंवाणं महाप्पाणं वेसाहि विवरीयस्स वेसस्स धारया णियभायराहिं सह अणुदिणं कळहं कुणंता

णाणस्स लवसुत्तो वि रहिआ नाअपमुत्ति-विसयाणं णामं वि कहणे जथत्थरीइआ असमत्था अण्णेहि जइणसद्दस्स अत्थं पिट्ठा “पंडिआ जाणंति णो अम्हे” ति साहसेण सह वदमाणा सावया, विआरण-पमुत्तिविसयाणं गंधेण च्चेय तुट्ठा अप्पाणं सव्वेसु विअयेसु विसारयत्तणं कहमाणा अण्णुणं मित्तिमं णो कुणमाणा अप्पाणयस्स जयस्स छिहाए अप्पाणयं वायाडत्तणं पया-समाणा गुरूहिं सह वि विरोहं कुणंता अंतेवासिणो, आयरियणं खु दंसणं णइ दुल्लहं ।

महासया पाढया ! अणुदिणं कहिऊणं चेय णो आगच्छिइ णं पुण्विया अवत्था इणं जइणलोयं तदो अलाहि इणं णिहं खिप्पं कज्जो तस्स उन्नइए उवाओ ।

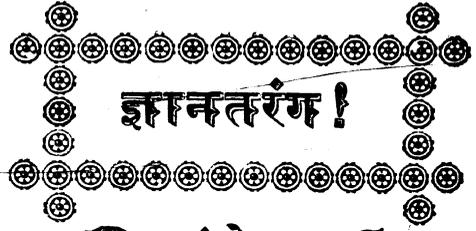
णो उन्नइ होहिइ ताव इमस्स जिणु-वदिट्ठस्स धम्मस्स जाव णाहं तारिसा ओवयारम्मि तप्परा पंडिया संसारम्मि परिभमेज्ज, सावया अप्पाणये धम्मे दिण्णमणा णो होज्जा, विज्जस्थिणो य णवर पढणे पाढणे य संलीणा णो दीसेज्जा । तदो कुणंतु सव्वेसि कज्जाणं पुव्वं विज्जाए समुन्नइआ सदुवाया । थावणिज्जा विज्जा-लया वायणालया मुइणालया तहा अण्णा य णाणस्स संवुद्धिकारया संत्था । जेण सव्वेसिं सावयाणं धणरहियाणं वि बालया पढेज्जा को वि मुखो णो अवसिट्ठो हवेज्जा । जा वट्ठंते करणिज्जा तास

ઉન્નહ । સુદુ રીઝઆ તા પરિચાલણિજ્જા ।
 સિરીમંતાહિં તાસુ ઘણં મોત્તવ્વં, જેસુ ઘણં
 મોત્તું ણો વટ્ટહ સત્તિ તે અણુમોદણં કુણંતુ
 ઘણવંતા અહિમુહં જેણ તે સહાયિમં કરેજ્જા ।
 તેણેણ મણેણ વા તાસ કજ્જં કુણંતુ ।
 કરણિજ્જં ય તાસુ પવંધસ્સ સુદેરં
 જેણ ઘણસ્સ દુરુવજોગં ણો હોજ્જ ।
 અણ્ણં વિ જં જં લાહયરં તાસુ તે તં સવ્વં
 વિહેજ્જં । જા વિજ્જાલયા પાઠસાલા વા
 વટ્ટંતે તાસુ ય જે ચ વિજ્જસ્થિણો પઠંતિ તે
 પઠિંડં કુદો પુત્થયા સમાવિજ્જંતિ ! ણો
 તારિસો કાલો ણાહ તારિસા પાઠયા જે
 અપ્પણો લિહિઠ્ઠણં પઢેજ્જા । અણ્ણેણ
 લિહાવણમ્મિ બહુઘણસ્સ આવાસત્તા જં તે
 ઘણરહિઆ કત્તું અસમત્થા । લિહિયાહિં
 સત્થાહિં જત્થ કુત્થ વિ મિલંતિ તાહિં ય
 અસુદ્ધાહિં । જેણ પઠિંડં તેસિં ઉચ્છાહો
 ણો હોદિ । અમું વિચારિઠ્ઠણં સવ્વદો પુદ્ધમં
 સવ્વેસિં વિસયાણં પુવ્વાહિ આચરિયાહિં
 કયાણિ સક્કયપાયયસત્થાહિં મુદ્દાવણિજ્જાણિ ।
 અણુવાયો ય તેસિં સવ્વાસુ દેસમાસાસુ
 કજ્જો જેણ સક્કયં અણજાણંતા અણ્ણે વિ
 સવ્વે તાણિ પઢેજ્જા । જદો જિણધમ્મસ્સ
 પહાવણા હોજ્જા ।

અત્તો મવંતા સવ્વે લિહિયવિસયં વિ-
 ચારિઠ્ઠણં સિગ્વં ઉન્નહણ ઉવાયા કુણંતુ ।
 અવસાણે-પાયયમાસાણ ણો મણ સુદ્ધુ
 અન્નાસો કયો ણાહિં કયા વિ લિહિયો
 અદો બોહમંતા પાઠયા અસુદ્ધિ અમ્હેકેરં
 સ્વમંતુ ત્તિ વિણયેણ સહ અત્થણા ।

મવકેરો નવલ્લો લેહઓ

સિરીલાલજ્જાણો-વારાણસી ।



સંતોષ.

મનુષ્યનું ચિત્ત નિર્મળ થવા શુભ વિચારો
 એ પરમ ઔષધિરૂપ છે. જે પ્રાણીના ચિત્તમાં
 શુભ વિચારો જાગ્રત થાય છે, તેના ચિત્ત-
 માં અશુભ કર્મનો આધ કરાવનારા અને
 સંસારમાં ભ્રમણ કરાવનારા આત્મરોદાદિ
 દુર્ધ્યાન પ્રવેશ કરી શકતા નથી. એ વિચારો
 સંતોષ વિના પ્રગટ થતા નથી. સંતોષ એટલે
 દરેક વિષયમાં અને દરેક વિષય ઉપર સમદ્રષ્ટિ
 હોય તે સંતોષી. કોઈ મનુષ્ય સાચું બોલે
 અથવા કોઈ ખુશ બોલે, કે કોઈ અવગણ કરે
 અથવા કોઈ આદરસત્કાર કરે, કોઈ અનાદાર
 કરે, કંઈ સારી વસ્તુ જીવે, કંઈ નકારી વસ્તુ
 જીવે, પરંતુ તે સર્વે તેને સમ ભાસે છે. મનુષ્યના
 હૃદયમાં સંતોષ પ્રગટ નથી, તે માણસ ધણીવાર
 કષાયને વશ થઈ જાય છે અને કષાય-
 નો ઉદય થયો કે દુર્ગુણોનો પ્રવેશ થઈ જાય સુક્યો.
 કષાય, દુર્ધ્યાન વિગેરે ભવ અટવીમાં ભ્રમણ
 કરાવવાના સાધન છે, માટે સિદ્ધ થાય છે કે
 પ્રાણીને - શુભભાવનાવાળા થવાને તથા કર્મ-
 મળથો મુક્ત થઈ મોક્ષાભિલાષી થવાને
 સંતોષ એજ મુખ્ય સાધનરૂપ છે.

સંતોષરૂપી અમૃતસમ સુખ પાસે
 બીજા સર્વ સંસારિક સુખ વિષતુલ્ય છે.
 કારણકે રાજા હો, ધંદ્ર હો, કે નરેન્દ્ર હો, કે ગમે
 તેટલી સંપત્તિનો સ્વામી હોય, પણ તેનામાં
 જો સંતોષ ન હોય, તો તે કષાય-કંકાશ વશ
 થઈ તેટલી તેટલી ઋધ્ધિથી પણ સુખ પામતો
 નથી. આ જગતમાં પૂર્વે કરેલા કર્મના યોગે
 કરીને દરેક સંસારી જીવને મનના અભિપ્રાય

વચન અને કાયાની ચેષ્ટાઓ નાના પ્રકારની હોય છે, અને તેથી સર્વ અહર્નિશ વ્યાકુલ રહે છે; પણ તેમાં ઉદાસવૃત્તિ ધારણ કરનારા, લાભલાભ સુખાસુખ-પ્રિય અપ્રિયને વિષે સમાન વૃત્તિવાળા અને સ્થિર ચિત્તવાળા મુનિગણો સુખી જણાય છે, અને તેઓનીજ સર્વ ચિંતાનો નાશ થયેલો માલમ પડે છે, એ સંતોષનોજ પ્રતાપ જાણવો. જે કોઈ પ્રાણી સંતોષે કરીને સર્વ જીવને વિષે એક ક્ષણ માત્ર પણ મૈત્રી ચિંતવે, તો તે પ્રાણી સંસારમાં ભ્રમણ કરતા પૂર્વે કોઈ વખત ન પામ્યો હોય તેવા સુખને પ્રાપ્ત કરે. એ સંતોષના ગુણને યોગ્ય મુનીઓ-યોગીઓ હોય છે, પરંતુ નામ અથવા વેશથી કહેવરાવનારાઓનો એમાં સમાવેશ થતો તથી.

યોગીઓ તેજ કે જેનો કોઈ મિત્ર નથી તથા કોઈ શત્રુ નથી, જેને કોઈ પોતાનું કે પારકું નથી, જેનું ચિત્ત ઈદ્રિયાર્થ જે શબ્દાદિ વિષય તેને વિષે રમે નહીં અને જે કપાય રહિત હોય તેજ યોગી-મુની અને તેવા સત્-પુરુષોજ સંતોષી હોય છે.

સામાન્ય ભાવે સર્વ જીવોને વિષે મિત્રતા રાખવી, સર્વ પ્રકારે જે વિદ્યા આદિ ગુણે કરી સંપન્ન હોય, તેને જોઈ હર્ષ પામી અનુમોદના કરવી, સંસારની પીડાથી દુઃખીત પ્રાણીને વિષે કૃપા રાખવી, અને નિર્ગુણી પ્રાણીઓને જોઈ ઉદારવૃત્તિ ધારણ કરવી, એજ સંતોષ પ્રાપ્ત થવાનાં કારણો છે. કહ્યું છે કે-
“સંતોષી નર સદા સુખી.”

સંતોષ રાખી જન ચરે, જે આ વિશ્વ માંહે; સદા સુખી દીશે જનમાં, મુક્તિ તે તો પામે.



નહીં જેવા કારણવશાત મનુષ્યોને ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય છે તેમજ કેટલાક એવા પણ છે કે જેઓને સમળ કારણ હોવા છતાં લેશ

માત્ર પણ ક્રોધ ઉત્પન્ન થતો નથી. જે પ્રમાણે ધરતીકંપ પોતાના જોરમાં આવીને આંખા શહેરોનાશહેરોનો પ્રલય કરી નાંખે છે અથવા જે પ્રમાણે વંટોળીઓ પવન પણ પોતાનાં જોરમાં આવી ઝાડોને ઉખેડી નાંખી જગતના-રમણિય દેખાવને ખેડોળ કરી નાંખે છે, તેજ પ્રમાણે એક ક્રોધી માણસ પોતાના ક્રોધના આવેશમાં સારાસારનો વિચાર ન કરતાં હાનિ કરે છે. સમજી પુરુષો પોતાનું શુભ કામ ક્રોધી માણસોને સોંપતા નથી. દાખલા તરીકે, ક્રોધી માણસને લગ્ન ધસાદી સોંપવામાં કદી પણ શાંતિથી પાર ઉતારવાની આશા રાખી શકાય નહીં. ક્રોધી પુરુષે પ્રથમ પોતાની સ્થિતિ તરફ જોવું જોઈએ. પોતાની નબળાઈ ભુલી નહીં જવી જોઈએ. પ્રથમ નજીવા કારણો માટે ક્ષમા કરવા શિખતાં આગળ જતાં ક્ષમા જેવા મોટા ગુણ પ્રાપ્ત થશે અને ન્યારે ક્ષમા કરવાની ટેવ પડી જશે, તો પછી ક્રોધ ત્યાંથી પોતાની મેળે નહારી જશે. બધા મનોવિકારમાંનો આ એક મોટો વિકાર છે અને આ વિકારને દરેક મનુષ્યે અવશ્ય કાશુમાં રાખવો જોઈએ. ક્રોધને કાશુમાં નહીં રાખનારાઓ પોતાનું ગળું કાપવા પણ તૈયાર થાય છે. ક્રોધનું બળ વધારવું એ એક મોટા તોફાની સમુદ્રમાં પડવા જેવું છે. કેટલાક કુટુંબોમાં સુકાની જે શાન્ત સ્વભાવનો, ધીરજ અને સંતોષનો જ્ઞાતા હોય, તો તે કુટુંબમાં અવશ્ય શાંતિ પ્રસરાય છે, પણ તેથી ઉલટું એટલે જે તે પોતે પણ ક્રોધી હોય, તો તે કુટુંબ યોડાજ વખતમાં ભુદું પડી જાય છે. ક્રોધ સમાવી દેવાની જેનામાં શક્તિ નથી, તેણે પ્રથમથીજ ગુસ્સે થવું નહીં જોઈએ. મૂર્ખ માણસ ખરાબ વચન સાંભળવાથી ગુસ્સે થાય છે પણ ડાહ્યો મનુષ્ય મુદ્દલ તેની દરકાર કરતો નથી, ક્રોધી માણસનાં દિલમાં ક્રોધ ઉત્પન્ન

થતાં પછીથી તેજ દીલમાં કાંટા ભોંકાયા જેવું થાય છે. કોધીની બધી ધારણાઓ તેના તે દુર્યુભો થકી બર્થ જાય છે. દરેક બાબતનું વેર લેવા કરતાં ક્ષમા કરવા તત્પર થવું એ અતિ ઉત્તમ ગુણ છે. વેર લેવાની આશંકા રાખનાર માણસે એટલું યાદ રાખવું કે પોતાનું ગળું કાપવાને છરીશોધે છે, અથવા પોતાનું જ બુરું કરે છે. કોધી માણસને શાંત કરવા માટે જેમ પાણી છાંટવાથી અગ્નિ શાંત થાય છે, તેમ મીઠા-નરમ અને ધીરજવાળા સ્વભાવથી ક્રોધની આગ શાંત થઈ જાય છે અને શત્રુ ફીટી મિત્ર થાય છે. આપણે વિચાર કરીશું તો ખરેખર ક્રોધને ઉત્પન્ન કરનારી માત્ર નામની જ બાબતો મળી આવશે. અને તેવા સમજી કારણ વખતે પણ સહગુણી પુરુષો ક્રોધને દામી દઈ ધીરજ ધરે છે, સારે નજીવી બાબતોમાં ક્રોધાયમાન થનારો ખરેખર મૂર્ખ કહેવાય. ક્રોધની ઉત્પત્તિ નબળાઈ, અને મૂર્ખતા, આ બેમાંથી છે અને આખરે ક્રોધીને પશ્ચાતાપ કરવોજ પડે છે. તેમજ વેર અથવા કીનાનું કારણ પણ દુર્બળતાજ છે. દુર્બળ અને બિંકણ મનુષ્યો વધારે વેર રાખે છે, પણ વેર રાખ્યાથી દુઃખ ઓછું થતું નથી, બલકે વેર રાખ્યાથી પોતાનું દુઃખ અત્યંત વધી પડે છે. કીનાબાજ માણસ હંમેશાં વિચારમાં અને દુઃખી હેય છે, પરંતુ જેના પર તેણે વેર લેવા ધારણા કરી હોય તે નિર્ભયપણે સુખમાં રહે છે. વળી વેર જ્યાં સુધી મનમાંજ હોય છે, ત્યાં સુધી તે દુઃખ ઉત્પન્ન થયા કરે છે, પણ જ્યારે તે વેર નથી લેવાતું ત્યારે તેથી પણ વધારે દુઃખ થાય છે. વેર રાખી દુસ્મનને બચવી લઈ સદા ઉપકારમાં દબાયેલા રાખવો એ કેટલું બધું પ્રશંસનીય છે? સુજ્ઞ મનુષ્યનું એજ ભુષણ છે કે અપકારપર ઉપકાર કરવો. તેનો વિચાર વાંચકોએજ કરી લેવો.

કંઈ પણ કારણવશાત વેર લેવું એના જેવું સહેલું એકે નથી, પણ વાંકને માટે ક્ષમા કરવી એના જેવું કીર્તિ ભરેલું બીજું શું હોઈ શકે? કોઈ પણ મોટી કૃતેહ મેળવવી હોય તો તે કૃતેહ પ્રથમ પોતાના ઉપરજ મેળવવી જોઈએ. પોતાના મનોવિકારપર સત્તા બેસાડતાં અને ક્ષમા, ધીરજ, સંતોષ આદિ સહગુણ સંપાદન કરતાં કોઈ પણ શત્રુ મિત્ર થઈનેજ રહેશે.

પુત્ર કર્તવ્ય.

પ્રિય વાંચકો ! જે આપણે આપણા માતૃપિતાના ઉપકારને વિસરી જઈ તેમના સામું બેદરકાર રહી તીરસ્કાર કરીએ અને તેમની આજ્ઞા પ્રમાણે ન ચાલી, તેમનું મન દુઃખાવીએ તો તે આપણી એક મોટામાં મોટી ભૂલ છે. જેણે આપણને દશ દશ માસ ઉદરમાં રાખી પોષણ કર્યું અને જેને આપણા માટે અસંખ્ય સંકટો વેડી અપણા મળમુત્રાદિ સાફ કરી આપણને મોટા કરી સર્વ પ્રકારનું જ્ઞાન આપી સારી સ્થિતિ સંપાદન કરાવી, તેનો ઉપકાર ભુલી જવે એ શું આપણું કર્તવ્ય છે? જગત્તા મહોંડે ચડી ઈશ્વરના ગુ-હેગાર થવા જેવું છે માટે વહાલા બંધુઓ ! તમે મતા પિતા પ્રત્યે નીતિથી ચાલો અને તેનો ઉપકાર જ-મોજ-મ ભુલશો નહીં. માયાપો-એ આપણને નાનપણમાં ઘણીજ ખરાબ સ્થિતિમાંથી આજે સારા રસ્તા ઉપર લાવી મુક્યા છે. અનેક જાતનાં દરદોને દુર કરી શરીરને આરોગ્યતામાં લાવનાર તેમજ નાનપણમાં અમૃત દુધ પાઈ આપણને મહોટા કરનાર તે એ માયાપ છે. તેમનો બાળકો પ્રત્યેનો પ્રેમ ઘણોજ સુદૃઢ હોય છે. મહોટપણમાં પણ તેઓ અપણી સારી સ્થિતિ જોઈ ઘણીજ ખુશી થાય છે અને પોતાનું જીવતર સફળ થયેલું સમજે છે. આપણને

કોઈ ખરાબ કામ કરતાં અટકાવી સારાં કૃત્યો કરવા માટે શીખામણ આપે છે. આપણને અસહ્ય દુઃખો સહન કરી ઉછેર્યાં અને જ્ઞાન સંપાદન કરાવી સારી સ્થિતિમાં આણી મુક્યાં તેવા અસહી ઉપકારી માતા પિતાનો બદલો ક્યાં વાળીયું અથવા એ બદલો આપણે શા ક્રમે લુપ્તી જવો જોઈએ ? તેના અસહ્ય ઉપકરણને આપણે નિરંતર દબાયલાજ છીએ.

જે કોઈ એવા મૂર્ખ મનુષ્યો હોય છે તેજ માખાવનાં આવા અમુલ્ય ઉપકારોને લુપ્તી જઈ તેની સાથે લડવાને, તીરસ્કાર કરવાને તૈયાર થાય છે, તેવા મનુષ્યો ધિક્કારનેજ પાત્ર છે. ધિક્કાર અને શીટકારની પણ તેને દરકાર હોતી નથી માટે બન્ધુઓ અને મિત્રો ! તમારે જે સલના માર્ગને પકડી સલાચારીથી ચાલવું હોય, વિવેકી બની વિનયતાથી વર્તી વિદ્ય અભ્યાસ કરવો હોય, સર્વ ગુણ સંપન્ન સહીત અબર મેળવવી હોય, અરે, દુનિયાની ગમે તેવી દુઃખદાયક સંપત્તિ મેળવવા ચાહતો હો, તો તમારા એજ માતાપિતાનો આશિર્વાદ ફક્ત બસ છે !!

મનોચલ.

“મન વગરનું મહાલવું” એ એક જીવની કહેવત છે અથવા મનોબળ એજ માર્ગ બળ, એ દરેક મનુષ્યે પોતાનું મહાવાક્ય છે એમ માનવું જોઈએ. મનોબળ રાખનાના કહે છે કે જે પોચા મનન અને કાયર સ્વભાવના મનુષ્યો છે તેનાં જીવતરને ધિક્કાર છે; ચુરત મન અને દૃઢ નિશ્ચય સમાન બીજું સુખ મેળવવાનું સંધન એકે નથી કદાપિ કોઈ મનુષ્ય મનોબળથી લંગ થઈ, તેની મહેનત અદ્વિગ ગઈ, તો પણ તેનું ચાલે તેટલું કરી શક્યો હશે, તો તે વિચારથી તેના મનને સંતોષ મળશે. કોઈ ઘણોજ ગરીબ માણસ દુઃખના દરિયાતળે આવેલો

દુઃખની સામા કમ્બર કસીને ધીરજ રૂપી હથિયારથી રણ જંગ મચાવતો હોય, વળી અલ્પ મહેનતે કરી તેના પગ લોહી લુહાણ થઈ ગયા હોય અથવા અનેક આપત્તિમાંથી પસાર થવું પડે તથાપિ હિંમતે મરદાં, તો મદદે ખુદા એ વાક્યને અનુસરી આગળ વધશે તો તે માણસ પોતાનું કારણું કામ અવશ્ય કરી પાર પાડશે અને દુઃખના દરિયા તળેથી નીકળી સુખના મહાન સાગર ઉપર આવી તરશે ! માટે દરેક મનુષ્યે પોતાનાં ઉપર જે દુઃખ આવે તેમાં કાયર થઈ બેસી ન રહેતાં મનોબળ મન મજબુત રાખી પ્રયત્નશીલ બનવું જોઈએ. જે માણસ પોતાના કામમાં નાહિંમત થયો હોય અથવા ધુમાડાના ગોટા જેવા ખોટા બાના બનાવીને પોતાના કામને ટકાવી શક્યો નહિં તો તે માણસને કાયર જાણવો, તે છેવટે નિષ્ફલ થયા વિના રહેશે નહીં. કોઈ કામ કરતાં પહેલાં મન સાથે દ્રઢ નિશ્ચય કરવો કે આપણે એને પારજ ઉતારીશું અને તેમાં ઉત્સાહ, ઉમંગ અને મન દ્રઢ રાખી મંડ્યા રહેવું, એટલે અવશ્ય તે કામ તમે પાર પાડશો.

કેળવણી.

કેળવણીનો ફેલાવો કરવાની શુભ હીલચાલ દરેક જ્ઞાનિકે દેશમાં પરિપૂર્ણ ઉત્પન્ન થશે અને પોતાના બાળકોને કેળવણી આપવાનું, પોતાના દેશની કીર્તિને સાચવનાર અને પોતાના બાપીકા ધુમ પ્રત્યે પ્રેમ અને મનની લાગણી ઉત્પન્ન કરનાર શિક્ષણ આપવાનું કાર્ય જ્યારે ઉપાડી લેવાશે ત્યારે તમે જરૂર જોશો કે હવે ધર્મનો, જ્ઞાતિનો અને દેશનો ઉદય થતાં ઝાઝી વાર નથી. જે આપણે આપણા બીજા સંસારી અગડાઓ અને નિર્માલ્ય વિચારો સાથે જીવિયાતિમાન

છોડી દુઃખ કેળવણી અવશ્ય ગ્રહણ કરીએ તો આપણી જ્ઞાતિને, આપણા દેશને અને આપણા આપીકા ધર્મને સંગીન ફાયદો કરી શકીએ એ નિઃશંક છે. આપણે સંસારી ઝગડાઓ-કલેશોમાં ઘણું ગુમાવ્યું છે સત્વર એને તજ દો અને જો તમે તમારી જ્ઞાતિનું ભયું ધૃત્યતા હો તો તેવી ઉન્નતિ માટેની લાગણી તમારે હૈયે રાખતા ફરો. તમારા બાળકોને તથા ગરીબ સાધન વગરના ચંચલ છોકરાઓને ઉત્તેજન આપી કેળવણીમાં આગળ પાડો તે શિવાય દેશનું કે જ્ઞાતિનું શ્રેય વા ઉન્નતિ નથી. આજકાલ હરીફાર્ધ વધી પડી છે. દરેક દેશો અને કામો આગળ વધવાના પ્રયાસ કરે છે તે જુઓ અને હાલના સંજોગો તથા વાતાવરણ તરફ ધ્યાન આપી તમારી કામને-જ્ઞાતિને જાળવવાનીમાં લાવવાનાં પ્રયત્નો આદરો. કેળવણી કૃત્યમાં મદદ કરવી એ દરેક સાચા દેશાભિમાની તથા જ્ઞાતિ હિતકારી બંધુ તથા બહેનોનું ખાસ કર્તવ્ય છે. કેળવણી મેળવ્યા સિવાય સુખદ સંસાર, જ્ઞાતિ કે દેશનો ઉદય થવનો નથી. બંધુઓ! બાળકો તથા બાળાઓને કેળવણી આપો અને તે કેળવણી એવા પ્રકારની આપો કે જેથી બાળાઓ ખાસ ગૃહિણી નીવડી પોતાનું જાતિ અભિમાન ધરે અને આપણા બાળકો ભવિષ્યને માટે સુસ્ત દેશાભિમાની અને ખાસ કરીને જ્ઞાતિ શુભેચ્છકા તરીકે બહાર પડે.

પરોપકાર.

પરોપકાર એ મનુષ્ય માત્રનું અત્યુત્તમ આભુપણ છે. આ અસ્થીર સંસારમાં જન્મ લઈને પ્રાણી માત્ર પોતાને માટે તો અનેક પ્રકારનાં પ્રયાસો આદરે છે અને પોતાનું ગુજરાન સુખે દુખે ચલાવે છે તેમજ પોતાની વિપત્તિ ટાળવા પ્રયત્ન પણ કરે છે, પરંતુ અન્યને માટે પ્રયાસ કરનાર કોઈ વિર-

લાજ હોય છે. જેઓને પોતાની આજીવીકા પુરતીજ માત્ર આવક છે તેમજ પોતાની આપત્તિ દૂર કરવાને પણ અન્યની મદદની જરૂર છે, તેઓ તે પરોપકાર શી રીતે કરી શકે? પરંતુ અલંત દ્રવ્ય સંપત્તિ છે, અનેક જીવોની આપત્તિ દૂર કરવાની શક્તિ છે તે છતાં પણ સ્વધર્મીઓને, સ્વજ્ઞાતિવાળાઓ સ્વકુટુંબીને તેમજ પોતાના મિત્રવર્ગને આજીવીકાથી દુઃખી થતા જોઈને પણ દીલમાં દયા નથી આવતી અને જેઓ તેને ધટીત રીતથી મદદ નથી આપતા તેમનું દ્રવ્ય નકામું છે તેમજ તેમની જાંદગી પણ નિર્થક છે, કેમકે પોતાના પ્રાણને જાળવવાને તો પશુ પક્ષીઓ તેમજ તે કરતાં પણ તુચ્છ જંતુઓ પ્રયત્ન કરે છે, તો તેનામાં અને એવા પરોપકારવિમુખ જનોમાં તકાવત શું છે? કંઈજ નથી. ખરી રીતે તો એવા જનોએ નિરંતર પોતાની શક્તિ અને સંપત્તિના પ્રમાણમાં પરોપકાર કૃત્યને વિષે તત્પર રહેવું જોઈએ. દરેક મનુષ્યે પરોપકાર કરવાની જરૂર છે તેમાં તો આશ્ચર્ય જેવું કંઈજ નથી કેમકે કેટલાક જડ પદાર્થો પણ નિરંતર પરોપકાર કરનારા હોય છે. ચિંતામણીરત્ન મનુષ્યના મનવાંચ્છીતને પૂરે છે, વૃક્ષ છાયા આપે છે, ચંદન સુગંધ આપે છે, પારસમણી લોહને કાંચન બનાવી આપે છે, આ પ્રમાણે જડ પદાર્થોમાં પણ અનેક પ્રકારની શક્તિઓ ભરેલી છે. અને તેનો ઉપયોગ પરોપકારના કાર્યમાં સમાય છે. કહ્યું છે કે:-પરોપકારાય સતાં વિમૂતયઃ “સુજનોની સંપત્તિ પરોપકારને અર્થેજ છે.”

તથાસ્તુ !

સરૈયા-સુરત.



जैन लोकांचे ॥

॥ सांप्रतचे कर्तव्य.

(लेखक-एम्, एम्, खंडारे-अंजनगांव.)

सांप्रत काळी जैन समाजांतील निरनिराळ्या संस्थाकडेस बारकाईने निरसून पाहिल्यास असे दिसून येईल की जैन समाजांतील अनेक उपयुक्त संस्था आज आपापसांतील पुढारी वर्गाच्या खाजगी द्वेषामुळे शोचनीय स्थितीत निद्रासौख्य अनुभवित असलेल्या दृष्टीगोचर होत आहेत. ज्या संस्थानी जैनहितसाधनार्थ आपला जन्म घेतलेला आहे, समाज कल्याणार्थच देह शिजविणे हे ज्यांचे ब्रिद आहे-व जैनोन्नती हेंच ज्यांचे ध्येय ठरलेले आहे. त्या आमच्या समाजांतील उपयुक्त संस्थांची कोण दुरावस्था झाली आहे बरे; कोठें बोर्डिंगात पुढार्या पुढार्यांचा निष्कारण द्वेष वाढलेला आहे, तर कोठें-पाठशाला, विद्यालय, सभा आदि संस्थात आपण काहींही कृती न करितां केवळ पुढे असावे असे इच्छीणारेही कित्येक आहे-- कोठे उत्साही पुढारी काम करीत आहेत तर त्यांना त्यांच्या इच्छीत कार्यार्थ द्रव्याचा तुटवडा भासत आहे-सारांश तिर्थक्षेत्र, मंदिरे, पाठशाळा, बोर्डिंग, मोठमोठया सभा, वाचनलाये, मासिक, वृत्तपत्रें, शास्त्रसभा, वनिताश्रमे, इत्यादि अनेक उपयुक्त संस्था मध्ये देखील-संस्थाचालकांचा एकमेका विषयी खाजगी मत्सर वाढलेला दिसून येतो-वास्तविक संस्थाचालकांचा हेतु एकम-पण त्यातील कित्येकांना विनाश्रम काहीं ही समाजहिताची कामें हातांनी न करितां

आम्हांस लोकांनी पुढारी म्हणावे म्हणून फार हौसी आणि या हौसी मुळेच काम करणाऱ्या व्यक्तींचा द्वेष करून त्यांचें नांव बदनाम करण्यास हे “ विचमे मेरा चांदभाई ” करणारें फुकटे पुढारी फार वस्ताद्, त्या मुळे आज झाले आहे काय; तर जिकडे तिकडे निरुत्साह आणि उदासीनता देवीचे साम्राज्य पसरलेले दिसून येतें-तेव्हां मत् प्रिय बंधुवो ! सांप्रतची ही स्थिती तुम्हांस इष्ट वाटतेकां; सांप्रतचा काल फुकट वलगना करण्याचा नाही तर जैनोन्नतिकारक कार्ये करण्याचा आहे-

लोकांनी आपल्यासच पुढारी म्हणावें असी निष्कारण मोठी हांव एव्हाशीच न धरितां निमूटपणे जैन समाजाच्या हितार्थ झटा, म्हणजे तुम्हांस समाज आपले पुढारी म्हणावयास लागेल. पण कृती काहीं ही न करितां पुढारी म्हणा म्हणून म्हणविण्याची व्यर्थ हांव धरणे केवळ हास्यास्पद नाही काय? आज जैन समाजाच्या भाग्योदयाकरितां जितक्या उपयुक्त संस्था उत्पन्न होतील तितक्या आम्हांस हव्याच आहेत, पण संस्था काढून त्यांत कार्याऐवजी दुफळी माजविणे मुळीच ईष्ट नाही. आज आपल्या दयाळू ब्रिटीश सरकारांच्या कृपा-प्रसादामुळे प्रत्येक समाजाला आपापल्या धार्मिक संस्था चालविण्यास पूर्ण शांतता सौख्य मिळालेले आहे-हे आपले भाग्यच समझले पाहिजे. अश्या प्रसूततेच्या काळी जैन समाजानेहि राजनिष्ठापूर्वक धार्मिकउन्नती करून घेणे अत्यंत इष्ट आहे-अहिंसा धर्माचा प्रचार चोहीकडे होण्यास धार्मिक संस्था ठिक ठिकाणी स्थापन झाल्या पाहिजेत. संस्था स्थापन व्हाव्यात, पण तींत एकमेका विषयी हेवाहा असु नये. जैनांच्या उन्नती करितां झटणारे

मनुष्य कोणीही असो—त्याला त्याच्या कार्यार्थ बोध्य तो मान देणे अवश्य आहे—पुढारी वर्गांनीही आपापल्या संस्थांच्या उन्नती करितां परस्परांशां निर्मत्सरपणे ममतेने; ऐक्यभावाने, आणि सहनशिलतापूर्वक वागले पाहिजे म्हणजे मग स्यांच्या संस्थेत निरुत्साह कधीही वास करणार नाही. काढलेली संस्था लहान असो अथवा मोठी असो, ती बंद न पडू देतां करारीपणानें चालविली पाहिजे. करारीपणा हा मनुष्यांत अवश्य हवा. समाज हितार्थ कार्या करितां कोणी कितीही निंदा केली तरी त्या बद्दल मनुष्यांनीं विषाद न मानितां आपले कार्य निश्चयपूर्वक चालविले पाहिजे—समाजोपयोगी कार्ये सुरळीतपणें चालण्यास खाजगी द्वेष सोडून एकमेकांचा आदरसत्कार करणें, त्यांना योग्य तो मान देणें—एक मताने कोणतेही कार्य करणे, अनुचित रुढी रिवाज समाजाच्या शिरी लादण्याची हौस न धरणे, कोणाची निष्कारण निंदा न करणे—लोकमता विरुद्ध न वागणे हे धुरीणांचेही कर्तव्य होय. आज जैन समाजातील तीन्ही शाखेतील पुढारी वर्गांत एकमेकां विषयी फार गैरसमजूती उत्पन्न झालेल्या दिसून येतात. एकमेकांची निंदा करणे जणू काय व्यवसायच ठरल्या सारखा दिसतो. अगणित द्रव्य परस्परांच्या भांडण तट्यात खर्ची पडत आहे—ही कितीबरे दुर्दैवाची गोष्ट होय ?

त्या एकाच अहिंसा धर्माची कांस धरणाऱ्या तिन्ही अनुयायांत इतकी शोचनीय स्थिती, तेथे जैन समाजाची उन्नती व्हावी कशी, हा एक फारच महत्वाचा विकट प्रश्न आहे, पण हा विकट प्रश्नही आपल्या उदार दातृत्व स्व-

भावानें सोडविणारे स्वर्गवासी दानवीर शेट माणिकचंद हिराचंद जे. पी. सारखे धोरणी पुढारी जर आज ह्यांत असते तर तोही विकट प्रश्न सहजा सहजी सुटून तिन्ही शाखेतील अनुयायी खांध्यास खादा भिडवून जैन हितार्थ झटून राहिल्याचा देखावा दृष्टीस पडला असता. पण आता त्याचे काय? विधीसुजाधिन जी गोष्ट ती होऊन गेली. आपणा सर्वाला टाकून दानवीर सुकृत पुण्याचा उपभोग घेण्या स्वर्गांत निघून गेलेत, तरी त्यांनीं आपणा करितां दाखवून दिलेला मार्ग—त्यांनी थोडक्या अवधीत जैनांचे केलेले अद्भुत स्थित्यंतर आ आपल्या डोळ्या समोर आहे. जैनांच्या उन्नती करितां तिन्ही शाखेतील बंधुवर्गानी एकमेकांचा द्वेष करणे सोडून ऐक्यभाव जागृत ठेविला पाहिजे—परस्परांशी प्रेमानें वागणे, अहिंसा धर्माचा प्रसार करणें, जैनोन्नतीच्या कार्यास हातभार लावणे, मुलाबाळांना विद्याभूत पान करण्या करितां निरानराळ्या संस्था स्थापणें, परस्परांना साह्य करणें, कोणाची निंदा न करणे, जैनेतरांना अहिंसा धर्माची माहिती देऊन जैन बनविणे. हेच सांप्रत जैनांचे मुख्य कर्तव्य होय.

हारमोनियम शिक्षकां दोन्ही भागां-बिना उस्तादके बाजा सिखाने बाला टीचर।

इस पुस्तकमें कई प्रकारकी गज़ल, कन्वारी भजन, दादरा, और बहुतसा सरगम आा हारमोनियमसे बजानेकी सुगम रीति बतला गई है। इतना होनेपरभी पुस्तकका मूल्य केव 1-) रक्खा है डाक खर्च 2-) ऐसी पुस्तक इतने मूल्यपर दूसरी जगह मिलना मुश्किल है गुप्त मोहनी भंडार मुफ्त मंगाकर देखौ।

पता—बाबू जसवन्तसिंह बुकसेलर,
अलमिद यू. पी.

BOTH MEN AND MONEY NEEDED FOR THE

Good News] ESTABLISHMENT [Help One And All

OF

THE CENTRAL JAIN COLLEGE.

APPEAL FOR FUNDS.

THE CRY OF THE JAINA=WORLD.

Victory to Jainism !!

Peace to All!!

Let all the thine Community unite together in raising this temple
of the Goddess of Learning.

दी सेन्द्रल जैन कॉलेज के स्थापनार्थ अर्पित ।

જીવનચરિત્રોની મહત્વતા.

(લેખક:-વાડીલાલ મૂળજીભાઈ સંઘવી-લી'અ.ડી.)

Lives of great men all remind us
we can make our life sublime.
And departing, leave behind us
foot-prints on the sands of time.
(Longfellow.)



વહાલા વીરતનુજો! આ નુતન વર્ષના પ્રથમ દિવસે સખરસ! પ્રેમમય સખરસ!! સખરસ!!! આજનો માંગલ્ય દિવસ કેવો આનંદ આપે છે !!

જગતમાં જે પ્રાતઃસ્મરણીય ઉપકારી પુરૂષો થઈ ગયા છે, તેના ઉપકારો વિસ્મરણ ન થાય, તે માટે કૃતઃ ઘોડો શક-સંવત ગણવા લાગ્યા છે. આવી રીતે જુદા જુદા દેશોમાં જુદા જુદા પુરૂષોનો શક ચાલે છે. આપણા દેશમાં પરોપકારી રાજા વિક્રમ અને શાલીવાહનનો શક ઇત્યાદિ શકો ગણાય છે.

આપણે આપણા વિશ્વવંદ જગદુદ્ધારક-પ્રાતઃસ્મરણીય પરમાત્મા મહાવીર, જેના તત્વો જગતને એટલા બધા ઉપકાર કરનાર છે કે જે તે તત્વો તેના સત્ય સ્વરૂપમાં જગતમાં પ્રસરાય, જગતમાં અશાંતિ-કલહ-કુસંપ-મારામારી-દુષ્ટિ-હિંસા-ચોરી-વ્યભિચાર ઇત્યાદિ ઓછા થઈ જાય, સર્વ બ્રાતૃભાવ અને પ્રેમની શૃંગ્લલાથી જેડાઈ જાય. આ શિરસાવંદ પરમાત્મા મહાવીરને વીસરાઈ ન જવાય તે માટે આપણે વીરસંવત ગણવા લાગ્યા છીએ અને આ “ દિગંધર જૈન ” પણ વીરસંવતના અધિક પ્રચારાર્થે ગંભીર અર્ચે ખાસ અંક પ્રગટ કરે છે,

જેમાં નૂતન વર્ષનો આ મોટો પોથો આનંદમાં ઉમેરો કરે છે. આ મોટા પોથામાં વિદ્વાનો અને જાણીતા પુરૂષોના વિદ્વતા ભરેલા લેખોના સંગ્રહ સાથે જૈન કોમના જાણીતા પુરૂષોની ઓળખાણ કરાવવા ફોટાઓ પ્રગટ કરે છે, જેથી કર્તવ્યપરાયણી પુરૂષોના ફોટાઓ જોઈ આપણું કર્તવ્ય યાદ કરાવે છે.

આહા! નૂતન વર્ષે કેટલો આનંદ!! આવો આનંદ વર્ષ પર્યન્ત રહે તો કેવું સારું!!! કેમ, આવો આનંદ જોઈએ છીએ? આવા આનંદમાં તલ્લીન રહેવાની ઇચ્છા થાય છે? જો આવા આનંદમાં રહેવાનો અડગ નિશ્ચય કરી બેસા હો તો નિરાશ થશો મા હો! તે આશા પુરી કરવાનો-અમર કરવાનો મારી પાસે એક ઉપાય છે-એક જડી છુટ્ટી છે.

આ જડી છુટ્ટી લાયકાત મેળવ્યા પહેલાં નહિ મળી શકે. મારી પાસેથી લુટી જશો, તોપણ તે તમારી પાસે નહિજ રહે અને તે મેળવવા માટે આજનો વિષય લખવા પ્રારંભ કર્યો છે, તે ઠાણપૂર્વક વાંચો-વિચારો-મનન કરો. આ વિષયમાં ધણુંજ પરોક્ષ રહસ્ય સમાયલું છે. લ્યો, સાંભળો ધ્યાન પૂર્વક સાંભળજો હો! હું પુનઃ પુછીશ.

શિરસાવંદ મહાત્માઓના ચરિત્રો જગતને એક અમુલ્ય અને અમર વારસા સમાન છે. તેમના ચરિત્રમાં એક પ્રકારનું દૈવી વશીકરણ હોય છે તેમના ચરિત્રથી અનેક વ્યક્તિ ઉન્નત થઈ સમગ્ર પ્રજા ઉન્નત દશામાં આવી છે.

અખિલ વિશ્વના ધર્મ અને નીતિ મહાપુરૂષના ચરિત્રથીજ ધડાય છે. સકળ સમાજોમાં અસ્ખલિત વ્યવહાર પણ તેમના ચરિત્રથીજ ચાલ્યો જાય છે. તેમની સર્વોત્કૃષ્ટ અને અદ્ભુત શક્તિની અસર આખા સમાજ પર થાય છે. તે મનુષ્યના મન અને આત્માને શુદ્ધ કરી નાંખે છે.

મનુષ્યજાત માત્ર તેમના અલૌકિક સદ્ગુણોનું અનુકરણ કરવા તત્પર થઈ જાય છે અને પ્રભુપદ પ્રાપ્ત કરવાને પ્રયત્ન કરે છે. આવી પરિસ્થિતિમાં માનવ, દેવ સમાન થઈ જાય છે.

મનુષ્ય એ નકલ કરનાર પ્રાણી છે, જેવું તેના જોવામાં-જાણવામાં આવે છે તેમાંથી તે પ્રહણુ કરી શકે છે. અસદ્ પ્રકારની કૃતિ તેના સમક્ષ ખેડી કરવામાં આવે છે તે તે કુવિચારી-કુમાર્ગગામી બને છે, જ્યારે સદ્કૃતિનું દર્શન કરનાર સદ્વિચારી તથા સદાચારી બને છે. એકનું દેખીને બીજો કરે છે એ જાણુ કુદરતી કાર્યદો ન હોય ? તેમ મનુષ્ય નકલ કરવામાં સ્વભાવથી નિર્માણુ થયેલ હોવાથી જીવનચરિત્રો ઉપરથી તે માટે ધણું મેળવી શકે છે. જીવનચરિત્રમાં ધારણુ કરેલી ધીરજ, સહન કરેલી સહનશીલતા, ખંત, વેઠેલાં સંકટો, સુખ દુઃખમાં સમાનતા, સમયોચિત આહોશી તથા અનન્ય વર્તન વિગેરે સદ્ગુણોની છાપ વાંચનારના હૃદય ઉપર એવી તો સજ્જડ પડે છે કે તેને ઉખેડવા કોઈ સમર્થ જણાતું નથી. આવા વાંચનોથી મનની મોટાઈ, આત્માની ઉન્નતિ સ્થિતિ, મનુષ્યને પ્રાણી માત્રમાં દરજ્જો કેવો છે તે તથા મનુષ્યજીવન શા ઉદ્દેશને માટે છે એ વિગેરે જાણવાની જોગવાઈ મળતાં, 'હું પણ એવો થાઉં તો ઠીક' એવી સ્વાભાવિક પ્રબળ ઇચ્છા વાંચતા મનમાં ઉત્પન્ન થાય છે. મનુષ્યને સદ્ગુણ પ્રભાવ, પવિત્રતા માટે સ્વાભાવિક આકર્ષણ થાય છે. હમેશાં ગુણનીજ પુજા થાય છે. અપૂર્વ ગુણો જે ધરાવતા હોય તેજ મનુષ્ય પુન્યપણુને લાયક થઈ શકે છે. આખા દિવસની જેની પ્રવૃત્તિ અન્યના કાર્ય માટે લાગી રહેલી હોય, પોતાનું શું થશે તેવી જેને જરા પણ દરકાર ન હોય, જેઓ પરસેવા, ભુતદયા-પ્રભુપરાયણતામાં જીવન વ્યતિત કરતા હોય, જેઓ ધર્મને માટે, અનેક પીડિતોને માટે નિઃસ્વાર્થપણે જીવન વ્યતિત કરતા હોય, જનસમાજને

રાજકીય-ધાર્મિક-આત્મિક કે નૈતિક ઉન્નતિની ટોચે લઈ જવા શ્રમ કરતા હોય તેવા પુરૂષો, અરે ! નરવરોના જીવનમાંથી ફેટલા નવીન પ્રકાશ મળે છે અને આપણા આત્માને વિકસાવે છે ? પોતાને ગમે તેવું કષ્ટ સહન કરવું પડે તોપણુ અન્યને કાર્ય સિદ્ધી થાય તેજ વિચારશ્રેણીને અવલંબીને હંમેશાની પ્રવૃત્તિ કરનાર મહાત્માઓના જીવન ચરિત્ર ખરેખર વાંચનાર, સાંભળનાર બંનેને લાભદાયી નીવડે છે. મનની વિશાળતા સંપાદન કરવી હોય, મનની ઉન્નતિ કરવી હોય-પ્રગતિ સાધવી હોય તો બંધુઓની સેવા, અરે ! જગતના પ્રાણીઓની સેવા કરવાની તત્પરતા તેજ ખરેખર સાધન છે. એક વિદ્વાન બંધુ કહે છે કે—

“સવારથી સાંજ સુધી સ્વાર્થમાં મન્યા રહી, પરાયે જરા પણ ભોગ નહિ આપનાર કદાચ કેટલાધિપતિની ગણતરીમાં મુકાય તોપણુ શું ?

જેનું ધન, જેની શારીરિક અને માનસિક સંપત્તિ સ્વઉદરપોષણુર્થેજ ઉપયોગમાં આવે છે અને અન્યને જે કશા ખપમાં નથી આવતી, તેવાને પૌહલિક શારીરિક કે માનસિક સંપત્તિ કદાચ મળી હોય, તોપણુ તે ન મળ્યા તુલ્યજ સમજવાની છે. જનવર-અરજ પશુ પણ ઉદરપોષણુર્થે તો પ્રવૃત્તિ કરેજ છે ! પણ સૃષ્ટિમાં મરણુ પછી અમર નામ રખાવનાર પુરૂષોત્તમ છે. એવા પુરૂષોત્તમ જીવન જોણુવું કેટલું વધારે જરૂરનું છે ? એવા મહાનુભાવોને લગતું જે કાંઈ હોય તેમની આદ-તો, તેમની શીતલાત, તેમની મહત્તા તેમનો અંગત ધર્મિહાર તેમનાં નીતિવચન તેમની મહત્તા એ બધું જોધક, ઉ-તેજક અમર મનુષ્યવર્તનને ઉચ્ચ મહાન અને આ પુરૂષોત્તમ જે અસરી કરી છે, તેનું તેટલું થોડું છે.

મહાન કવિ શેક્સપીયર કહે છે કે:-
For my own part I shall be
glad to learn of noble men
અર્થાત—હું મારા પોતાના ભાગ સાથે
તો મહાત્માઓના જીવનચરિત્રો શીખવાને
ખુશી થઈશ

માહાત્મા પુરૂષોત્તમ ચરિત્રો એ હજારો
ભાષણો, અનેક સદુપદેશો અને લાખો શીખા-
મણી કથાઓ કરતાં પણ મનુષ્ય જીવનને
ઉન્નત બનાવવાને પ્રબળ સાધનરૂપ છે, એમ
માનવું તેમાં કંઈ પણ અતિશયોક્તિ નથી.
મનુષ્ય મરી જાય છે અને અદ્રશ્ય થાય છે,
પરંતુ તેના વિચારો અને કાર્યો પાછળ
હયાત રહે છે અને પોતાની જાતિ ઉપર કદી
ન જીસાય એવી છાપ પડી જાય છે, અને
આ પ્રમાણે તેમના જીવનના ચૈતન્યની કળા
વિસ્તાર પામે છે અને ચિરસ્થાયી થાય છે,
વિચાર અને સંકલ્પ શક્તિને તે યોગ્યરૂપ
આપે છે અને તે વડે ભવિષ્યના સ્વરૂપને
ધડવામાંજ સહાયભૂત થઈ પડે છે. માનુષિક
ઉન્નતિના ખરા માર્ગદર્શક મનુષ્યો તેઓજ
હોય છે કે જેઓ પોતે ઉત્તમ અને ઉચ્ચમાં
ઉચ્ચ દિશામાં આગળ વધે છે. તેઓ પોતાની
આસપાસના નૈતિક વાતાવરણને પ્રકાશિત
કરનારી ટેકરી ઉપર મુકેલા દીપકો સમાન
છે અને તેમના ચૈતન્યનો પ્રકાશ ભવિષ્યના
સમગ્ર જમાનાઓ ઉપર પડતો રહે છે,
તેમનું મહાન દૃષ્ટાંત તેમની જાતિનો સર્વ-
સામાન્ય વારસો થઈ પડે છે અને તેમના

અને મહાન વિચારો મનુષ્ય
સર્વોત્કૃષ્ટ પુણ્ય થાય છે.
જી આયનાની માફક
મનુષ્યમાં રહેલા
પ્રદર્શિત કરવામાં તેને
છે.

પ્રેમો, ખાન-પાન અને વિષય
તદ્દલીન રહેનારા પુરૂષોના લખાતા
જીવનચરિત્રોએ આથી અધિક પોતાના આત્મા-

ને વિકાસ કરવા કે પોતાના બંધુઓની-જાતિની
કિંવા દેશની સેવા બજાવવા કે પરને માટે જીવન
ગાળ્યું હોય તેવાનાજ જીવનચરિત્રો લખાય
છે. જેના ચરિત્રમાંથી અનેક બોધદાયક
દૃષ્ટાંત મળી શકે, જેના ચરિત્રમાં દેખાતા
પ્રત્યેક કાર્ય અન્ય જીવના હિતાર્થેજ યોજાયેલા
હોય, એક કીડી જેવા પ્રાણીને પણ ધર્મ ન
થાય-હરકત થાય એવું વર્તનતો જેના ચરિત્રમાં
દેખાતુંજ ન હોય, જેના ચરિત્રમાં પ્રણીત
કષ્ટ આવે, તોપણ પરના કાર્ય માટેજ સતત
પ્રવૃત્તિ દેખાતી હોય, તેવા મહાત્માના ચરિત્રો
અનુકરણ કરવા યોગ્ય છે. તેમની જીવનકથા
ખાસ શ્રવણીય-મનનીય હોવા ઉપરાંત પુણ્ય
ભાવ પ્રગટાવે તેવી માલુમ પડે છે.

જે દેશમાં આવા મહાન પુરૂષોના કીર્તનો
થતા નથી, જે દેશમાં આળોકના કુમળા મગજમાં
આ પ્રભાવશાળી પુરૂષોની જીવનરેખા દોરાતી
નથી, તે દેશ ઉન્નતિને માર્ગે શી રીતે જાય?
મહાત્માના જીવનનો અભ્યાસ કરીએ મહાત્માના
જીવન દૃષ્ટાંતો લઈ જનસમાજ આગળ મુકી
આળોકો, સ્ત્રીઓ કિંવા પુરૂષોમાં એ મહાત્મા
માટે પુણ્યભાવ થાય, એમના હૃદય વધારે
કામળ બને, વધારે પવિત્ર બને, વધારે સંસ્કારી
થાય, એ મહાત્માના પગલે ચાલવાની ઇચ્છા
થાય એ માટે એવા મહાનુભાવોના ચરિત્રો
જનસમાજ આગળ મુકવાની ધણી જરૂર જે.

કહો, મહાન પુરૂષ થઈ પૃથ્વીતળ-
પર અમર નામ મુકી જવું એ ઓછો
આનંદ છે? અરે જીવનનો ખરો આનંદ
અને રહસ્ય એજ છે. જે સત્ય આનંદ સંપાદન
કરવો હોયતો, જે પન્થે સ્વર્ગીય દાનવીર
શેઠ માણેકચંદ્રજી આદિ મહાન પુરૂષો ગયા
છે તેજ પન્થે આપણે વહન કરવું
જોઈએ. આવી રીતે સન્માર્ગે વળી સર્વે સત્ય
આનંદ મેળવે અને સર્વને આ નૂતન વર્ષ
આનંદદાયક નીવડે, એવી હૃદયની શુભેચ્છા સાથે
અત્ર વીરમીશ. સુરેષુ કિંબહુના!

❀ कीर्ति माटे करोडनुं फाणी. ❀

| | | |
|--|----------------------------|----|
| (राग-पैसा पैसा पैसा तारी | प्रीत जगतमां आजीरे) | |
| कीर्ति कीर्ति कीर्ति सैने, | नांभ्या ते तो हाणीरे, | |
| कीर्ति मां सै पैसा भरयी, | घरना थध गया आजीरे,—टेक. | |
| कीर्ति माटे नानी वयमां, | आणकने परणुवेरे; | |
| दोस नगरां कीर्ति माटे, | लुजोणो वगडावेरे—कीर्ति | १ |
| कीर्ति माटे वरघोडामां, | दारभातुं झेडेरे; | |
| वाळं गाळं वगाडावी-सै, | माळदे छे वरघोडेरे—कीर्ति | २ |
| जान तेडावी कीर्ति माटे, | जुज्यो हांठ भयावेरे; | |
| कीर्तिनी लुणी छे दुनिया, | वेश्या नाय नयावेरे.—कीर्ति | ३ |
| कीर्ति सैने सारी व्हाली, | तरगाणा रमाडेरे; | |
| कीर्ति वधवाना दोबे सै, | पीर लाट जमाडेरे,—कीर्ति | ४ |
| कव्ही कंकणने कंझारा, | कीर्ति माटे कंठीरे; | |
| वेठ वांक पहेरी वरघोडे, | इरे छे उमंगीरे.—कीर्ति | ५ |
| कीर्ति माटे पैसा भरयी, | वरघोडे मलकतोरे; | |
| मृत्यु पाछण कीर्ति मटे, | जमाडे सै नयातोरे.—कीर्ति | ६ |
| कीर्ति माटे शेठ अनवा, | कंधक नाम लभावेरे, | |
| पेपरोमां कीर्ति माटे, | जुज्यो नाम छपावेरे.—कीर्ति | ७ |
| कीर्ति माटे तिर्थ यात्रा, | कीर्ति माटे सेवारे; | |
| कीर्ति माटे अवराने छे, | मीठा मीठा मेवारे—कीर्ति | ८ |
| सुकृत कामे जे वपराता, | यार आना नव आपरे; | |
| करेड भरयी शुशी थाज्ये, | कीर्तिना प्रतापेरे.—कीर्ति | ९ |
| कीर्तिनी लाक्ष्यमां होडया, | कोर्ध नव जुवे पाछुंरे; | |
| कीर्तिनी पुंजरी दुनिया, | पुंज कहे छे सायुरे—कीर्ति | १० |
| (संधने सेवक—पुंजलास प्रेमचंद जैन, उपदेशक.) | | |

॥ भारतकी कुछ पूर्वदशा और चेतावनी ॥

ऐ भारत तेरी पूर्वदशा, तुझे याद है कि न याद है ॥टेका॥

यह थी भूमि पवित्र अपनी, थे भीम जैसे महाबली ।

थे अर्जुनसे कमानधारी, तुझे याद है कि न याद है ॥१॥

लक्ष्मण समान वीरत्वधारी, सीता समान शीलराज्ञी ।

थे राम जैसे शांतधारी, तुझे याद है कि न याद है ॥२॥

समन्तभद्र जैसे परोपकारी, निकलंक जैसे प्राणहारी ।

मानतुङ्ग जैसे आचार्य थे, तुझे याद है कि न याद है ॥३॥

श्री अकलंकने षट् मासमें, जीती थी तारावाद (शास्त्रार्थ)मे

मची थी धूम तब जैनकी, तुझे याद है कि न याद है ॥४॥

ऐ सत्धर्मी प्यारे आओ, सूते भारतको फिर तुम जगाओ ।

'श्याम' डंका पूर्वसा बजाओ, वोह याद है कि न याद है ॥५॥

श्यामसुंदरलाळ जैनी स्मार्फ-मेरठ ।

अलौकिक जीवन । अधेर जमाना ।

मोहमें आशक्त हो आलस्य करमें मत फंसो ।
कर्मको ऊंचा समझ कर्तव्य पथ पर तुम लसो ॥
शांतिदायक विश्वमें है एक वह उद्योग ही ।
मुक्तिका है द्वार भाई कर्मका संयोग ही ॥१॥

अकर्मन्य पुरुष कभी चिन्ता रहित होगा नहीं ।
स्वार्थ नरका हृदय शीतल कभी हो सकता नहीं ॥
जीवन तुम्हारा अल्प है करना हजारों काम हैं ।
काम जो करते नहीं उन्हें नहीं फिर नाम हैं ॥२॥

अतएव करना काम जिससे नाम होवे विश्वमें ।
जीव होवेगा सुखी पा शांतिता अमरत्वमें ॥
प्रतिदिन पराई हीनवस्थाको हटाया तुम करो ।
प्रिय वचन बोल अमोल सुखका स्वाद पान किया
करो ॥३॥

प्रेम पूरित नम्र भाषण सुधा ही के तुल्य है ।
एक ही नहीं श्रेष्ठ इससे यही रत्न अमूल्य है ॥
दया क्षमता प्रेम ममता स्वर्गके उद्धार हैं ।
स्वार्थ चोरी झूठ हिंसा नरकके सब द्वार हैं ॥४॥

ज्ञानरूपी सूर्यकी किरणे तमच्छेदन करें ।
सौख्य दर्शाती हुई सब प्राणियोंका दुःख हरे ॥
न्यून चंद्रसे तुम लोक आलोकित करो ।

दूषित प्राणियोंके हृदयको शीतल करो ॥५॥

जल रहा दुःखामि रूपी तापसे ।

ही रहे दारिद्रके सन्तापसे ॥

रहा रस पूर्व भवकी वेदना ।

इयोंकी बन्धुओ वह वेदना ॥६॥

अचंद सिंघई, हीराबाग, बम्बई ।

क्या बड़ा अधेर कलजुगने मचाया देख लो ।
जो न देखा था किसीने सो दिखाया देख लो ॥
आंख सबकी फोड़ कर अंधा बनाया देख लो ।
धर्म अपना बेच खाया हर किसीने देख लो ॥
बाल्यविवाह होने लगे बुढ़ोंकी सादी देख लो ।
लोभ कर बेचे पिता कन्याखराबी देख लो ॥
कैयक जगह अबला बड़ी भरतार छोटे देख लो ।
मूछोंकी नहीं है रेख घर संतान उनके देख लो ॥
मांस माता गायका बकरे कटाती सरवशर ।
उनको नचाकर व्याहमें धनका लुटाना देखलो ॥
अन्धे ओ लंगड़े कोडिया आवें अगर कुछ मांगने ।
देने लगे वो गालियां थप्पड़ उठाना देखलो ॥
धर्मका तो नाम लेते हि वो थररा जांयगे ।
पाप करनेमें जराभी वो नहीं शरमांयगे ॥

लड़नेमें है मजबुत दिल पैयाज उनका देखलो ।
मारने मरनेमें वो तैयार है तुम देखलो ॥
फूटको माता बना घरमें बसाया देखलो ।
सार इसमें है यही रोना मेरा तुम देखलो ॥
धिक्कार ऐसी बुद्धिको अबतो समझलो सोचलो ।
सी. एम. भारतका मजा कुछ रोजमें तुम देखलो ॥

सी. एम. पाटनी-इन्दौर।

धार्मिक कांग्रेस बन्द-इंग्लंडमें इस
साल जो धार्मिक कांग्रेस होनेवाली थी वह
युद्धके कारण अब न हो सकेगी ।

६० लाखका दान-निजाम हैदराबादने

युद्ध फंडमें ६० लाख रुपया देना स्वीकार किया है।

पहलेके जैनों ।

(सर्दू लेख-आयुर्वेदमार्तिड ज्योतिषरत्न पंडित
जैनी जीयालालाजी चौधरी-फरुखनगर)

क्या क्या थे जैन तुझमें हिन्दास्थान पहले ।
आँद्रे नहीं नजर क्यों वो विद्यावान पहले ॥
हुनियाँ में तेरा चमका अमली निशान पहले ।
थी संस्कृत मागधी जिनकी जुमान पहले ॥
रहता था काम जिनको दिन रात शासतरसे ।
वो अय फलक छिपाये तूने कहाँ नजरसे ॥१॥

तहज़ीब अरु तमद्दन जिनका सदा था येशा ।
सत था जो उनका खँडा तौ खुल्क उनका पेशा ॥
न्यौपार और खेती करते थे जो हमेशा ।
था इल्म फनका अपने हर ऐक शेर बेशा ॥
खातेथे धर्म हितका जो दिलमें तीर पहले ।
अय सर ज़मी कहाँ हैं वो भूरवीर पहले ॥२॥

हर इक अदाँमें उनके था बाँक पन हमेशा ।
आतीथी उनसे बूए हुब्वे धर्म हमेशा ॥
रखते थे गोवे अपना सादा चलन हमेशा ।
खुशबुसे थ मुअत्तर जिनसे चमन हमेशा ॥
अय गुलस्थान भारत तेरे कहाँ हैं वे गुल ।
शौदा थे मुल्क सारे जिनपर बरंग बुल्बुल ॥३॥

जिनके मिजाजमें थी हरदम वफाशआरी ।
करते थे धर्मकी जो हर वक्त यास दारी ॥
अपनोंसे-थी मुहब्बत अगियारसे थी यासी ।
अफसोस अब कहाँ हैं पहलेसे ब्रह्मचारी ॥
वैसे कहाँ हैं साधू रेवा नदी किनारे ।
कर घोर तप यहाँसे शिवपुरको जो सिधारे ॥४॥

क्षत्री कहाँ और उनके वे खानदान पहले ।
पढते थे विप्र विद्या आतम पुराण पहले ॥
तलवार लेके रणमें चलते जवान पहले ।
खाना कमाना पीछे विद्यका ध्यान पहले ॥

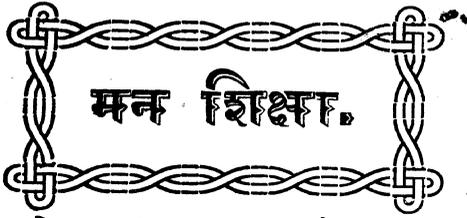
देते नहीं दिखाई अब तो निशान पहले ।
हुब्बुल वतनके ख्वाही थे पास बान पहले ॥५॥
देते नहीं दिखाई वो कारोवार पहले ।
बनियेँ किशान छीपे खाती सुनार पहले ।
कारीगरी दिलेरीमें होशियार पहले ॥
दरजी बढी ठठेरे धोबी लुहार पहले ।
अब एक भी नहीं है जो थे हजार पहले ॥
पैदल फिरैँ भटकते जो थे सवार पहले ॥६॥

अय बाग हिन्द क्यों तू उजडा बतादे हमको ।
पहले से वे हितैषी अब तो दिखादे हमको ॥
बद बख्त अपनी बीती कुछ तो सुनादे हमको ।
गायब हैं क्यों नजरसे इसका पतादे हमको ॥
इतिहास देखनेसे क्या हो सरूर उनके ।
जब तक नजरसे देखे जावैँ न नूर उनके ॥७॥

इक दानवीर चमका दिनकर धर्मका प्यारा ।
था नाम उसका माणिकचन्द उस्से शील हारा ॥
जिसने दिगम्बरोंका रोशन किया सितारा ।
उसकोभी तूने जलदी हमसे किया है न्यारा ॥
मरते समयभी वहतो क्या काम कर गया है ।
देढाई लाख मुद्रा बस नाम कर गया है ॥८॥

परमेश्रि पधारे धन्नू धनी सिधारे ।
किस किसका गम करैँ हम रोरुके सबको हारे ॥
चम्पत भी हुए चम्पत हत भाग हैं हमारे ।
अब आलगी है किस्ती अपनी भी जल किनारे ॥
इक रोज अहवी बोलो हमभी चल बसैँगे ।
रोवेंगे गर हज़ारों लाखौँ हमें हँवेंगे ॥९॥

मरकिजसे गिर गया है भारत बहुतसा तू अब ।
भारतके वासियोंमें फैली हुई है बेढब ॥
तेरी भवँरसे किशती निकलेगी देखिये कब ।
जैनीकी यह दुआ है जिनराज देवसे अब ॥
भारतके जैनियोंके हँँ फिर दिमाग रोशन ।
विद्या विनय सखावतका हो चिराग रोशन ॥१०॥



मन शिक्षा.

हे मन ! तुं सदा सायुं भोक्ष, नहीं तो आ यर्मना टुकडा (खल)ने कापी नांभ डेमके असत्य भोक्षवा करतां न भोलवुं यातो युप रहेवुं उत्तम छे.

हे मन ! तुं हमेशां कर्मना कायदा प्रमात्रे सतोषथी वर्त, नहि तो कर्मथी भजेला साधनो भोष भेसीश !

हे मन ! तुं हमेशां शुभ भाषना भाव, नहि तो त्हाइं पोतानुं भुइं करी भेसीश !

हे मन ! हमेशां तुं आनंदमां रहे, नहि तो त्हाइं थोण (आत्मा)ने दुःख भोगवुं पडशे.

हे मन ! तुं उच्च कार्य करवाने (था, जेथी त्हाइं पोतानीज उन्नति थाइ

हे मन ! तुं दुष्ट विकारे त्हाइं त्हाइं अपनति थती अटके.

हे मन ! तुं हमेशां नेतर अने ताप, टाढ, अने वर्षादि उच्च पद्विमे पढोयजे.

हे मन ! तुं बीइ न शत्रुओने दक्षववा शुरवीर अ

हे मन ! अवित्र प्रेमने प्रवृत्त था, जेथी त्हाइं प्रत्ये नजरे लुओ !

हे मन ! इरेक प्राणी प्रत्ये मनोभण उपर आ देह पायो योग्यवत्ता छे, जेथी प्रथम अभांड अविनाशी सुभना भोक्ता

आ. २

छफ गई !

तैयार हो गई !!

ज्ञानसूर्योदय हिन्द

बहुत मांग आनेपर हमने इस पुस्तकका दूसरा एडीसन छपाक कराया है। यह वही पुस्तक है जिसमें जैन धर्मका सिद्धांत निर्भर है और अनेक सुबूतों और दलीलोंसे अच्छी तरहसे सिद्ध किया गया है कि इस किसी ईश्वरने नहीं बनाया है और न मेट ही सकता है।

→ और भी रियेक्ट →

छपाई सफाई और कागज बहुत उत्तम है जिससे शीघ्रता किजिये हाथोंहाथ निकल रही है जिससे फिर पछताना ही पड़ेगा। मूल्य भी वह इसके साथमें एक उत्तम पुस्तक जिसमें अन्य मतावलम्बियोंकी पोल खोली गई है, ५२ सफोंकी उपहारमें दी जावेगी। यह उपहार वही भ ओर्डर ३१ नवम्बर सन् १९१४ के अंदर हमारे दफतरमें आ जावे मिलनेका पता—एम. मूंगासिंह, मैनेजर, बी.बी. लुकडिपो—कायमगं

प्रत्येक मंदिरजीमें रखने योग्य शास्त्रोंका सूचीपत्र।

| | | | |
|--------------------------------------|-----|--|-----|
| हरिवंशपूराण (जैन महाभारत) | ५ | प्रतिभा उपन्यास [नवीन] | १। |
| ज्ञानार्णव (भाषा टीका) | ४) | षट्पाहूड [नवीन] | १) |
| सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ (टीका, नवीन) | ४) | श्री भद्रबाहुस्वामी चरित्र | ०।। |
| भगवती आराधना (पृ. १६७५) | ४) | श्री धन्यकुमार चरित्र | ०।। |
| स्याद्वादमंजरी (न्यायका ग्रंथ) | ४) | क्रियाकोष (किसनचंद कृत) | १) |
| प्रमेयकमल मार्तंड संस्कृत (नवीन) | ४) | सनातन जैन ग्रंथमाला | १) |
| आराधनासार कथाकोष(१२६ कथाओं)३।। | | ग्रहस्थधर्म ब्र.शीतलप्रसादजीकृत नवीन.१)२ | |
| जैन संप्रदाय शिक्षा (पृ. ८००) | ३।। | जैन कथासंग्रह (लाहौरका) | १) |
| आत्मरूपाति समयसार (अध्यात्म ग्रंथ)४) | | पुरुषार्थ सिद्धयुपाय | १) |
| महापूराण (आदीपुराण मराठी) | २५) | उपमितिभवप्रंपचा कथा ? | ०।। |
| त्रिवर्णिकाचार (मराठी) | ३) | सप्तव्यसन चरित्र (नवीन) | ०।। |
| श्री पद्मनंदी पंचविंशतिका [नवीन] | ४) | जैनधर्मका महत्त्व | ०।। |
| प्रद्युम्न चरित्र [भाषा पृ. ३५०] | २।। | वृंदावन विलास | ०।। |
| पांडवपुराण (छंदोबद्ध पृ. ४०४) | २।। | तत्त्वार्थ टीका (मोक्षशास्त्र) | ०।। |
| तेरहद्वीप पूजन विधान | २।। | संशयतिमिरप्रदीप | ०।। |
| प्रवचनसार ग्रंथ [नवीन] | ३) | न्यायदीपीका (नवीन टीका) | ०।। |
| धर्म प्रश्नोत्तर [अपूर्व नवीन ग्रंथ] | २) | धर्मरत्नोद्योत (नवीन) | १) |
| बृहत्संग्रह | २) | जीनशतक (नवीन) | ०।। |
| यशोधर स्वामी चरित्र | २) | चर्चाशतक (नवीन) | ०।। |
| धर्मसंग्रह श्रावकाचार (नवीन) | २) | विद्वदरत्नमाला (नवीन) | ०।। |
| दयानंद छलकपट दर्पण | २) | क्षत्रचूडामणी काव्य | ०।। |
| स्वाधीनता [नवीन ग्रंथ] | २) | मनोरमा उपन्यास | ०।। |
| मोक्ष मार्ग प्रकाशक (पृ. ५००) | १।। | भाषापूजा संग्रह | ०।। |
| बृहत्समेदशिखर महात्म्य | १।। | ज्ञानसूर्योदय नाटक | ०।। |
| पंचास्तिकाय समयसार | १।। | सुखानंद मनोरमा नाटक | ०।। |
| गोमटसारजी कर्मकांड (नवीन टीका) | २) | उपदेश रत्नमाला (नवीन) | ०।। |
| विश्वलोचन कोष [नवीन जैन कोष] | १।। | अनुभवानंद (नवीन) | ०।। |
| प्रवचनसार परमागम | १। | नित्य पाठ संग्रह गुटका (भाषा) | ०।। |

| | | | |
|------------------------------------|-----|-----------------------------------|------|
| शंजना सुंदरी नाटक | ०॥ | दिगंबर जैन ग्रंथ कर्ता-उनके ग्रंथ | ०)≡ |
| बालबोध व्याकरण | ०।≡ | यमनसेन चरित्र | ०। |
| अनुभव प्रकाश [नवीन] | ०।≡ | हिंदीकी प्रथम पुस्तक | ०)≡॥ |
| जैन नित्य पाठ संग्रह [रेशमी गुटका] | ०।≡ | ,, ,, दुसरी पुस्तक | ०। |
| जैन पदसंग्रह प्रथम भाग | ०।≡ | ,, ,, तीसरी पुस्तक | ०।≡ |
| ,, ,, द्वितीय भाग | ०। | ज्ञानदर्पण | ०। |
| ,, ,, तृतीय भाग | ०। | अहिंसा दिग्दर्शन | ०। |
| ,, ,, चतुर्थ भाग | ०॥≡ | गोम्मटसार जीवकांड (संस्कृत) | ०।≡ |
| ,, ,, पांचवाँ भाग | ०।≡ | जैन स्त्री शिक्षा प्रथम भाग | ०)≡ |
| जैन बालगुटका बड़ा (प्रथम भाग) | ०।≡ | ,, ,, दुसरा भाग | ०)≡ |
| दौलतराम भजन संग्रह (नवीन) | ०।≡ | बालबोध जैन धर्म प्रथम भाग | ०)०॥ |
| श्री हनुमान चरित्र (नवीन) | ०।≡ | ,, ,, ,, दुसरा भाग | ०)। |
| नित्यानियम पूजा | ०। | ,, ,, ,, तीसरा भाग | ०)≡ |
| दशलक्षण पूजा (सार्थ) | ०। | ,, ,, ,, चौथा भाग | ०। |
| द्रव्यसंग्रह (सार्थ) | ०। | छःढाला (बड़ा नवीन) | ०)≡॥ |
| रत्नकरंड श्रावकाचार [सार्थ] | ०। | क्रियामंजरी | ०)≡ |
| भक्तामर (आदीनाथ स्तोत्र सार्थ) | ०। | प्राणप्रिय काव्य | ०)≡ |
| शील कथा | ०। | मोक्ष शास्त्र मूल | ०)≡ |
| दर्शन कथा | ०। | इंद्रियपराजय शतक | ०)≡ |
| परमात्म प्रकाश | ०।≡ | बारस अणुवेस्खा (बार भावना) | ०)। |
| पुरुषार्थ सिद्धयुपाय | ०। | जीनेंद्रगुण गायन | ०)≡ |
| श्रावकवनिताबोधिनी | ०। | भक्तामरस्तोत्र (मूल) | ०)। |
| समेदशिखर पूजन विधान | ०। | सामायिक पाठ (विधि सह) | ०)।॥ |
| अकलंक चरित्र | ०)≡ | दर्शन पाठ | ०)। |
| विनति संग्रह [नवीन] | ०)≡ | महावीर चरित्र (पूजन सह) | ०)।॥ |
| निशीभोजन कथा | ०)≡ | पुत्रीको माताका सीखापन | ०)।॥ |
| जंबुस्वामी चरित्र (नवीन) | ०। | पंच मंगल पाठ (सार्थ) | ०)≡ |
| सुकतमुक्तावली [नवीन] | ०।≡ | अर्हत्पासा केवली | ०)।॥ |
| उपामेतिभवप्रंपचा कथा (२) | ०। | इष्ट छत्तीसी | ०)०॥ |
| जैन विवाह विधि [हिंदी] | ०)≡ | मुनिवंश दीपिका | ०)०॥ |
| ,, ,, ,, (मराठी) | ०।≡ | समाधिमरण-मृत्यु महोत्सव | ०)≡ |

| | |
|-----------------------------------|------|
| दीपमालीका विधान (दीवालीपूजन) | ०) |
| श्रेणिक चेलना चरित्र | ०)८ |
| होलीकी कथा | ०) |
| सिखर महात्म्य | ०)॥ |
| श्री तारंगाजी पूजन (नवीन) | ०)≡ |
| जैनसिद्धांत प्रवेशिका | ०)≡ |
| चौबीस जीनपूजा (चार) | ९) |
| दिगंबर जैन डिरेक्टरी (नवीन) | ८) |
| धूर्ताख्यान (रसीली कथा) | ०)≡ |
| जीनेंद्र दर्शन पाठ (नवीन) | ०)८॥ |
| समवसरण दर्पण (नवीन) | ०। |
| जैन नियम पोथी | ०)०॥ |
| जीनेंद्रमतदर्पण | ०) |
| सत्यार्थ यज्ञ (चौबीस जीनपूजा) | ०॥ |
| आर्यमत लीला | ०।८ |
| भारत. दि. जैन यात्रा दर्पण (नवीन) | २) |
| दिगंबर जैन आखम (५९ चित्रों) | ०॥॥ |
| बनारसी विलास | १॥ |
| पंचकल्याण पूजा | ०।८ |

चित्रों अने नकशाओं.



| | |
|------------------------------------|----|
| श्रीमान दि. मुनि श्री अनंतकीर्तिजी | ०) |
| „ त्यागीजी ऐलक पत्रालालजी | — |
| सङ्गासन | ०) |
| „ पद्मासन | ०) |
| „ झुलक मन्नालालजी | ०) |
| „ भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी | ०) |
| „ त्यागीजी आनंदीलालजी | ०) |
| „ भगारथजी वर्णी और गेंदनलालजी | ०) |
| ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी | ०) |

| | |
|--|-----|
| तीर्थकरकी माताके षोडश स्वप्नों | ०) |
| समेदशिखरजी-चंपापुरी-पावापुरी मुक्तागिरी- | — |
| का नकशा. प्रत्येकका मूल्य | ०) |
| संसारवृक्ष [मोहरस स्वरूप] | ०) |
| ज्ञानबाजी रंगीन [खेलने योग्य] | ०)८ |

गुजराती भाषाना ग्रंथा.



| | |
|------------------------------------|------|
| धर्म परिक्षा (पवनवेग-भनोवेगनी कथा) | १) |
| नित्य नियम पूजा (अर्थ साथे) | ०॥ |
| श्रवणधरस्वामी चरित्र | ०॥ |
| सुकुमाल चरित्र | ०।८ |
| कल्याणु मंदिर स्तोत्र (सार्थ) | ०। |
| सुदर्शन शेट | ०। |
| सद्वेषना मृत्यु भडोत्सव | ०। |
| दिगंबर जैन स्तवनावणी | ०। |
| आनित्य पंचाशत (सार्थ) | ०। |
| संसारमां श्रेष्ठ शुं ? | ०।८ |
| श्राविका ओध स्तवनावणी | ०) |
| शुं संतोष राखवे लोछये ? | ०)८ |
| दि. जैन ज्ञान संग्रह | ०)८ |
| अकलंक स्तोत्र (सार्थ) | ०)८ |
| लघु अबिषेक (मूण संधी) | ०) |
| धर्म प्रयोधनी | ०)८॥ |
| आशोच्यना पाठ (सार्थ) | ०)८ |
| जैन सार पद संग्रह | ०)८ |
| सामायिक पाठ (विधि अर्थ साथे) | ०)८॥ |
| पंच कल्याणुक पाठ (सार्थ) | ०)८ |
| श्रावक प्रतिष्मणु | ०)८॥ |
| कणीयुगनी कुणदेवी | ०)०॥ |
| जैन सिद्धांत प्रवेशिका (जैनकाय) | ८। |
| लट्टारक भीमांसा | ०)८ |
| शीलसुंदरी रास | ०)८ |
| रक्षाधन कथा | ०)८॥ |



નવીન હિન્દી ગ્રંથો !

| | |
|---|--|
| શ્રીપાલ ચરિતઃ—(ભાષા પૃષ્ઠ ૨૦૦) ૧) = | |
| પ્રાતઃ સ્મરણ મંગલપાઠ (નવીન) ૦) = | |
| જૈન ગીતાવલી (૧૦૮ ગીતોંકા સંગ્રહ) ૦) = | |
| સ્વર્ગીય જીવન (પૃષ્ઠ ૧૬૦) ૦ = | |
| પવનદૂત કુમાર ચરિત્ર ૦ | |
| નાગકુમાર ચરિત્ર ૦ = | |
| યશોધર ચરિત્ર ૦ | |
| હિન્દી ભક્તમાર ૦) = | |
| જૈનાર્ણવ (૧૦૦ પુસ્તકોં) ૧) | |
| પ્રયુક્ત ચરિત્ર ૦ = | |
| સીતા ચરિત્ર ૦ | |
| દ્યાનતવિલાસ વ ધર્મવિલાસ ૧) | |
| નેમિ ચરિત્ર ૦ ૦ | |
| અકલંક ચરિત્ર ૦) = | |
| ગૃહીણી મૂષણ ૦ | |
| ચૌબેકા ચિટ્ટા (પઢને યોગ્ય) ૦ = | |
| નાટક સમયસાર (બનારસીદાસ કૃત) ૨ | |
| ભારતવર્ષીય દિ. જૈન હિરૈકટરી (પૃ. ૧૪૦૦) ૮) | |
| કયા ઈશ્વર જગત્કર્તા હૈ ? ૦) ૦ | |
| શ્રી દશલક્ષણ ધર્મ ૦ = | |
| સુશિલા ઉપન્યાસ (દ્વિ. આવૃત્તિ) ૧) | |

પ્રભાવનામાં વેંચયા યોગ્ય

એ પુસ્તકો.

(૧) સામાયિક પાઠ.

આ એકજ પુસ્તકમાં અમિતર્ગત આચાર્ય કૃત સામાયિક પાઠ સંસ્કૃત, સામાયિકની વિધિ, ગુજરાતી અર્થ ભાષા સામાયિક પાઠ,

આલોચના પાઠ વગેરેનો સંગ્રહ કરેલો છે જે દરેક શ્રાવક પાસે હોવાની જરૂર છે. કિં. ૦) ના વેંચવા માટે લેનારને ૧૦૦ પ્રતના રૂ. ૬).

(૨) પંચકલ્યાણક પાઠ (સાથ)

કવિ રૂપચંદ્રજી કૃત શ્રી પંચકલ્યાણક-

પાઠ અધરા શબ્દોના અર્થ તથા ગુજરાતી અર્થ સાથે સુશોભિત તૈયાર છે જે દરેક જૈને વેંચવા લાયક છે. કિં. ૦) = પણ વેંચવા માટે લેનારને ૧૦૦ પ્રતના માત્ર રૂ. ૬).

કમીશન:—પાંચ રૂપ્યા અને એથી વધુ કમીશન પુસ્તકો એકી વખતે મંગાવનારને રૂપ્યે એક આનો કમીશન કાપી આપવામાં આવે છે.

સસ્તું ઉત્તમ સ્વાતી લાયક

પવિત્ર

કાશ્મીરી કેશર.

કશી પળ મેલસેલ વગરનું તેમજ માવ ગુણ અને શુદ્ધતામાં વિલાયતી કેશરને ટકર મારે તેવું શુદ્ધ સ્વદેશી “પવિત્ર કાશ્મીરી કેશર” છુટક તથા જથાબંધ પુરું પાડવામાં આવે છે. કિં. ૧) તોલો. સામટું એક રતલ લેવાથી કિફાયત.

પુસ્તકો મંગાવવાનું સ્થલ—

મૂલચંદ કિશનદાસ કાપાડિયા

માલિક દિ. જૈન પુસ્તકાલય—સૂરત

SURAT.

સમાચાર.

ગૃહસુર રાજ્યે ચળકતાં પીછાંવાલી ચલ્લીઓને મારવાનું બંધ કરવાનો હુકમ કાઢ્યો છે.

આદીપુરાણ ગ્રંથની ઓપીસ હવે ઇંદોર ગઈ છે.

સુરત ખપાટીયા ચકલા ઉપર આવેલા ખુબચંદ અમીચંદના ધી સુરત “જૈન” પ્રી-ટીંગ પ્રેસમાં મદુલાઈ ભાઈદાસે છાપ્યો.

तैय्यार हो रहा है! आर्डर भेजिए! एक मासमें प्रकट होगा!
जो आजतक नहीं प्रकट हुआ था और जिसके लिए
सभी जैनों वर्षोंसे टकटकी लगाये बैठे थे वही
बड़ाभारी हिन्दी नवीन ग्रन्थ—

श्री श्रेणिक महाराजका बृहत् जीवनचरित ।

बड़ा भारी खर्चा लगाकर पं. गजाधरलाल जैन शास्त्री
द्वारा सरल भाषामें नवीन हिन्दी टीका लिखवाकर जो
एक वर्ष हुए हम छपा रहे थे अब तय्यार होने आया है और
एक मासमें प्रकट होगा ।

पुस्तकाकार—बहुत ऊंचे चिकने कागज़—उत्तम छपाई—
कपड़ेकी खुबसूरत पक्की जिल्द और पृष्ठ संख्या ४०० होने-
पर भी मूल्य सिर्फ रु. १-१२-० डांकव्यय अलग ।

इस नामी ग्रन्थकी कथा इतनी रोचक है कि जितनी प्रतें
तय्यार कराई गई हैं वह देखतेर बिक जानेकी संभावना है, इस
लिये शीघ्रता किजिए और यह महान हिन्दी ग्रन्थ मँगानेका
आर्डर भेजिए वरन् पछताना होगा ।

मँगानेका पता—

मैनेजर—दिगंबर जैन पुस्तकालय—सूरत । Surat.

नूतन वर्षारंभे मुबारकवादी.

(गजल कव्वाली.)

गयुं जुनुं नवुं आवे, अमोने सौख्य देवाने;
 अमारा जैन बंधुओ, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. १
 जुनामां जे रखुं बाकी, नवामां ते पुरुं करशे;
 जुनुं तेने गणी सुनुं, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. २
 जुनामां विघ्न वित्यां बहु, नवुं सुखरूप नीवडशे;
 नविनता छे नवामां ए, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. ३
 रुडा निज हाथ लंबावी, जगावो जगतां दीवा;
 प्रकाशो ज्ञान ज्योतिना, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. ४
 खुनी खाली बधी खटपट, निवारो नांखवा इटपट;
 अमीनां जाम पीवाने, सुखी हो आ नूतन वर्षे. ५
 भूमी आ भारती माता, करी कर्त्तव्य द्यो शाता;
 कुसंपो क्लेशने टाळी, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. ६
 सुहृद जुदाई ना राखो, सदा रहो ऐक्यने धरता;
 निवृत्ति सुखने लेवा, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. ७
 सिद्धार्थ सुतनां वचनो, उठावी प्रेमथी शिरपर;
 क्रियाओ धर्मनी धारो, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. ८
 खरी नीति खरी रीति, खरानो ख्याल राखीने;
 करोने उन्नति साची, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. ९
 जगतना नीच स्वार्थानो, दर्ईने भोग भ्राताओ;
 परमार्थे जीवन अपी, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. १०
 करो नीज धर्म फेलावो, खरा तन मन अने धनथी;
 सुखी करवा बधा जीवो, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. ११
 प्रजाओ विश्वनी वसती, विषे झळकाववी छे जैन;
 वदे सुत मोती त्रीकमनो, सुखी हो ! आ नूतन वर्षे. १२